सर्वोदय-समाज

आठवाँ वार्षिक सम्मेलन

कांचीपुरम्

[ता० २

विवरण

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ
वर्धा

पहली बार : १,०००
अक्तूबर, १९५६
मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
भार्गव भूषण प्रेस
गायघाट, वाराणसी

अनुक्रम

अध्ययन-मंडलों के विवरण

सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव :

परिशिष्ट

अखिल भारत
सर्वोदय-समाज-सम्मेलन
सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
आठवाँ अधिवेशन ता० २७, २८, २९ मई, १९५६

पहला दिन

रविवार, २७ मई, १९५६ : तीसरे पहर ३ बजे

(खुला अधिवेशन)

अखिल भारत सर्वोदय-समाज का आठवाँ वार्षिक सम्मेलन मद्रास से ५५ मील पर, चिंगलपेट जिले के सुप्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र कांचीपुरम् में ता० २७ मई से २९ मई १९५६ तक हुआ। सम्मेलन के उपलक्ष्य में एक खादी-ग्रामोद्योग प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया था। प्रदर्शनी का उद्घाटन सोमवार ता० २१ मई को शाम को ५-३० वजे तमिलनाड के गांधी-स्मारक-निधि के संचालक श्री सुब्रह्मण्यम्जी के हाथों हुआ था।

सम्मेलन के अंगभूत चर्चामंडलों के इजलास ता० २५ के तीसरे पहर से ही शुरू हो गये थे। इन चर्चामंडलों के काम-काज का व्योरा सम्मेलन में यथासमय पेश हुआ। इसका विवरण यथास्थान आयेगा।

सम्मेलन का खुला अधिवेशन रविवार ता० २७ मई १९५६ को तीसरे पहर तीन वजे शुरू हुआ। उससे पहले २-३० से ३ तक मौनपूर्वक सामुदायिक सूत्र-यज्ञ हुआ। शुरू में 'वैष्णवजन तो तेने कहिये' का तमिल अनुवाद गाया गया और दो वहनों ने एक तमिल भजन गाया।

सर्व-सेवा-संघ के सह मंत्री श्री वल्लभस्वामी ने उपक्रम करते हुए कहा, "इस सम्मेलन के नियोजित अध्यक्ष देश के सुप्रसिद्ध तपोनिष्ठ सर्वोदय-नेता श्री अप्पासाहब पटवर्धन हैं। उनका परिचय श्री काकासाहब (कालेलकर) करायेंगे। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ।"

श्री काकासाहब :

आज एक पवित्र पुरुष का परिचय कराने का काम मुझे सौंपा गया है, इसका मुझे आनंद है। पूज्य विनोबाजी के प्रयत्न के कारण हमारे सम्मेलन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, यह हमारे लिए खुशी की बात है। यह इस बात की निशानी है कि लोगों का ध्यान इस काम की तरफ जा रहा है। सारी दुनिया के लोग आज हमारी तरफ आशाभरी दृष्टि से देख रहे हैं। दुनिया के ज्यादातर राष्ट्र तो पुराने ढंग पर ही चल रहे हैं। वहाँ के लोग अपने-अपने राज्यों की तरफ शंका की दृष्टि से देख रहे हैं। देहली में कई अमेरिकन लोगों से मिलने का मौका मिला। उनमें से बहुत-से ऐसा कहते पाये गये कि 'क्या करें? हमारी सरकार जो कर रही है, उससे हमारी गर्दन शरम से झुक जाती है। हम यहाँ यह देखने आते हैं कि भारत की जनता क्या कर रही है। भारत की सरकार की इज्जत तो दुनिया में है, लेकिन दुनिया के लोग भारत की जनता की ओर देख रहे हैं।' उनका यह खयाल है कि हरएक देश के लोग स्वाभाविक रूप से अपना-अपना स्वार्थ देखेंगे; लेकिन वे देखना यह चाहते हैं कि ऐसी परिस्थिति में भारत के लोग क्या करेंगे? इस गरज से वे यहाँ आते हैं। इसलिए मैंने कहा कि दुनिया हमारी तरफ आशा की दृष्टि से देखती है।

ऐसे समय पर हमारा यह सम्मेलन हो रहा है और हमने अप्पा को अपना अध्यक्ष चुना है। अप्पासाहब भारत के हैं, लेकिन उनका जन्म रत्नागिरि में हुआ। महाराष्ट्र की रत्नागिरि ने अनेक त्यागी, सेवापरायण, पवित्र नररत्न देश को दिये हैं। लोकमान्य तिलक भी तो रत्नागिरि के ही थे। इतना कह देना काफी है, अप्पा भी उसी रत्नों की खान में पैदा हुए हैं। फर्ग्युसन कॉलेज में प्रोफेसर रहे। असहयोग-आन्दोलन के समय वह पद छोड़कर गांधीजी

के पास आये। वहाँ कुछ दिन रहकर गाँवों की सेवा करने चले गये। जब तक आश्रम में रहे, सबका आदर प्राप्त किया। मैं कुछ लोभी था, मैंने गांधीजी से कहा, "इन्हें रोक लीजिये।" अप्पा ने बापू से कहा, "मुझे गाँव की सेवा करनी है।" रत्नागिरि के दूसरे कई लोग गाँव छोड़कर बंबई जाते हैं। अप्पा शहर छोड़कर गाँव में जाना चाहते थे। गांधीजी ने कहा, "कोई गाँव में जाना चाहता है, तो मैं उसे कैसे रोकूँ? अप्पा मुझसे गाँव में जाने देने की भिक्षा माँग रहे हैं। मैं इनकार नहीं कर सकता। इस तरह अप्पा ने गांधीजी के साथ रहने से भी गाँव की सेवा को अधिक महत्त्व दिया। गांधीजी के जिस-जिस कार्यक्रम में उन्होंने भाग लिया, उसकी शोभा बढ़ायी। स्वराज्य के आन्दोलन में जब वे जेल में गये, तो वहाँ भी गांधीजी के नाम को शोभा देनेवाला काम उन्होंने किया। जेल में टट्टी साफ करने का काम अछूत और नीच समझी जानेवाली जातियों को देते थे। यह देखकर अप्पा ने वही काम माँगा। सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "ब्राह्मण को यह काम कैसे दिया जाय? अप्पा ने अनशन शुरू कर दिया। गांधीजी ने जब यह खबर सुनी, तो उन्होंने भी उपवास शुरू कर दिया। सरकार को सारे नियम किनारे रखकर अप्पा की माँग मंजूर करनी पड़ी। इस तरह उन्होंने सफाई का काम करने का अधिकार प्राप्त किया। बुद्धि तो उनकी तीक्ष्ण है ही। ब्राह्मण की बुद्धिमत्ता से उन्होंने सफाई-काम में वैज्ञानिकता और पवित्रता दाखिल की। रत्नागिरि जिले में उनका जो गोपुरी-आश्रम है, वहाँ थोड़े खर्च में ऐसे संडास बनाने के प्रयोग उन्होंने किये, जो हर गाँव में बनाये जा सकें। चमड़े का, मरी हुई गायें-भैंसें फाड़ने का काम उन्होंने वहाँ शुरू किया। इस तरह से उन्होंने अपनी ब्राह्मणबुद्धि चलाकर ग्रामसेवा शुरू की। अप्रसिद्ध रहकर वे अपना सेवाकार्य चलाते रहे हैं, इसलिए उनके कामों की ज्यादा जानकारी हमको नहीं हो सकी। इसीलिए यहाँ परिचय देने की जरूरत हुई। अप्पासाहब क्रियापंडित हैं। अस्पृश्यता-निवारण के लिए भी उन्होंने अविरल प्रयत्न किये। अस्पृश्यों को लेकर होटलों में प्रवेश करने का यत्न किया। उनके विरोधी थक गये। इस प्रकार उनकी क्रियाशीलता के कई उदाहरण हैं। जिस प्रकार वे क्रियापंडित हैं, उसी प्रकार सर्वोदय-तत्त्ववेत्ता भी हैं। उन्होंने कुछ बहुत अच्छी किताबें लिखी हैं, जिनका अनुवाद-

दक्षिण और उत्तर की सभी प्रमुख भाषाओं में होना चाहिए। आज एक पवित्र समय है, जब कि दुनिया में धर्म-प्रवर्तन हो रहा है। ऐसे पवित्र अवसर पर हमको ऐसे पवित्र अध्यक्ष मिले, इसके लिए मैं आप सबका अभिनंदन करता हूँ।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्त्व की घटनाएँ हो रही हैं। हमारे देश के प्रमुख विचारक और राजनीतिज्ञ श्री राजाजी ने बार-बार अमेरिका को सलाह दी कि वह अणु-अस्त्रों का प्रयोग बंद कर दे। उनकी सलाह अमेरिका ने तो नहीं मानी, लेकिन रूस ने मान ली। रूस ने अपनी फौज कम कर दी। रूस के नेताओं की इज्जत हमारे मन में बढ़ी। यह इस युग की प्रवृत्ति का चिह्न है। इसीलिए मैंने कहा कि यह धर्म-प्रवर्तन का अवसर है और ऐसे अवसर पर हमें सुयोग्य अध्यक्ष मिले हैं।

[इसके बाद काकासाहब के हिन्दी भाषण का तमिल में अनुवाद श्री जी० सुब्रह्मण्यम् ने किया। सम्मेलन में जो हिन्दी भाषण हुए, उन सभी का तमिल अनुवाद प्रायः श्री जी० सुब्रह्मण्यम् ने किया।

इसके पश्चात् श्री अप्पासाहब (सीताराम पुरुषोत्तम) पटवर्धन ने अध्यक्ष-पद ग्रहण किया। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन्‌जी और उनकी धर्मपत्नी श्री कृष्णम्मा ने सूत की मालाएँ पहनाकर उनका स्वागत किया। श्री राजाजी को भी उन्होंने सूत की मालाएँ पहनायीं।

श्री जगन्नाथन् ने स्वागताध्यक्ष के नाते अपना छोटा-सा भाषण हिन्दी में पढ़कर सुनाया और उसका तमिल अनुवाद स्वयं किया।]

(श्री राजाजी ने तमिल में भाषण किया, जिसका हिन्दी अनुवाद किया गया)

श्री राजाजी :

तमिलनाड के बूढ़ों की ओर से मैं आप सबका फिर से स्वागत करता हूँ। बूढ़ों का आशीर्वाद हरएक कार्य के लिए बहुत ही आवश्यक है। अच्छी तरह अनुभव प्राप्त करके, बहुत-सा घूमने के बाद, बहुत-सा कष्ट उठाने के बाद जो आशीर्वाद देगा, उसीका आशीर्वाद सफल होगा। मेरा खयाल है कि सर्वोदय का जो काम है, वह भारत सरकार के काम से भी अधिक कठिन है।

इसीलिए सरकार इस काम को हाथ में नहीं ले रही है। आसान कार्य को पहले अपने हाथ में लेकर लोगों के विश्वास को प्राप्त करने के बाद वे भी इस कार्य को अपनायेंगे, ऐसी आशा है। लेकिन तब तक अगर चुपचाप बैठे रहें, तो शायद सब लोग इस कार्य को भूल जायँ, इसलिए विनोबाजी या इस तरह के कई लोगों ने इस कार्य को जारी रखा है। सर्वोदय-सम्मेलन में जितने लोग आये हैं, उनका यह काम है कि सरकार की कठिनाइयाँ देख करके इस काम को आगे बढ़ायें। जल्दबाजी में कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि सरकार की होड़ में कुछ काम करें, लेकिन ऐसा ठीक नहीं है। हम जो कुछ भी काम करें, उसके कारण सरकार को किसी भी तरह से कठिनाई न हो। लेकिन देश को आगे बढ़ाने के लिए, उसकी अभिवृद्धि के लिए ही हमारा कार्य हो। लेकिन सरकार को कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं सरकार से भी अलग रहता हूँ और सम्मेलन से भी अलग रहता हूँ। मेरा अलग रहने का कारण है मेरी उमर। मेरी इच्छा नहीं है, ऐसी बात नहीं। लेकिन मेरा काम पूरा हो गया है, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है। मैं किसी भ्रम में पड़ना नहीं चाहता हूँ। मैं यह नहीं मानता हूँ कि मैं इतने दिन और जीऊँगा कि और ४० साल कार्य की जिम्मेवारी उठा सकूँगा। मैं इस भ्रम में नहीं रहना चाहता।

हिन्दुस्तान का बड़ा रोग

जो कुछ हालत है, उसको महसूस करके मैं आपके सामने कुछ शब्द रखना चाहता हूँ। मेरी राय में आज हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा रोग यह है कि लोग बुरे होते चले जाते हैं। मैं इसके कारण की छानबीन नहीं करना चाहता। कारण कुछ भी हो, लेकिन मैं देखता हूँ कि मेरे बचपन के समय में जो हालत थी, उससे ज्यादा बुरी हालत आज है। लोग झूठ बोलने, दगाबाजी करने, ठगने जैसे बहुत कामों में आज मशगूल हो रहे हैं, ऐसा भी महसूस हो रहा है। डॉक्टर लोग अपने मरीज से आखिर तक यही कहते रहते हैं कि ठीक हो जाओगे, उसी तरह हम लोगों में से भी कुछ लोग ऐसा कहते हैं। चूंकि मेरी उमर काफी बढ़ गयी है, इसलिए भी मुझे ऐसा बोलना नहीं आता। जहाँ देखो वहाँ लोगों के दिल में ऐसी भावना है कि पैसा कमाऊँ,

और पैसा कमाऊँ। सोते हुए, जागते हुए, रात-दिन पैसा कमाने की धुन रहती है। ऐसी हालत में सर्वोदय कभी उदित नहीं होगा। हरएक आदमी क्यों इस तरह पैसा पैदा करना चाहता है ? खर्च बहुत ज्यादा हो गया है, इसीलिए तो। सभी कुटुम्बवाले पहले जमाने से आजकल के जमाने में ज्यादा खर्च करने लगे हैं। सरकार को चलानेवाला, जो कांग्रेस-दल है, उसको जरा देखिये। मैं नेताओं के बारे में नहीं कहता हूँ। लेकिन वहाँ जितने सेवक हैं, उनकी तरफ नजर दौड़ाइये। कांग्रेस के जितने सेवक हैं उनका खाना-कपड़ा, रहन-सहन बहुत बढ़ गया है। कोई नया पेशा उन्होंने अख्तियार किया है, सो तो बात नहीं है। बिना किसी पेशे के किस प्रकार वे इस तरह आराम में रह सकते हैं ? आप सब सोच-करके देखिये कि वे इस तरह का रहन-सहन क्यों अपना रहे हैं ? इसलिए कि यद्यपि वे गरीब हैं, फिर भी अमीर दीखना चाहते हैं। वे गरीब होते हुए भी अपने जीवन के स्तर को बढ़ाने की कोशिश करते हैं। अगर खर्च करना है, ऐसा किसीने निश्चय कर लिया, तो उसके लिए पैसा कमाना ही चाहिए । मैं क्यों ये सारी बातें कह रहा हूँ ? इसका भी कारण है। आज जो रोग फैला हुआ है उसकी कोई दवा हो सकती है या नहीं ? आज सुबह ११ बजे के करीब मैं विनोबाजी से बात कर रहा था। हमारे खर्च को कम करने के लिए कोई आन्दोलन शुरू करना चाहिए, ऐसी बात उनसे मैंने कही। मेरी राय में आप जितने काम उठा रहे हैं, उनमें यह काम बहुत अच्छा है। गीता तो मैंने बार-बार पढ़ी और उसका बार-बार मनन किया। उसका उपदेश यह है कि अगर हमें सच्चा आदमी बनना है, तो हमें अपना खर्च कम करना चाहिए। अगर खर्च कम न करें, तो चोर ही बनेंगे। और कोई चारा नहीं है। अगर इस गरीब देश में हम अपना खर्चा कम नहीं करेंगे, तो एक-दूसरे को ठगने के बिना और एक-दूसरे के शोषण के बिना और कोई चारा ही नहीं है। सरकार कहती है कि कई तरह के उद्योगों को बढ़ाना चाहिए, तभी खर्च करने की ताकत भी बढ़ सकती है। तो यह हम भी कहते हैं कि जब तक हम उद्योगों को नहीं बढ़ायेंगे, जब तक कमाने की ताकत नहीं आयेगी और खर्च तो बढ़ाते ही रहेंगे, तब तक चूसकर ही पैसा इकट्ठा करके रखेंगे। इससे हमारी उन्नति कभी नहीं हो सकेगी। मुझे

आशा है कि जितने सर्वोदय-सम्मेलनवाले हैं, वे मेरी इस बात पर गौर करेंगे, चिन्तन करेंगे और इस देश में जितना कम खर्च हो सकता हो, उसके लिए कोई रास्ता निकालेंगे। हमारा यह पुराना सम्प्रदाय है कि कोई बड़ा आदमी मर जाय, तो भी बाँसों की ठठरी के ऊपर ही उसकी लाश श्मशान ले जाते हैं। उसके ऊपर पालकी लगाकर, फूल चढ़ाना, सजाना और ले जाना यह बाद की परिपाटी है। पुरानी परिपाटी यही है कि लाश को उठाने के लिए दो बाँस के टुकड़े और एक रस्सी काफी है। हमारा जीवन भी इसी प्रकार बीतना चाहिए। अगर हम खर्च कम न करेंगे, तो अभिवृद्धि के लिए दिल्ली में जो योजनाएँ बनायेंगे, उनमें अभिवृद्धि के बजाय हमारा कर्ज ही बढ़ेगा।

ईश्वर पर श्रद्धा की जरूरत

दुनिया में अगर हरएक आदमी पर हमें विश्वास करना है, तो उसके लिए ईश्वर की जरूरत है । यदि हम एक लकड़ी को लेकर घुमाना चाहें, तो एक रस्सी की जरूरत होगी। अगर रस्सी हम निकाल दें, तो वह लकड़ी घूमती रहती है, थोड़ी देर तक वह चलती रहती है । उसी तरह ईश्वर-भक्ति की रस्सी को हम खींच लें, तो जीवन थोड़ी देर तक उस लकड़ी की तरह चलेगा और फिर बंद हो जायगा। कुरल में यह बताया गया है, और भी कुछ धर्मग्रंथों में बताया गया है कि इस तरह ईश्वर-भक्ति के बिना थोड़े दिनों के लिए हम सच ही बोलते रहेंगे, झूठ नहीं बोलेंगे, तो यह कुछ दिन तक चलेगा और बाद में फीका पड़ जायगा। मैंने संक्षेप में कहा है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर-भक्ति अगर न हो, तो शील बिल्कुल नहीं हो सकता। हमारे पूर्वजों ने पुराने जमाने में यह बतलाया। पुराने जमाने की ईश्वर-निष्ठा की शक्ति से हमारी गाड़ी चल रही है। इसलिए रूस कुछ भी कहे, लेकिन उनकी बात दुनिया मानने के लिए तैयार नहीं है; क्योंकि ईश्वर को उन लोगों ने छोड़ दिया है । अगर ईश्वर को बिना त्याग किये वे लोग जो कुछ बात आज कह रहे हैं, उसे कह सकेंगे, तो दुनिया के लोग उसे मानेंगे। इसलिए मैं लोगों को सचेत करना चाहता हूँ कि ईश्वर-भक्ति को अगर आप लोग छोड़ दें, तो हमारी बात कोई नहीं मानेगा। आज दुनिया के सब लोग हमको मानते

हैं । जवाहरलालजी कुछ कहें, तो दुनिया के लोग उसको मानते हैं। बुल्गानिन कुछ कहें, तो दुनिया उसको मानती नहीं है। क्रुश्चेव कहें तो उसे भी कम मानती है। उसका कारण क्या है ? कारण यही है कि ईश्वर की भक्ति जितनी है, उसी स्तर पर यह सब चीजें चलती हैं। इसलिए धोखा नहीं खाना चाहिए। कोई कुछ भी कहे, लेकिन ईश्वर-भक्ति जरूरी है। जितना मैंने कहा, उसको फिर से दुहराता हूँ। मैंने पहली चीज वह कही कि खर्च कम करना चाहिए। दूसरी चीज कही कि ईश्वर-भक्ति होनी चाहिए। इन दोनों चीजों का आधार क्या है ? गांधीजी का जीवन ही इसका आधार है। विनोबाजी का जीवन मेरे लिए सबूत है। इन दोनों को देख लीजियेगा। क्या गांधीजी के बुद्धि नहीं थी, क्या उनके मन में विकार था ? ईश्वर को न माननेवाले उनसे भी आगे बढ़कर बड़े सामर्थ्यवान् थे। गांधीजी ब्रिटिश लोगों को निकालने की शक्ति रखनेवाले एक महान् पुरुष, ईश्वर-भक्त थे। कितनी बड़ी ईश्वर-भक्ति उनके पास थी ? हमारे देश में गाँव के रहनेवाले जो अपढ़ लोग हैं, उनके मन में जितनी भक्ति होती है, उतनी ही गांधीजी में भक्ति थी। उसी तरह महात्माजी के हमारे बीच से उठने के बाद हमें आज विनोबाजी दर्शन दे रहे हैं। उसी तरह की ईश्वर-भक्ति रखते हुए अभी हमारा मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। ईश्वर नहीं है, हमको ईश्वर नहीं चाहिए, ऐसी दलीलों से हम एक-दूसरे को धोखा दे सकते हैं; लेकिन देश का उद्धार करने के लिए ईश्वर-भक्ति बड़ी आवश्यक है। इस सम्मेलन का अधिवेशन कांचीपुरम् में हो रहा है। यहाँ शैवमंदिर हैं, विष्णु के मंदिर हैं। ऐसी जगह चुन करके क्यों अधिवेशन किया गया ? इसका कारण यह है कि ईश्वर-भक्ति की बुनियाद पर ही यह सम्मेलन खड़ा है, यह बात हमें स्वीकार कर लेनी चाहिए। ईश्वर-भक्ति को ले करके हम जाति-भेद मिटा सकते हैं। ईश्वर-भक्ति को त्याग करके हम जो कुछ भी करें, लेकिन हम जाति-भेद मिटा नहीं सकते। जाति-भेद जो शुरू हुआ, उसका कारण ही अलग था। आजकल का जो जाति-भेद है उसको दूर करना चाहिए, इसको सब लोग मानते हैं। अगर इसको ठीक रास्ते से हल करना है, तो हमको ईश्वर-भक्ति की जरूरत है। मैं इस वास्ते इस बात पर ज्यादा जोर दे रहा हूँ कि तमिलनाड में ईश्वर-भक्ति छोड़ने का रोग बढ़ता जा

रहा है। कांचीपुरम् में तो वह बहुत बढ़ गया है। इस गाँव में जहाँ पर ईश्वर, परमेश्वर है, जहाँ भगवान् है, वहाँ पर राक्षस भी पड़े रहते हैं।

दक्षिण की स्थिति

विनोबाजी को संदेह होगा कि मैं इतनी बातें क्यों कर रहा हूँ। शायद सोचेंगे कि ईश्वर-भक्ति की हमारे देश में आज क्या जरूरत है। लेकिन वे उत्तर से आये हुए हैं, शायद दक्षिण की हालत से परिचित नहीं हैं। दक्षिण में नास्तिक बहुत बढ़ गये हैं। गरीबों को उपदेश दिया जा रहा है कि भगवान् को छोड़ दो। ईश्वर कोई मुश्किल की चीज है। अगर हम मुश्किल की चीज को छोड़ दें, तो हम सुख से चल सकते हैं? बोलनेवाले बेवकूफ नहीं हैं, बड़े बुद्धिमान् हैं। मैंने कई दफा सोचा कि ये लोग ऐसा क्यों बोल रहे हैं। लेकिन कोई उत्तर नहीं सूझा। मैं समझता हूँ कि यह कोई एक महान् शाप है। यहाँ पर शंकरजी रहते थे, यहाँ पर रामानुज रहते थे, बड़े-बड़े आचार्य रहते थे। ऐसे हमारा गौरव बढ़ा, लेकिन गौरव बढ़ने के साथ-साथ यहाँ पर नास्तिकता भी बढ़े, ऐसा कोई शायद शाप मिल गया है, ऐसा मैं मानता हूँ। इस सबके विमोचन के लिए ही दक्षिण की ओर विनोबाजी आये हैं। विनोबाजी को सब लोग मानते हैं। असुरों का झुंड, जो इस गाँव में है, वह भी शायद विनोबाजी को मानता है। मैं जो राक्षसों और असुरों का दल कह रहा हूँ, उसको सुन करके आपको आश्चर्य करने की कोई जरूरत नहीं है। वे खुद अपने बारे में कहते हैं कि वे रावण के वंशज हैं और राम को दुश्मन समझते हैं। इस तरह का भ्रम उनमें भरा हुआ है। इस भ्रम को निकालने के लिए जिस तरह से अहिल्या का शाप-विमोचन हुआ, उसी तरह यहाँ पर विनोबाजी का चरण-स्पर्श साबित हो।

सर्वोदय क्या है ?

स्वागत के लिए जितना मुझे बोलना था, उतना बोल दिया। सम्मेलन क्या है, सर्वोदय क्या है, इसके बारे में मैं एक शब्द में आपको बतलाऊँगा। गांधीजी इस दुनिया से उठ गये। हमारे उपनिषद् में यह बात बतायी गयी है कि मनुष्य यहाँ इस दुनिया में आता है और कुछ दिन रह करके बाद में

धुआँ और भस्म हो करके वापस जाता है। गांधीजी भी उसी तरह धुआँ बन करके, भस्म बन करके यहाँ से निकल गये। जो कुछ यहाँ लोग छोड़ जाते हैं, उसके विषय में भी शास्त्र में लिखा है। जो कुछ कार्य वे कर गये हैं, वही इस दुनिया में बाकी रहता है, ऐसा उनका कहना है। भस्म और धुआँ, जो हमारे मरने के बाद जितना बचता है, उसमें हमारी कृति और कार्य बाकी रहता है, ऐसा उपनिषद् में ऋषियों ने बताया है। जो कुछ गांधीजी हमारे लिए छोड़ गये हैं, वह सब काम यह सम्मेलन है, ऐसा मैं मानता हूँ। जो कुछ काम उन्होंने सोचा है, जो कुछ कार्य उन्होंने किया है, वह सब इस सम्मेलन में है। उन्होंने जो कुछ कार्य किया, उसीके कारण हमको स्वराज्य मिला। लेकिन उतना ही नहीं, जो कुछ कार्य और आगे करना चाहिए, वह सब काम अभी बाकी है और वह काम करने के लिए ही यह सम्मेलन है। ईश्वर-भक्ति की तरह धीरज देनेवाली चीज यहाँ नहीं है। हमारे आसपास जो लोग रहते हैं, वे दुश्मन नहीं हैं, उनको देख करके हमको डरने की जरूरत नहीं है। हम डरते हैं, इसलिए सेना में हमको खर्च करना पड़ता है। उस खर्च को अगर हम कम करें, तो वह हमारे धैर्य के लिए सबूत बन सकता है। सेना-खर्च को कम करने की हिम्मत हममें होनी चाहिए। ऐसी हिम्मत अगर हमारे पास न हो, तो गांधीजी का नाम लेने से क्या फायदा? खद्दर का काम करनेवाले और सर्वोदय का काम करनेवाले सभी लोगों को ऐसी हिम्मत दिखानी चाहिए। अभी देखो, अमेरिका पाकिस्तान की सहायता करने को तैयार है। हम आगे क्या करेंगे? इस प्रकार जो डरते हैं, ऐसे लोगों को सम्मेलन छोड़ करके चले जाना चाहिए। गांधीजी का नाम आज जो लेते हैं, उनको निर्भय होना चाहिए। पाकिस्तान में बहुत ज्यादा सेना है, बहुत फौज है, इसको देख करके अगर हम डर जायँ, तो वह गांधीजी का मार्ग नहीं है। यह संकोच के साथ हमने कहा। यह बात तो सरकार को सोचनी चाहिए। सम्मेलन में हमको क्या करना चाहिए? मेरी राय है कि बुरे रास्ते में हमको आगे नहीं बढ़ना चाहिए। चाहे कोई काम सरकार की तरफ से हो या सरकार को करना हो, फिर भी बुरे विचार हमारे दिमाग में नहीं आने चाहिए। पाकिस्तान को देख करके डरनेवाले जितने हैं, उनको सम्मेलन में आने का हक नहीं है। मैंने अमेरिका से क्या कहा? रूस को देख करके तुम मत डरो।

यही मैंने कहा। इस पर वे क्या जवाब देते हैं? वे कहते हैं तुम लोग पाकिस्तान से डरते हो न? मैं नहीं डरता, ऐसा मैं उनको बतलाता हूँ। मैं यही बात आपके सामने रखता हूँ और अपना लम्बा भाषण मैं समाप्त करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आज के जो अध्यक्ष हैं, वे कार्य को चलावें।

अप्पासाहब पटवर्धन :

भाई जगन्नाथन् को स्वागताध्यक्ष नियुक्त करने में तमिलनाडवासियों ने अगर उदारता बतायी है, तो मेरे-जैसे एक सादे, भोले, अपरिचित सेवक को ऐसे बड़े जलसे का अध्यक्ष बनाने में जलसे के चालकों ने उससे भी बड़ी उदारता बतायी है। मेरा परिचय देने की जरूरत पड़ी थी; और पू० काकासाहब ने मेरा परिचय देते हुए कहा भी है कि मैं मूक सेवक हूँ। एक मूक सेवक से बड़े वक्तृत्व की अपेक्षा तो आप रखेंगे ही नहीं। मेरा तो इरादा था कि इस साल के जलसे में मैं उपस्थित न रहूँ और उसकी अध्यक्षता करने का प्रसंग मेरे ऊपर आता भी नहीं। मैं पिछले दो जलसों में उपस्थित था। पिछले साल जगन्नाथपुरी में हमको आदेश मिला था, १९५७ के आखीर तक काम करने का। इस आदेश पर अमल करने से पहले फिर-फिर से आकर नया आदेश माँगने का अधिकार भी क्या है हमको? मैं तो पुरी से यही खयाल करके आया था कि १९५७ तक यही काम मुझे पूरी एकाग्रता से करना है और मेरा इरादा था कि महाराष्ट्र की पदयात्रा ही जारी रखकर उसीमें मैं मग्न रहूँ। लेकिन ऐसे ही सब संयोग आये कि वह यात्रा भी स्थगित रखी गयी और मुझको यहाँ आने का आग्रह भी हुआ और जब वह यात्रा स्थगित की, तो यहाँ आना मेरा कर्तव्य भी हुआ। हाँ, मेरे जैसे कार्यकर्ता से मार्गदर्शन की तो अपेक्षा आप लोग रखते ही नहीं। मैं जो बोलूँगा वह मार्गदर्शन के लिए नहीं, लेकिन परिप्रश्न के रूप में होगा। मैं भी आपके जैसा ही एक कार्यकर्ता हूँ। मेरे अनुभव, काम के अनुभव और आपके अनुभव, इसमें बहुत-सी समानता होगी, ऐसी मेरी कल्पना है।

सर्वोदय का लक्ष्य

यह तो सर्वोदय-सम्मेलन है। सर्वोदय का एक अमली कार्यक्रम हमारे हाथ में आया है। भूदान-यज्ञ सर्वोदय का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। सर्वोदय-समाज की

स्थापना पहले से ही हुई थी। सर्वोदय का चिन्तन तभी से हम कर रहे थे। उसके चिन्तन में से फिर यह भूदान-यज्ञ हाथ में आया और उससे हमारे सर्वोदय के काम को बड़ा जोर भी आया। लेकिन यह काम करते-करते हमारे मार्ग में वहुत दिक्कतें भी आती हैं, इसमें खेद या निराशा मानने की कोई जरूरत नहीं है। मैं तो यह ईश्वर की कृपा ही समझता हूँ कि सफलता धीरे-धीरे ही मिलती है, एकदम जल्दी से नहीं मिलती। हमने महाराष्ट्र में संकल्प किया था कि दो साल के अन्दर हम एक लाख एकड़ जमीन इकट्ठी करेंगे। अव चार साल हुए, हम उसका तीसरा हिस्सा भी पूरा नहीं कर पाये हैं। लेकिन उसका हमको जरा भी खेद नहीं होता है। उससे तो हमको आत्म-निरीक्षण का मौका मिलता है। जो हमारे मार्ग में दिक्कतें हैं, रुकावटें हैं, ऐसा हमको लगता है, वे तो आगे बढ़ने की, ऊपर चढ़ने की सीढ़ियाँ हैं। हम जो भूदान-यज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक समाज-क्रान्ति करना चाहते हैं, उसका एक नक्शा महारी आँखों के सामने है। लेकिन उस नक्शे के मुताबिक समाज में परिवर्तन कैसे लाना है, समाज को कैसे समझाना है, उनको कैसे कार्यान्वित करना, ये सब सवाल हमारे सामने हैं। तो मेरे मन में जो विचार हैं, उन्हें दूसरों को कैसे समझा सकता हूँ, यह वड़ा सवाल है। सिर्फ बौद्धिक युक्तिवाद से औरों को समझाना मुश्किल है। इससे ज्यादा महत्त्व का साधन खुद का आचार है। खुद का आचार और फिर प्रचार। खुद करना और फिर औरों को समझाना, ये दो तरीके हैं प्रचार के। मैं ऐसे वहुत-से कार्यकर्ताओं को जानता हूँ, जिनके पास जमीन तो है ही नहीं और मिल्कियत जैसी आमदनी भी नहीं होती है। तो उनको लगता है कि भूदान के वारे में कुछ कार्य होता ही नहीं है। उनका कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है, ऐसा उनको लगता है। लेकिन यह भूमि-दान-यज्ञ जो है, वह सिर्फ भूमि के वास्ते ही नहीं है। यह सर्वोदय के वास्ते है और सर्वोदय के मुताविक मैं अपना जीवन कई तरह से, तरह-तरह से वना सकता हूँ। जिसके पास जमीन न हो, वह सम्पत्ति दे सकता है। लेकिन जिसके पास सम्पत्ति भी नहीं है, वह भी अपने जीवन में वहुत-सी चीजें हैं, जो दाखिल कर सकता है। ऐसी ही एक वहुत महत्त्व की चीज है, खादी और ग्रामोद्योग।

जो कर सकते हैं, वह तो करें

लोग तो ऐसा बोलते हैं कि अगर हमारे पास जमीन होती, तो हम अपनी आजीविका कमाते। अनाज पैदा करने के वास्ते कुछ जमीन चाहिए और जमीन की बहुतायत नहीं है, जमीन की कमी है। लेकिन मैं अपना वस्त्र बनाना चाहूँ, तो उसके लिए जमीन जैसे साधन की जरूरत नहीं है। चरखे तो चाहे जितने हो सकते हैं। जमीन मर्यादित है, लेकिन चरखे मर्यादित नहीं हैं, वस्त्र-उत्पादन के साधन मर्यादित नहीं हैं। मैं अपना वस्त्र पैदा कर सकता हूँ। या तो मेरे जो ग्रामबन्धु, ग्रामजन उसे पैदा करेंगे, उसका इस्तेमाल करना यह मेरा कर्तव्य है, इसका भान हमको नहीं रहा है। हमारा अपना वस्त्र तथा अपनी अन्य जरूरतें हम अपने श्रम से पैदा कर सकते हैं; इसका आत्म-प्रत्यय भी आना चाहिए और ऐसी जो चीजें पैदा होती हैं, उनका इस्तेमाल भी करना हमारा कर्तव्य है। उसका भी भान हमको होना चाहिए। भूदान-यज्ञ में हम "ग्रामराज" कायम करना चाहते हैं। लेकिन गांधीजी ने एक बड़ा महत्त्व का सबक हमको सिखाया है कि बिना स्वदेशी के स्वराज्य नहीं मिल सकता है। तो अगर हम स्वराज्य चाहते हैं, तो हमको स्वदेशी का भी आचरण करना चाहिए। स्वदेश में बनी हुई चीजें इस्तेमाल करना काफी नहीं है, देशबन्धुओं को देशबन्धु समझना, माँ-बाप को माँ-बाप समझना, यह भी स्वदेशी का सबसे ज्यादा महत्त्व का अंग है। हमारे कॉलेज के कुछ ऐसे विद्यार्थी होते हैं कि यदि उनके देहाती पिता उनसे मिलने आ जायँ, तो उनको उसकी शर्म लगती है। यह उनका बड़ा अपमान है। यह आत्म-द्रोह है। तो उसी तरह से जो ग्राम-जन, जो ग्राम-बन्धु हमको मिले हैं, ईश्वर ने हमको दिये हैं, उनसे प्रेम करना, उनके साथ सारा जीवन बिताना, उनके दुख से दुखी और सुख से सुखी होना, उनकी चिन्ता से खुद चिन्तित होना, यह स्वदेशी है और ऐसी ग्रामनिष्ठा जब हममें आ जाय, तब उसमें से खादी, ग्रामोद्योग सहज भाव से हासिल हो जायेंगे। हम भूदान-यज्ञ में काम करनेवाले ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि सारे रचनात्मक कार्यकर्ता हमारी मदद करें।

हमारा दावा

हमारा दावा है कि हमारा भूदान-यज्ञ सब रचनात्मक कार्यों का जोड़ है। इस पर से हमारे ऊपर ही यह जवाबदारी आती है, उत्तरदायित्व आता है कि

हमारे भूदान-काम में यह सब रचनात्मक काम भी शामिल हों। सर्व-सेवा-संघ ने जो पहला ही प्रस्ताव किया–भूदान-यज्ञ के बारे में, उसके भी उत्तरार्ध में यह लिखा है। भूदान-यज्ञ के साथ-साथ खादी और ग्रामोद्योग भी बढ़ने चाहिए। भारत में कोई भूमिहीन न रहा, इतना करने पर भी हमारा काम पूरा नहीं होता है, सिर्फ भूमि ही 'सबै भूमि गोपाल की', ऐसा ही नहीं है, 'सब सम्पति रघुपति कै आही', यह भी विनोबाजी बताते हैं। स्वामित्व-विसर्जन एक बड़ा विचार है।

इस भूदान-यज्ञ में से सहज भाव से, सहज रीति से सम्पत्ति-दान-यज्ञ का भी उद्भव हुआ है और अब उसको ऐसा स्वरूप मिल गया है कि जैसे भूदान-यज्ञ एक कदम है, वैसे ही सम्पत्ति-दान दूसरा कदम है। जैसे हम भूदान-यज्ञ का कुछ लक्ष्यांक और हिसाब रखते आये हैं, वैसा सम्पत्ति-दान-यज्ञ का भी हिसाब चलने लगा है और लोगों के मन में उसके बारे में कुछ अपेक्षाएँ हैं और मुझे लगता है कि अब एक ऐसा मौका आया है कि अगर हम सम्पत्ति-दान-यज्ञ न चलायेंगे, तो भूदान-यज्ञ में भी बहुत प्रगति नहीं कर सकेंगे। अब जैसे थोड़े-से लोग भूमि-दान देते हैं, तो औरों को भी भूदान देने की स्फूर्ति मिलती है, वैसे ही जो मालदार लोग हैं, वे अगर सम्पत्ति-दान देते हैं, तो उनसे भी अन्य संपत्तिवानों और भूमिवानों को भी भूमि-दान देने की स्फूर्ति मिलती है। जो मालदार हैं, वे अगर सम्पत्तिदान न दें, तो भूमिवान् को भी दान देने में थोड़ी हिचक होती है। इससे मुझे ऐसा भी लगता है कि जैसे हम कूच करते हैं, तो बायाँ-दायाँ, बायाँ-दायाँ करते जाते हैं, वैसे ही भूमि-दान और सम्पत्ति-दान ये हमारे बायें-दायें कदम ननेवाले हैं।

अगर मिल्कियत का ही विसर्जन करना है, स्वामित्व का समूल विसर्जन करना , तो उसके पहले सूदखोरी का निर्मूलन होना चाहिए। शोषण का हम ेध करना चाहते हैं, निवारण करना चाहते हैं और शोषण का बुरे से बुरा रीका सूदखोरी है। बटाई, लगान या किराये का तो कुछ हद तक ामर्थन किया जा सकता है। संग्रह का भी कुछ हद तक समर्थन किया जा सकता है। चूँकि हम बोलते हैं कि संग्रह करना पाप है, लेकिन सभी संयोगों में यह संग्रह करना पाप है, यह कहा भी नहीं जा सकता। कभी-कभी संग्रह करना, यह बुद्धिमानी का भी लक्षण होता है और यह एक तुच्छ बात है, ऐसा भी

कहा जा सकता है। मैं अपने घर की कमाई और ख़र्च में से बचाऊँ, संग्रह करूँ, इस खयाल से कि जब कभी आपद आ जायगी, तब उसका उपयोग हो, तो ऐसे संग्रह का समर्थन भी हो सकता है। लेकिन सूदखोरी तो ऐसी है कि उसमें संग्रह घटता नहीं जाता है, बल्कि सरलता से ही, बिना प्रयास के ही बढ़ता जाता है। जो असली सम्पत्ति है, अन्न और वस्त्र या गायें या बैल, वह सब सम्पत्ति विनाशशील है! लेकिन एक हजार रुपये की एक नोट हो, तो नोट में तो ऐसी शक्ति है कि ग्यारह सौ, बारह सौ, तेरह सौ, ऐसे बढ़ते ही जाते हैं। तो, होना तो यह चाहिए कि अगर एक हजार रुपये मेरे पास हैं, तो एक-दो साल में ग्यारह सौ नहीं, बल्कि नौ सौ, आठ सौ, सात सौ, ऐसे कम होते जाने चाहिए। साहूकार जब किसी गरजमन्द आदमी को पैसे देता है और उसके ऊपर सूद वसूल करता है, तब उसका मतलब यह होता है कि जो मालदार है, उसको इनाम मिलता है और जो गरजमन्द है, उसको जुरमाना। जिसने अपने पैसे जमीन में रोके हैं, उसको हम कहते हैं कि जमीन गोपाल की है, छोड़ दो, वह सभी को मिलनी चाहिए। लेकिन जो बैंक में खाता रखता है, उसकी सम्पत्ति तो बढ़ती ही जाती है। तो इसमें विरोध है। इसलिए अगर स्वामित्व-विसर्जन हम करना चाहते हैं, तो उसके पहले सूद का, व्याज का निराकरण करना ही चाहिए।

श्रम की अप्रतिम महिमा

यह जो धन की माया है, पैसे की माया है, उसमें से और भी कई तरह के अनर्थ पैदा होते हैं। यह अर्थ का मायाजाल कुछ ऐसा है कि उसमें आदमी का मूल्य ही नहीं रह पाता। सब मूल्यों का मूल जो आदमी, जिसके वास्ते मूल्यों की उत्पत्ति है, उस आदमी का ही कुछ भी मूल्य नहीं रह गया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि भूदान-यज्ञ की सफलता श्रम-प्रतिष्ठा पर निर्भर है। अब परिश्रम-निष्ठ जीवन बिताकर मैं अच्छी तरह रह सकता हूँ, ऐसा आत्म-प्रत्यय देहाती लोगों में आना चाहिए। और जब ऐसा आत्म-प्रत्यय आ जायगा, तब भी 'इयं पृथ्वी सर्वावित्तस्य पूर्णास्यात्' ईश्वर ने हमको ऐसी ऐश्वर्यवान् वसुन्धरा, समृद्ध वसुन्धरा दी है, तो एक-दूसरे से लड़ने की क्या जरूरत है? ईश्वर ने हमको बहुत कुछ दिया है, हम आपस में बाँटकर खा सकते हैं। किसीको भूखे रहने

की जरूरत नहीं है, ऐसा आत्म-प्रत्यय अपने अन्दर आना चाहिए, तभी यह भूदान-आन्दोलन सफल होगा और यह तभी हो सकता है, जब कि शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा बढ़े, उसका मूल्य भी बढ़े। इस पैसे से आदमी का अवमूल्यन हो गया है। श्रम की प्रतिष्ठा नहीं रही है। श्रमिकों को चाहिए कि वे अपना श्रम वेचें नहीं। जैसे यह शरीर-विक्रय, देह-विक्रय करना शर्मनाक बात है, वैसे ही श्रम-विक्रय करना शर्म की बात मानी जानी चाहिए। श्रमिकों में ऐसा आत्म-प्रत्यय आ जाना चाहिए कि वे अपना श्रम वाजार में न वेचें। जरूरत हो तो श्रम के बदले में श्रम ले सकते हैं। श्रम का मूल्य श्रम में ही मिलना चाहिए, पैसे में नहीं। ऐसा जब होगा, तभी मनुष्य की प्रतिभा बढ़ेगी और तभी सच्चा साम्ययोग स्थापित होगा। नहीं तो आज एक वकील का एक घंटा एक नाई के हजार घंटे के बराबर है। होना तो यह चाहिए कि जितने समाज-पोषक श्रम के जरिये हों, चाहे वकील का काम हो, चाहे नाई का काम हो; उन सबकी प्रतिष्ठा और सबका मूल्य समान होना चाहिए। और यह तभी हो सकता है, जब हम श्रम-चलन जारी करेंगे। श्रम-चलन के मानी यह है कि चाहे नाई का, चाहे लुहार का, चाहे बढ़ई का, किसी प्रकार का श्रम हो, वह जो समाजोपयोगी या समाज की धारणा के वास्ते आवश्यक श्रम है, उन सबका मूल्य समान है। उसमें कुछ उच्च या नीच न हो या किसी तरह भी भिन्नता न हो—भिन्नता रहे भी, तो कम-से-कम हो। एक लुहार, तमेरा और सुनार, तीनों की प्रतिष्ठा और तीनों के कामों का मूल्य अलग-अलग रहता है, ऐसा नहीं होना चाहिए। तभी क्या कुम्हार, क्या बढ़ई, क्या. नाई, क्या डॉक्टर, क्या शिक्षक, क्या मुंशी, इन सभी का समाज में मूल्य समान होगा। तो मेरा कहने का मतलब यह है कि ये सब सर्वोदय ,, अंग हैं, सर्वोदय के साधन हैं। भूदान से हमको सर्वोदय हासिल करना है। और यह सब अगर करेंगे, तो भूदान-यज्ञ को भी मदद मिलनेवाली है। कार्यक्रम का जब हम विचार करते हैं, तब तो हमको एकाग्रता से काम करना चाहिए। लेकिन एकाग्रता की हमारी दृष्टि समग्रता की होनी चाहिए। हममें से किसीके मन में यह भी आ जाता है कि हमारा अगला कदम क्या हो ? लेकिन मुझे लगता है कि अगले कदम का विचार करने की कोई जरूरत नहीं है। अगला कदम आगे जाकर खोजेंगे। १९५७ के अंत तक तो हमें जोरों से यह विचार-प्रचार

करना है, स्पष्ट रूप से करना है। मेरे कहने का मतलव यह था कि जब हम भूदान का कार्य कर रहे हैं, तब सर्वोदय का समग्र नक्शा भी हमारी आंखों के सामने होना चाहिए और सरलता से उसके जो-जो अंग उसमें शामिल कर सकते हैं और जिनका अमल कर सकते हैं, हमको करना चाहिए और दूसरों से करवाना भी चाहिए। इससे हमारे भूदान-यज्ञ के कार्य को भी वल मिलेगा, ऐसा मेरा मत है।

शाम को ५-३० वजे अधिवेशन का काम स्थगित हुआ। ६ वजे नित्य की तरह सार्वजनिक प्रार्थना हुई, जिसमें विनोवा का प्रवचन हुआ। प्रार्थना के आरम्भ में नित्य पाँच मिनट का सम्पूर्ण मौन रहता था। इस नये उपक्रम का शुभ परिणाम रोज शाम की प्रार्थना में दिखाई देता था। ◆◆◆

(खुला अधिवेशन)

दूसरा दिन

सोमवार, २८ मई, १९५६ : सुवह ९ वजे

श्री विनोवा :

आज हम आपके सामने अत्यंत नम्र होकर आये हैं। जब ऐसे समूह के सामने वोलने वैठता हूँ, तो ऐसा महसूस नहीं होता कि मैं वोल रहा हूँ। लेकिन यह तव होता है, जव चित्त एकाग्र होता है। जहाँ एकाग्रता नहीं होती है, वहाँ जो व्याख्यान होता है, वह व्यक्तिगत होता है और व्यक्तिगत व्याख्यान पर हमारा ज्यादा विश्वास नहीं है। जब समाधि लगती है, तभी हम कहने लायक चीज कहते हैं।

इस वक्त हमें नम्रता की सख्त जरूरत है। हम ऐसे मौके पर, ऐसे स्थान में आ पहुँचे हैं कि जहाँ हमारा काम नम्रता से ही वढ़ सकता है। इस वास्ते हम सव कार्यकर्ताओं की ओर से भगवान् की नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर लेते हैं।

बुद्ध भगवान् की प्रेरणा

इस साल भूदान के काम को अपेक्षा से अधिक यश आया है। हमें इसका न कोई आश्चर्य है, न इसमें हमारा कर्तृत्व है। जिस काम के लिए परमेश्वर का आशीर्वाद होता है, वह काम ऐसे ही आगे बढ़ता है। भूदान के लिए सबसे बड़ी घटना इस साल जो हुई, वह यह है कि बुद्धदेव की जयन्ती का उत्सव इस साल हुआ। हम चाहते हैं कि हमारा काम एक निश्चित मुद्दत में एक स्पष्ट रूप लेकर लोगों के सामने प्रकट हो। उसके लिए सबसे अनुकूल घटना बुद्ध भगवान् का स्मरण है। हमारे देश के इस महापुरुष का स्मरण कुल दुनिया ने किया। हम समझते हैं, जिन लोगों ने भूदान का नाम सुना होगा और जिन लोगों ने भूदान का नाम नहीं सुना होगा और बुद्ध भगवान् का स्मरण किया होगा, उन्होंने भूदान को आशीर्वाद दिया। बुद्ध ने दुनिया को जो शिक्षा दी, वह सर्वप्रथम हमारे देश को दी। उसे उठाने की जिम्मेदारी सबसे पहले हमारे देश की है और हम लोगों ने उनका अवतारी स्वरूप पहचान करके उनके विचार को पूर्ण मान्यता दी है। आज उन्हींका अवतार चल रहा है। हम अपने हर धर्म-कार्य के और संकल्प के आरम्भ में "बुद्धावतारे" कहते हैं। याने हमारा आज का जीवन उनके मार्गदर्शन में चलना चाहिए, ऐसा हम चाहते हैं और आप जानते हैं कि इस वक्त रशिया ने अपना सैन्यसंभार कुछ कम करने का सोचा है। हम नहीं जानते कि ईश्वर की प्रेरणा किस दिशा में, कैसे काम करती है। हम इतना जानते हैं कि उसकी प्रेरणा हमारे काम के लिए बहुत ही अनुकूल है। इसलिए हमने कहा कि जिन्होंने बुद्ध भगवान् का स्मरण किया, उन्होंने हमारे काम को आशीर्वाद दिया। यह हमारे भूदान के काम के लिए बहुत ही बड़ी ताकत है।

हमने बहुत नम्रता से दावा किया था और प्रथम उच्चारण उसी दिन किया था, जिस दिन बुद्ध भगवान् की जयंती थी। हम लखनऊ में थे। हमने कहा था, बुद्ध भगवान् का धर्मचक्र-प्रवर्तन का कार्य आगे चलाने की कोशिश हम करेंगे। बुद्ध भगवान् ने जो प्रेरणा दी, उसके कारण ही विहार का काम आगे बढ़ा, यह हमने अपनी आँखों से देखा, जैसे हम अपनी आँखों से किसी मनुष्य

को देखते हैं। एक दिन बिहार में हमें एक लाख एकड़ जमीन मिली थी। वह बुद्ध-जयंती का दिन था। एक दिन हमने संकल्प किया था कि गया जिले में एक लाख एकड़ जमीन हासिल करेंगे। वह प्रेरणा बोधगया में हुई, जो बुद्ध भगवान् का स्थान है। उसी प्रेरणा की स्मृति में समन्वय-आश्रम का छोटा-सा प्रयत्न भी शुरू किया। हम आशा करते हैं कि हिन्दुस्तान के लोग इस स्मृति से प्रभावित होकर भूदान के काम में पूरी तरह से जोर लगायेंगे। यह प्रेरणा काम कर रही है, उसका अनुभव हृदय में प्राप्त कर लेना है। वह प्राप्त करके काम करना है।

व्यापक परिमाण में ग्रामदान

दूसरी घटना इस आन्दोलन में हुई है, वह हमारे लिए बहुत ही आशादायक है और वह है—व्यापक परिमाण में ग्रामदान, जो उड़ीसा में हुआ, जिससे जमीन की मालकियत की जड़ें हिल गयीं और ग्रामराज्य किस तरह बनाया जा सकता है, यह सोचने के लिए सामग्री मिली और उस ग्रामराज्य की कल्पना करने के लिए कुछ चिंतन भी इस साल हुआ। एक भाई ने हमें पत्र लिखा कि अब तक आपके इस आन्दोलन की तरफ कुछ शंका की दृष्टि से देखते थे, पर जब से व्यापक परिमाण से ग्रामदान शुरू हुआ, तब से विश्वास हो गया कि यह आन्दोलन क्रान्तिकारी है। उड़ीसा के बाद हमने आन्ध्र में प्रवेश किया, जहाँ बहुत-से हमारे कम्युनिस्ट भाई काम करते हैं। हमें कहने में खुशी होती है कि बहुत-से हमारे कम्युनिस्ट भाई इसमें काम करने के लिए तैयार हुए। कुछ लोग इसमें भय देखते हैं, हम इसमें कोई भय नहीं देखते हैं, क्योंकि हमारे मन में आत्मविश्वास है। जिसके मन में आत्मविश्वास नहीं होता है, उसे भय मालूम होता है। परंतु हम इससे बहुत ही उत्साहित होते हैं कि वे भाई हमारे साथ आये। हम उनका स्वागत करते हैं। ग्रामदान में एक नया विचार ही खुल गया है। सिर्फ भारत के सामने ही नहीं, बल्कि दुनिया के सामने भी एक मार्ग खुल गया है। यह दूसरी घटना है, जो बहुत ही आशाजनक है।

वितरण की कुंजी

तीसरी बात यह है कि हमारे हाथ में वितरण की कुंजी आयी है। कुछ लोग पूछते हैं कि आपने बहुत जमीन हासिल की, लेकिन उसका वितरण तो

नहीं किया। हम कहते हैं कि जमीन प्राप्त करने की कुंजी हमें एकदम हासिल नहीं हुई है, वह धीरे-धीरे हमारे हाथ में आयी है। उसी तरह जमीन के बँटवारे की कुंजी पहले हासिल नहीं थी, अब हासिल हुई है। हमने कहा था कि हिन्दुस्तान की कुल जमीन का बँटवारा एक दिन में करना है और वह एक दिन लाने के लिए हमें कोशिश करनी है। कुल गाँवों का बँटवारा एक ही दिन में हो सकता है। जैसे हम सुनते हैं और अनुभव भी होता है कि एक ही दिन में कई प्रान्तों में बारिश होती है और कुल जमीन पर हो जाती है। बारिश एक-एक गाँव की जमीन भिगोकर आगे नहीं बढ़ती, वह एकदम कुल जमीन पर बरसती है। इससे बेहतर उपमा सूर्यनारायण की है। उसके उदय से एक ही समय सारे घरों में प्रकाश होता है। यह तो कुदरत की उपमा हुई। लेकिन मानव-समाज में भी ऐसी उपमा हम देखते हैं। एक ही दिन में हर घर में दीवाली मनायी जाती है। सभी घरों में दीपक जलते हैं। लोगों में इसकी भावना पैदा हुई है और वह जिस तरह लोगों को मालूम हो गयी है, उसी तरह से एक दिन में कुल जमीन का बँटवारा होना चाहिए, हो रहा है और होगा। इसके कुछ प्रयोग करने की हिम्मत कुछ भाइयों ने की है। बिहार में एक ही दिन में सौ-दो सौ गाँवों की जमीन का बँटवारा किया गया और उसमें हमारे भाई यशस्वी हुए। किस तरह वह किया, यह वर्णन करने का यह समय नहीं है। इससे लोगों को विश्वास हो गया कि एक ही दिन में कुल गाँवों की जमीन का बँटवारा हो सकता है। यह असंभव नहीं है। उसीका प्रयोग उड़ीसा में हुआ। वहाँ सात-आठ सौ ग्रामदान हुए। उनमें से चार सौ ग्रामों में जमीन बँटी। दान की प्राप्ति में जितनी मेहनत लगती है, उससे ज्यादा मेहनत बाँटने में है। लेकिन लोकशक्ति से यह कार्य हो सकता है, यह सिद्ध हुआ। इसलिए मैंने कहा कि यह कुंजी हमारे हाथ में आयी।

अखिल भारतीय नेतृत्व नहीं, स्थानिक सेवकत्व

भूदान की एक बड़ी खूबी यह है कि इसमें अखिल भारतीय नेतृत्व नहीं बनता, क्योंकि भूदान-आन्दोलन पैदल चलता है। इन दिनों कितने ही अखिल भारतीय नेता हुए। लेकिन बुद्ध भगवान् अखिल भारतीय नेता नहीं बन सके। केवल पाली भाषा में वे बोलते थे और प्रयाग से लेकर गया तक घूमे। परंतु

उनका विचार विश्वव्यापक होने लायक था। वह इसलिए फैला कि इस विचार के लायक उनका जीवन था। शिवाजी अखिल भारतीय नेता नहीं बन सके। सतत प्रयत्न करने के बावजूद भी देश का छोटा-सा हिस्सा उनके हाथ में आया। जनक्रान्ति का जो कार्य होता है, वह एक स्थान में बनता है और हवा के जरिये दुनिया में जाता है। इस आन्दोलन की यह खूबी हमारे लिए बहुत मददगार है। पंजाब के लोगों को पूरा विश्वास हो गया है कि बाबा चंद दिनों में हमारे प्रान्त में नहीं आनेवाला है। अगर बाबा रेलगाड़ी से जाता, तो एक महीने में पहुँचता। परंतु मैं पैदल यात्रा करता हूँ, इसलिए नेतृत्व स्थानिक ही होता है। बल्कि यह कहना चाहिए कि स्थानिक नेतृत्व भी नहीं बनता है, स्थानिक सेवकत्व बनता है, क्योंकि हम सेवक बनकर लोगों के पास पहुँचेंगे, तभी जमीन मिलेगी। नेता के नाते पहुँचेंगे, तो जमीन नहीं मिलेगी। आज ही सुबह हम कहते थे कि हमारी ताकत इसीमें है कि हम अपने स्वामी के सेवक हैं। तुलसीदासजी रघुनाथजी को जगाने के लिए क्या करते थे? वे गाते थे, "जागिये रघुनाथ कुँवर"। इसी तरह तमिल-भक्त भी गाते हैं। वे जगाने के लिए गायन गाते हैं, भजन गाते हैं। इस तरह प्रभु को जगाना है। लोकहृदय में जो प्रभु विराजमान हैं, उन्हें जगाने के लिए हम भक्त होकर जाते हैं, तभी वे जागते हैं।

गणसेवकत्व का आविष्कार

परन्तु इस साल जो कुछ हुआ, वह यह है कि व्यक्ति के सेवकत्व के बदले गण-सेवकत्व हो सकता है। आप लोग जानते हैं कि इन दिनों रशिया में एक खोज हुई है। रशिया का जो उपकारकर्ता माना जाता था, वह उपकारकर्ता नहीं है, यह खोज हुई है। जिसके स्तुति-स्तोत्र से इतिहास के पन्ने भरे थे, उस इतिहास के बदलने की बात हुई है। दुनिया के इतिहास में इतना बड़ा भारी संशोधन पहला ही है। हमने अखबार में पढ़ा था कि कुछ दिनों तक रशिया में इतिहास नहीं सिखाया जायगा, नया इतिहास संशोधनपूर्वक लिखा जायगा और उसके बाद वह पढ़ाया जायगा। याने 'मद्यसाहबा' का रूपान्तर 'तबर्रा' में हो गया। इसलाम के दो पंथ हो गये, एक सुन्नी और दूसरा शीआ। वहाँ कुछ खलीफा हो

गये। उनकी स्तुति करना एक पंथ के लोग धर्म मानते हैं और उन खलीफाओं की निन्दा करना दूसरा पंथ अपना धर्म मानता है। जो स्तुति करना धर्म मानते हैं, वे मद्यसाहबा हैं और जो निन्दा करना धर्म समझते हैं, वे तवर्रा हैं। यह स्तुति और निन्दा करने का दिन एक ही आता है! एक ही दिन, एक ही जगह अगर वह चलेगा, तब तो झगड़े और मारामारी होगी। इसलिए रशिया में अब तक मद्यसाहबा चलता था, अब तबर्रा चलेगा, ऐसा हमने कहा। याने एक नयी खोज हुई। तालीम में स्टालिन की स्तुति का विशेष महत्त्व नहीं है। वह व्यक्तिगत विषय है। परन्तु वहाँ एक नयी बात सूझी है, वह विशेष है। कहते हैं, अब कलेक्टिव लीडरशिप चलेगी—व्यक्तिविशेष का नेतृत्व नहीं, गणनेतृत्व चलेगा। यह एक नया विचार रशिया में निकला। उसी तरह भूदान में गण-सेवकत्व की शोध हुई।

मध्यप्रदेश में कई कार्यकर्ता इकट्ठे होकर लोगों के पास पहुँचकर दान माँगते हैं। यह उनका व्यापक प्रयोग शुरू हुआ है, क्योंकि ईश्वर की कृपा से नये लोगों को मौका देने के लिए वहाँ पुराने नेता उसमें शामिल नहीं हैं। मतलब, बने-बनाये नेता काम में नहीं आते हैं और नये नेता एकदम बनते नहीं हैं, तो छोटे-छोटे कार्यकर्ता काम करते हैं। तो उन लोगों ने सामूहिक तौर पर काम करना शुरू किया है। यह गणसेवकत्व बड़ा सफल होता है, ऐसा अनुभव आया है। वहाँ के जो कार्यकर्ता हमसे मिले थे, हमने देखा कि उनका आत्मविश्वास खूब बढ़ा है। हम आन्दोलन का नाप कितनी जमीन मिली, इस पर से नहीं करते हैं। हम यह देखते हैं कि हमारे कार्यकर्ता की हिम्मत कितनी बढ़ी है। इस तरह से जनशक्ति के जरिये काम हो सकते हैं, व्यक्ति के नेतृत्व के अभाव में भी गणसेवकत्व सफल हो सकता है, यह पिछले साल में सिद्ध हुआ।

सम्पत्तिदान की प्रगति

एक और भी उत्तम अनुभव आया। हमें भूमिदान तो मिलता था, पर लोग कहते थे कि संपत्तिदान मिलेगा या नहीं? जब संपति मिली, तब इन लोगों का संदेह मिटा। पहले तो भूदान के बारे में भी ऐसा ही संदेह इनके मन में था। संदेही मनुष्य के लिए एक संदेह जहाँ समाप्त हुआ कि वहाँ दूसरा शुरू होता

है, यही कार्यक्रम होता है । पैगम्बर ने ऐसा लिखा कि संदेह करनेवाले लोगों को अगर स्वर्ग में ढकेला जायेगा, तो भी वे संदेह करेंगे कि यह स्वर्ग है या नर्क ! इसलिए संदेह होता है कि जमीन तो मिली, पर संपत्ति मिलेगी या नहीं ? और संपत्तिदान मिलेगा, तो भी वह सतत कैसे चलेगा ? पर इसका अनुभव इस साल बहुत आया। अभी जयप्रकाशजी की बिहार में जो सभाएँ हुईं, उनमें हजारों संपत्तिदान-पत्र मिले, इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी एक दिन का या किसी विशेष स्थान का वह काम था। पहले से ही तैयारी थी। फिर भी हजारों दानपत्र प्राप्त करना छोटी बात नहीं है । कार्यकर्ता जुटे होंगे, गाँव-गाँव घूमे होंगे। यही अनुभव उड़ीसा के छोटे-छोटे गाँवों में आया। आज काफी तादाद में वहाँ संपत्तिदान-पत्र मिल रहे हैं। इसका भावार्थ यह है कि अभी लोक-हृदय इसके लिए तैयार नहीं हुआ है कि कोई आते हैं, तो उसे दान की दीक्षा देते जायँ ।

दोष मनुष्य में नहीं, समाज-रचना में

कुछ लोग तो कहते हैं कि इन दिनों लोगों का नैतिक स्तर गिरने लगा है। इसी तरह का भाव कल राजाजी के व्याख्यान में था। हम कहना चाहते हैं कि यह ऊपर-ऊपर का भास है। समाज की रचना ही गलत है, इसलिए पैसे का महत्त्व बढ़ा है और पैसे की कोई स्थिर कीमत नहीं है। आज सब लोग देख रहे हैं कि पैसा आज एक कीमत बोलता है, कल दूसरी कीमत बोलता है। इसलिए हमें लगता है कि लोगों का स्तर नीचे नहीं गिरा है। आज हजार रुपये मिले, तो मनुष्य को लगता है कि यह बस है। लेकिन कल जब उसे मालूम होता है कि उस हजार रुपये की कीमत पाँच सौ रुपये हुई है, तो उसे लगता है कि इतने हजार रुपये नाकाफी हैं। लोभ-वृत्ति मनुष्य में होती है, इस वास्ते कितना भी पैसा आया, तो भी समाधान नहीं होता । हमारे एक भाई थे, उन्होंने हमको कहा था कि हमको दस हजार रुपये मिल जायेंगे, तब हम जन-सेवा करेंगे। हमने कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है, पर देखिये। फिर दो-चार साल बाद उसके पास दस-बारह हजार रुपये हो गये। तो हमने पूछा कि सार्वजनिक सेवा के लिए कब आते हो, तो उसने कहा कि इन दस-बारह हजार रुपयों की कीमत कम हुई है, इसलिए अब पचास हजार रुपये कमाने होंगे ! हमें तो यह विनोद मालूम

हुआ, लेकिन हम कबूल करते हैं कि इसमें तथ्य भी है। सारांश, श्रम के बदले पैसे को महत्त्व दिया गया, यही गलत काम हुआ। पैसे की कीमत अस्थिर हो गयी है, यह दूसरी गलती है। इस वास्ते लोकमानस में पैसे की तृष्णा बढ़ी, इसमें दोष उनका उतना नहीं, जितना कि गलत समाज-रचना का है। जैसे पत्तागोभी में अनेक स्तर होते हैं और ऊपर के छिलके पर हवा का परिणाम होता है, तो कभी-कभी वह हिस्सा सड़ा हुआ होता है और क्योंकि ऊपर का पत्ता सड़ा होता है, तो मालूम नहीं होता कि अन्दर अच्छा है या नहीं। जब ऊपर के पत्ते को हम हटाते हैं, तब मालूम होता है कि अन्दर स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल पत्ते हैं। उसी तरह मनुष्य के चित्त की स्थिति होती है। कभी-कभी खराब हवा के कारण मनुष्य के मन का ऊपर का हिस्सा खराब हो जाता है, लेकिन उस पर से कोई अन्दाज लगायेगा कि यह मन सड़ा है, तो वह अन्दाज गलत होगा। ऊपर का हिस्सा हटा दिया, तो अन्दर स्वच्छ-सुन्दर मन है। हम कहना चाहते हैं कि अब भी लोकमानस दान के लिए, त्याग के लिए तैयार है—प्रस्तुत है। हमने हिन्दुस्तान में कई जगह अनुभव किया कि हमारी सभा में हजारों लोग शान्ति से सुनते हैं। हम उन्हें क्या समझाते हैं? यही कि आज का तुम्हारा जीवन गलत है, उसमें सुधार करना होगा, अपने भाई को हिस्सा देना होगा और समाज को जीवन अर्पित करना होगा। हम आपको एक सुझाव देते हैं। कोई ऐसा शख्स निकले, जो हिन्दुस्तान में जाये और जगह-जगह यह समझाये कि "अगर कोई चीज अच्छी है, तो वह स्वार्थ है। भोग भोगना उन्नति की बात है।" तो फिर, हम देखना चाहेंगे और वह बोलनेवाला भी देखेगा कि कितने लोग उसकी बात सुनते हैं। हम कहते हैं, ऐसे मनुष्य को हमारे लोग इसलिए पत्थर नहीं मारेंगे कि हिन्दुस्तान में संयम है। हजारों लोग उसकी बात नहीं सुनेंगे।

नैतिक स्तर गिर नहीं रहा है

हमसे जब पूछा जाता है, तब हम कहते हैं कि यह सत्ययुग है, कृतयुग का आरम्भ है। बम्बई से नौ सौ मील पैदल चलकर जवान लड़के यहाँ आये। उनमें एक चौदह साल का लड़का है। रोज अठारह मील चलने का औसत

था। कभी-कभी पच्चीस मील भी वे चले हैं। आप लोग जानते हैं कि बम्बई के लड़कों को तितिक्षा की तालीम तो नहीं मिलती है, लेकिन वे मजे में आये। सम्पत्तिदान और भूदान का विचार क्या है, यह समझाते वे चले आये। अब बाबा जाता है और उसे जमीन मिलती है, तो मान लीजिये कि यह बाबा का प्रभाव है। परन्तु जब बच्चे आते हैं, तो उनका क्या प्रभाव पड़ा होगा ? उनके क्या व्याख्यान होते हैं ? पैदल चलते हैं, इसलिए उनका आदर होता है, यह हम समझ सकते हैं। क्योंकि बच्चों का लाड़ तो लोग हमेशा किया करते हैं। परन्तु उनको सिर्फ खाना नहीं मिला, उसके अलावा ७५० एकड़ का दान भी मिला। तीन भाषा के प्रान्तों में उन्हें चलना पड़ा। हम समझते हैं कि यह बुद्धदेव की प्रेरणा है। वे बहुत खुश हुए होंगे कि ऐसे बच्चे करुणा का कार्य कर रहे हैं। इसलिए हमने कहा कि यह कृतयुग आया है। शास्त्रकार तो युगों की ऐसी व्याख्या करते हैं कि मनुष्य जब सोता है, तब वह कलियुग में रहता है, बिस्तर छोड़ता है, तब द्वापरयुग में आता है, उठ खड़ा होता है, तो त्रेतायुग में रामजी के साथ होता है। आप ही देखिये, यह कृतयुग है या कलियुग। इस वास्ते यह बात गलत है कि लोगों का नैतिक स्तर नीचे जा रहा है, बल्कि हमें तो यह भास होता है कि लोगों का उत्थान बहुत शीघ्रता से हो रहा है और उनका स्तर ऊँचा उठ रहा है। हमारी जिस सभा में स्कूल-कॉलेज के लड़के होते हैं, वह सभा अत्यन्त शान्त रहती है। लोग हमें कहते रहते हैं कि आजकल के विद्यार्थी उद्धत और उद्दंड बन गये हैं। अंग्रेजी में एक अलंकार है, जिसे 'ट्रांसफर्ड इपिथेट' कहते हैं—जो विशेषण एक के लिए लागू होना चाहिए, उसे दूसरे के लिए लागू करते हैं। तालीम की पद्धति अत्यन्त रद्दी है, उसको जो गाली देनी चाहिए, वह नाहक लड़कों को देते हैं। हमें तो आश्चर्य होता है कि इतनी रद्दी तालीम के बावजूद भी लड़के इतने शान्त कैसे रहते हैं। हमें यही उत्तर मिलता है कि ईश्वर की कृपा है और ईश्वर भारत से कुछ काम लेना चाहता है। पाँच साल का हमारा अनुभव है। हम देखते हैं कि हिन्दुस्तान में ईश्वर की प्रेरणा काम कर रही है। मैं यह सब उस संदर्भ में कह रहा था कि लोग सम्पत्ति देने को राजी हैं। आज की ही बात है, एक भाई कुछ पैसे दान में दे रहे थे। उनको समझाया गया कि सम्पत्तिदान

का तरीका अलग है। यह फंड इकट्ठा करने की बात नहीं है। 'तो सम्पत्तिदान का तरीका बहुत ही बेहतर है', ऐसा उस भाई ने कहा और सम्पत्तिदान देना मान्य किया। भाइयो, पिछले साल का अच्छा अनुभव है कि संपत्तिदान का काम बढ़ रहा है।

भूमिहीनों का हृदय-परिवर्तन

पिछले साल का एक और अनुभव है। उसमें भी एक ताकत भरी है। मध्यप्रदेश में आदाता-सम्मेलन किया गया। जिन्हें जमीन मिली है, वे छोटे-छोटे लोग हैं। कार्यकर्ताओं ने आशा की थी कि सौ-सवा सौ लोग आयेंगे, लेकिन कुल जिलों में से पाँच सौ लोग आये थे। उन्होंने बातें समझ लीं और हमें भी कुछ देना चाहिए, ऐसा तय किया। हर साल की जो फसल आयेगी, उसमें से एक हिस्सा देने का तय किया। बहुत लोग पूछते हैं कि इस आन्दोलन में भूमिहीनों के हृदय-परिवर्तन की और उनके उत्थान की क्या योजना है। इस अनुभव से उन लोगों को अब अच्छा उत्तर मिलेगा।

भारत में नैतिक क्रांति के आसार

हमने एक नयी बात की है। हमने व्यापारियों का आवाहन किया है। हम समझते हैं कि इसका भी अच्छा अनुभव आयेगा। हमसे कहा गया कि उसका असर व्यापारियों पर अच्छा हो रहा है। व्यापारियों को हिन्दुस्तान में एक धार्मिक स्थान दिया गया है। सत्य, प्रेम आदि गुणों को सब दुनिया में गौरव का स्थान है। इन गुणों की सब धर्मों में कीमत होती है। परन्तु व्यापार को भी एक स्वतन्त्र धर्म माना गया, यह बात हिन्दुस्तान में ही हुई है। दुनिया के लोग व्यापार को व्यावहारिक काम मानते हैं। पर हिन्दुस्तान में चातुर्वर्ण्य की योजना में व्यापार को वैश्य का एक स्वतन्त्र धर्म माना गया। वैश्य को मोक्ष का उतना ही अधिकार है, जितना वेदाध्ययनशील ब्राह्मण को।-यह हिन्दुस्तान की विशेषता है। व्यापार भी करो और मोक्ष भी पाओ, यह अजीब बात है। दूसरे देशों में यह कहा गया कि सूई के छेद से ऊँट चला जा सकता है, परन्तु श्रीमान् को मोक्ष नहीं मिलेगा। लेकिन हिन्दुस्तान के दयालु शास्त्र की योजना में व्यापारी को मोक्ष-मार्ग खुला कर दिया गया, कुछ शर्त के साथ। हमने व्यापारियों से निवेदन किया कि यह जो भार आप पर

डाला गया है, वह आप उठाइयेगा और हमें सुनाया गया है कि उसका असर व्यापारियों पर हुआ है। हम कोई भविष्यवादी नहीं हैं, न भविष्यवाद पर हमारी श्रद्धा है। पर हमारे मन में कोई सन्देह नहीं है कि भारत में एक नैतिक क्रान्ति होने जा रही है।

हानियों का लेखा

गये साल में हानियाँ भी हुई और वे काफी गंभीर हैं। इधर इतना नैतिक उत्थान का अनुभव और उधर इतनी नैतिक हानि का अनुभव, यह क्या तमाशा है? यह है परमेश्वर की लीला! इसका भी समाधान है। कई लोग कहते हैं कि एक ओर लोग जमीन देते हैं और दूसरी ओर वे ही बेरहमी से बेदखलियाँ करते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि लोग बाबा को ठग रहे हैं, वे दान करने का ढोंग करते हैं और उनकी असलियत प्रकट होती है तब, जब कि वे बेदखलियाँ करते हैं। हम कहते हैं कि हम इससे उल्टा समझते हैं। हम कबूल करते हैं कि लोग दान भी देते हैं और उधर बेदखल भी करते हैं। लेकिन हम समझते हैं कि वह जो बेदखली का काम है, वह असलियत नहीं है, वह उनका ढोंग है और बाबा को जो दान देते हैं, वह उनकी असलियत है। यह इसलिए कि उनकी दान की प्रवृत्ति उनकी आत्मा का गुण है और वे जो बेदखलियाँ करते हैं, वह परिस्थिति का परिणाम है। सरकार कानून नहीं बना रही है, लेकिन कानून बनेगा—बनेगा, ऐसा चार साल से चल रहा है। वे लोग बेचारे भयभीत हैं, सँभालना चाहते हैं, इसलिए सँभाल लेते हैं। लोभ तो मनुष्य में है ही, परन्तु उसके साथ भय भी है। इसलिए परिणामस्वरूप परिस्थितिजन्य दोष हो रहा है। लोगों का यह जो बुरा रूप प्रकट हो रहा है, वह असलियत नहीं है। बाहर की हवा के कारण ऊपर का वह अस्तर सड़ गया है। बाबा को यह कुशलता सधी है कि ऊपर का छिलका हटाता है और अन्दर ही देखता है। ऊपर का हिस्सा सड़ा हुआ हो, तो भी हटाता है और सड़ा हुआ न हो, तो भी हटाता है। बाबा ने कहा है कि पत्तागोभी काटने का नियम ही यह है कि ऊपर का छिलका निकाल देना चाहिए। इस वास्ते हम अपने अनुभव से कह रहे हैं कि लोगों की असलियत दान में प्रकट होती है। फिर भी ऊपर का छिलका सड़ गया, यह इष्ट तो नहीं है। उसके सड़ने से अन्दर कुछ परिणाम होता है, इस वास्ते

ऊपर का छिलका अच्छा रहे, ऐसी ही कोशिश करनी चाहिए। उस हिसाब से इन हानियों का जिक्र करता हूँ। परन्तु हम निराश नहीं हैं।

भाषावार प्रान्त का विचार गलत नहीं

भाषावार प्रान्त के कारण कई जगह हिंसा के प्रकार हुए। उसका बहुत दुख हमको है और हमने माना है कि यह भूदान-यज्ञ की हार है। हमारा ध्यान इस तरफ गया है। विशेष परिश्रम शहरों पर हमने नहीं किया, यही इसका कारण है। हम यह कह देना चाहते हैं, इसके पहले भी कहा है कि भाषावार प्रान्त बनाने में कोई गलती नहीं है, बल्कि हम यह मानते हैं कि लोगों की भाषा में राज्य नहीं होगा, तो स्वराज्य के कोई मानी नहीं है। लोगों की जो भाषा है, वह हाईकोर्ट का न्यायाधीश नहीं जानता है, तो वह न्यायाधीश बनने के लायक नहीं है। किसान जो बात करता है, वह उसे समझनी चाहिए और उसीकी भाषा में जवाब देना चाहिए और उसका बयान तर्जुमा करके नहीं, वैसा ही सुनना चाहिए, उसका फैसला भी उसी भाषा में देना चाहिए। तालीम भी लोगों की भाषा में देनी चाहिए। यह जनता का अधिकार है और यही स्वराज्य का अर्थ है। इसलिए हम उसमें कोई गलती नहीं मानते हैं, बल्कि भाषावार प्रान्त की रचना की माँग करनेवाले को 'तू संकुचित है, तू संकुचित है', यह कहकर संकुचित बनाया गया है। यह तो उपनिषद् का सिद्धान्त है—अगर हम सामनेवाले को कहते हैं कि 'तू पापी है, तू पापी है', तो वह पापी ही बनता है। समझने की जरूरत है कि भाषावार प्रान्त-रचना की माँग सज्जनों की तरफ से ही हुई है, दुर्जनों की तरफ से नहीं। इसलिए इसमें गलती नहीं है। परन्तु उन पर संकुचितता का आरोप किया, उससे वे संकुचित बने, और कुछ लोग पहले से संकुचित होंगे भी। परिणामस्वरूप काफी हिंसा हुई, जो बड़ी दुःखद घटना है।

हिंसा का कारण, डावांडोल निष्ठा

अब यह गंभीरता से सोचने लायक विषय है। यह क्यों हुआ? इसलिए कि हमने गलत मनुष्यों का गौरव आज तक किया। १९४२ के आन्दोलन में जनता की तरफ से कई प्रकार किये गये—रेलवे की लाइन आदि उखाड़ना। ये जो सारी

चीजें भाषावार प्रान्त-रचना के आन्दोलन में हुईं, वे सारी १९४२ में हो चुकी थीं और उनका गौरव भी हुआ था, क्योंकि अच्छे काम के लिए वे बातें हुई थीं। सन् '४२ में ऐसा माना गया था कि वह अच्छा काम था, इसलिए हिंसा हुई। अब अच्छे काम के लिए अगर हिंसा मंजूर है, ऐसा माना गया, तो इस काम के लिए हिंसा की, तो क्या गलती है? आज जनता के मन में इस विषय में सफाई नहीं है। अगर यह सफाई होती और इसका स्पष्ट ज्ञान होता कि हमें स्वराज्य अहिंसा की शक्ति से हासिल हुआ है, तो आज जो दशा दिखाई देती है, वह नहीं दिखाई देती। हम देखते हैं कि एक ही शख्स के घर में एक फोटो महात्मा गांधी का होता है और उसके नजदीक सुभाष बोस का होता है। हम भी सुभाष बोस के अनेक गुणों का, उनकी सेवा का और देशभक्ति का गौरव करते हैं, लेकिन वह जो चित्र लगा रहता है, वह गुण-गौरव के लिए नहीं होता। वह इस विश्वास से होता है कि हमें जो स्वराज्य मिला, उसमें कुछ गुण है महात्मा गांधी की अहिंसा का और कुछ गुण है हिंसा का याने जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर पानी बनता है, वैसे इधर से अहिंसक लोगों ने शत्रु को सताया और उधर से दूसरों ने हिंसा से सताया, तब जो परिणाम आया, वह स्वराज्य है याने हमने अहिंसा को शत्रु पर हमला करने का एक तरीका माना और हिंसा को उसीका दूसरा तरीका माना। हमको आज दुनिया में इस मामले में दो मनस्थितियों का मुकाबला करना है। एक विचार यह है कि लोगों का, खास करके यूरोप-अमेरिका के लोगों का—यह मानस-शास्त्र का निदान है—हिंसा पर से विश्वास उठ गया है। उनका नाम इसलिए लिया, क्योंकि उनका हिंसा पर बहुत विश्वास था और क्योंकि हिंसा ने अतिहिंसा का रूप लिया और वह काम नहीं करती है, नुकसान ही करती है, ऐसा दीखता है। इसलिए उनका हिंसा पर से विश्वास उड़ गया, परन्तु अहिंसा पर विश्वास बैठा नहीं। चित्त की यह बीच की हालत बहुत भयानक है, उस हालत में वे लोग आज हैं और उनका मन केवल डावाँडोल है। उनसे कोई भी कदम निश्चय-पूर्वक नहीं उठाया जायगा, चिंतनपूर्वक कोई काम नहीं होगा। नसीब से जो होगा, वह होगा। अगर हिंसा पर उनका विश्वास होता, तो वे निश्चित कदम उठाते, अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होता, तो भी वे निश्चित कदम उठा सकते। परंतु

अहिंसा पर विश्वास बैठा नहीं और हिंसा पर से विश्वास उठ गया, इसलिए बीच की हालत में निश्चित कदम उठाया नहीं जाता। यह समस्या आज दुनिया के सामने उपस्थित है।

छोटी हिंसा का भरोसा

दुनिया के सामने एक दूसरी समस्या है और वह हिन्दुस्तान में भी मौजूद है। वह यह है कि हिन्दुस्तान जैसे देश की बड़ी हिंसा पर श्रद्धा नहीं रही, क्योंकि बड़ी हिंसा के साधन आज उसके पास नहीं हैं और उन्हें वह जल्दी हासिल कर सकेगा, ऐसा लक्षण भी नहीं है। छोटी हिंसा पर यहाँ के लोगों का विश्वास है, यह एक बड़ी विचित्र बात है। छोटी हिंसा यशस्वी नहीं होती थी, इस वास्ते बड़ी हिंसा के प्रयोग हुए; लेकिन हिन्दुस्तान के लोगों में छोटी हिंसा पर श्रद्धा बैठ गयी। स्वाभाविक ही जो लोगों की स्थिति है, उसका प्रतिबिंब सरकार में है। आपने देखा कि गोलियाँ जगह-जगह चलीं। सिर्फ इस भाषावार प्रांत-रचना की बात नहीं करता हूँ, इन पाँच-सात साल में कई मौकों पर गोलियाँ चलीं। कहीं कारणों की तलाश हुई और कहीं नहीं हुई। कहीं वह जायज साबित हुआ और कहीं नाजायज। इस जायज-नाजायज में हम पड़ना नहीं चाहते हैं। उसका कोर्टवाले अपने तरीके से फैसला देते हैं। परंतु हमको यह आभास हुआ। हम किसी पर अन्याय नहीं करना चाहते हैं। गोलियाँ आसानी से चलीं। याने लोगों की तरफ से जैसे हिंसा हुई, वैसे फौरन दूसरी बाजू से हिंसा की तैयारी हुई। दोनों तरफ से छोटी हिंसा पर विश्वास है। भाइयो, यह देश के लिए बड़ी दुःख की घटना है और एक समस्या है। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि हमें अहिंसा की शक्ति और सत्याग्रह की शक्ति खड़ी करनी होगी। 'सत्याग्रह' शब्द गंभीर है, दस-बारह साल से हम इस पर चिंतन कर रहे हैं, कई विचार सूझते हैं। हम जानते हैं और मानते हैं कि सत्याग्रह से बढ़कर दुनिया के लिए मुक्तिदायक कोई शस्त्र नहीं है, परंतु आज सत्याग्रह को भी एक धमकी का रूप आया है। यह कोई रचनात्मक शक्ति का रूप नहीं है, यह गंभीर विषय है। हम चाहते हैं कि इसकी छानबीन हमको अक्सर करनी चाहिए। यह गंभीर विषय थोड़े में नहीं कहा जायगा।

लोकशाही और सत्याग्रह

हम यह भी कहना चाहते हैं कि गांधीजी के जमाने में जो सत्याग्रह हुए, उनको अगर हम आदर्श मानेंगे, तो गलती करेंगे, क्योंकि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जहाँ लोकशाही है, वहाँ जो सत्याग्रह होता है, वह अधिक स्पष्ट, शक्तिशाली, अधिक विधायक होना चाहिए। इसलिए बापू ने बहुत दफा कहा था कि सत्याग्रह का शास्त्र हम लिख नहीं सकते, वह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। उस शास्त्र का हमें विकास करना होगा। उसका विकास करने के बजाय हमने उस शस्त्र को गांधीजी के जमाने में जिस तरह चलाया, उससे नीचे के स्तर पर गिराया। गांधीजी के समय का कुल काम, स्वराज्य-प्राप्ति का, निगेटिव था। आज हमें जो काम करना है, वह वैसा नहीं है। आज हमें अपने देशवासियों के जीवन का ही रूपांतर करना है। बापू हमेशा भाषा बोलते थे—"एण्ड और मेण्ड" की। हम वह भाषा नहीं बोल सकते, वह अंग्रेजों को "क्विट इंडिया" कह सकते थे। हम व्यापारियों को, जमीन के मालिक को, संपत्ति के मालिक को 'क्विट इंडिया' नहीं कह सकते। हम सबको यहीं रहना है, इस वास्ते कोई 'क्विट' नहीं करेगा। इस वास्ते हम सबको एक साथ रहने की युक्ति साधनी चाहिए। ऐसी स्थिति में जो सत्याग्रह होगा, उसमें सत्याग्रह का गुण-मुक्त स्वरूप प्रकट होना चाहिए, लेकिन वह प्रकट नहीं हुआ, बल्कि हुआ यह कि बापू के जमाने में जो सत्याग्रह हुए, उनके स्तर से ऊपर उठने के बदले हम नीचे गिर गये। उसकी आज प्रतिक्रिया यह हुई है कि कुछ लोग बोलने लगे हैं कि लोकशाही में सत्याग्रह का स्थान नहीं है। यह अजीब बात है कि लोकशाही में लश्कर का स्थान तो है, पर सत्याग्रह का स्थान नहीं है। यह भी बिल्कुल गलत विचार है। यद्यपि बहुत बड़े-बड़े लोग यह विचार धारण करते हैं, इस हालत में हम पर बड़ी जिम्मेवारी है। हमें सत्याग्रह को और उसके शास्त्र को विकसित करना होगा।

द्रविड़ देश में मेरी श्रद्धा

अब मैं कुछ बातें अपने खुद के काम के बारे में कहना चाहूँगा। मैंने कहा कि इस वक्त हमें नम्रता की बहुत जरूरत है। शुद्धि की बहुत जरूरत है। अब मैं बिलकुल दक्षिणापथ में आ पहुँचा हूँ। इसके आगे अब दक्षिण देश नहीं रहा।

भारत का आखिरी हिस्सा यही है। हमें हमारे काम की यहीं पर परिसमाप्ति महसूस हो रही है। हम चाहते हैं कि इस आन्दोलन का पूरा तेज यहाँ प्रकट हो। हम कुछ श्रद्धा रखकर यहाँ आये हैं। वैसी श्रद्धा से ही हम हर जगह जाते हैं। पर यहाँ विशेष श्रद्धा से आये हैं, यह कबूल करना चाहिए। वह इसलिए कि हमारे मन में प्राचीन ग्रंथों के बारे में कुछ प्रेम है। यह नहीं कि उनमें कुछ गलत बातें हों, तो भी उन्हें हम शिरोधार्य समझेंगे। परंतु हमारे मन पर उनमें जो अच्छी बातें हैं, उनका बहुत असर होता है। ऐसे ग्रंथों में भागवत ग्रंथ है। उस भागवत ग्रंथ में लिखा है कि जब कभी ऐसी स्थिति आयेगी कि सारी दुनिया से भक्ति हट जायगी, तब भी द्रविड़ देश में भक्ति कायम रहेगी। हम नहीं जानते कि इस तरह का अनुमान करने को उनके पास क्या आधार था। पर कुछ था जरूर, यह मानकर हमने श्रद्धा रखी। यहाँ हम देखते हैं कि गाँव-गाँव में एक बड़ा मंदिर होता है, उसके इर्द-गिर्द गाँव होता है और यहाँ के छोटे गाँव का मंदिर उत्तर हिन्दुस्तान के बड़े गाँव के मंदिर की बराबरी करेगा। यहां के बड़े कवि भारतीय्यार ने उल्लेख किया है कि यहाँ के लोग सुपुत्र निर्माण हों, इस वास्ते यह मंदिर होते हैं और माताएँ अपने पुत्र अच्छे निकलें, इस वास्ते तपस्या करती हैं।

प्रार्थनात्मक उपवास का संकल्प

भाइयो, हमने इस श्रद्धा से यहाँ कदम रखा है और उत्तर हिन्दुस्तान में जो कुछ पुण्य-संग्रह हुआ है, वह सब लेकर हम यहाँ आये। इस वास्ते यहाँ के कुल लोगों का सहयोग हमें हासिल करना है। हमारी परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना है कि हमारी सबकी शुद्धि ऐसी हो कि हमारी आवाज सबको मधुर मालूम हो और इसलिए यहाँ कितना रहना चाहिए, इसकी मर्यादा हमने नहीं रखी है। हम चाहते जरूर हैं कि कम-से-कम समय में काम हो, परंतु हम यह भी चाहते है कि काम व्यापक हो। याने हम चाहते हैं कि भूदान के साथ रचनात्मक काम सहज जोड़ सकते हैं, तो जोड़ें। **गांव-गांव खादी और ग्रामोद्योग चले। ग्राम-स्वावलंबन के लिए तैयारी करने का, ग्रामोदय का कार्य भी यहाँ हो और जातिभेद का निरसन हो।** तीसरी बात हम चाहते हैं कि **सर्वत्र नयी तालीम का विचार लोग समझें।** कम-से-कम ये तीन चीजें हम भूदान के साथ जोड़ना चाहते हैं। इसलिए सिर्फ भूदान-कार्यकर्ताओं

को नहीं, बल्कि जितने रचनात्मक कार्य करनेवाले हैं, उन सब कार्यकर्ताओं की मदद चाहते हैं और उन्हें मदद देना चाहते हैं। इसके लिए अधिक शुद्धि की जरूरत हम महसूस करते हैं। इस वास्ते हमने सोचा है कि तारीख १ जून से तीन दिन तक उपवास करेंगे, याने पूरे तीन दिन, बहत्तर घंटे। १ तारीख को आठ बजे हम खायेंगे और ४ तारीख को फिर आठ बजे खायेंगे। यह केवल प्रयोग करने के वास्ते, चित्तशुद्धि के वास्ते और कुछ चिंतन हो सके, इस आशा से और प्रार्थना के लिए हम करना चाहते हैं।

मुद्दत किसलिए ?

१९५७ में यह काम किस तरह समाप्त होगा, यह जानने की एक बहुत तीव्र इच्छा लोगों के मन में रहती है। उस वासना को हमने खुद बढ़ावा दिया है। इस वास्ते उसकी पूरी जिम्मेवारी हम खुद उठाते हैं। बहुतों ने इस बारे में हमें सावधान किया था। एम० एन० रॉय ने लिखा था कि एक मुद्दत रखना और साथ-साथ यह भी कहना कि हृदय परिवर्तन से काम करना है, परस्पर-विरोधी है। कुछ लोगों ने हमें यह भी कहा है कि इसमें गलत तरीके अख्तियार किये जा सकते हैं और जल्दबाजी की भावना में हिंसा भी हो सकती है। एक आक्षेप यह भी है कि इसमें सकाम-वृत्ति होती है और गीता ने निष्काम-वृत्ति की सिखावन दी है, उससे इसका विरोध होता है। हम तीनों आक्षेप समझ नहीं सके हैं; यद्यपि उन तीनों आक्षेपों का हम गौरव करते हैं। निष्कामता को हम सेवावृत्ति का प्राण समझते हैं। हम कबूल करते हैं कि अहिंसा से भी बढ़कर हमारे चित्त में निष्कामता के लिए अधिक आदर है। लेकिन साथ-साथ हम यह भी कहते हैं कि निष्कामता और अहिंसा, दोनों को पर्याय मानते हैं, हम दोनों को समान अर्थ के मानते हैं। इस वास्ते ऐसी मर्यादा रखने में निष्कामता पर प्रहार होता है, यह आक्षेप हमें अधिक तीव्र लगा। हम चाहते हैं कि शीघ्र से शीघ्र दुनिया दुःख से निवृत्त हो। ऐसा मानना निष्कामता के विरुद्ध नहीं है। इसलिए शीघ्र काम करते हैं, तो निष्कामता खोते हैं, ऐसा हम नहीं मानते हैं। एक निश्चित मुद्दत हम मन में रखना चाहते हैं और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार लेते हैं, इन दो बातों में भी हमें विरोध मालूम नहीं होता। निश्चित मुद्दत इसलिए होती है कि एक ही कार्य अनंत काल तक नहीं करना होता

है। एक तरीका लोगों के सामने हम रखते हैं और कहते हैं कि इस तरीके से पाँच सौ साल बाद काम होगा, तो वह तरीका किसी काम का नहीं रहता। तो निश्चित मुद्दत में काम करना जरूरी है। परंतु अगर नहीं होता, तो क्या गलत तरीके आजमायेंगे? गलत तरीके से कभी काम नहीं होगा। गलत तरीके आजमाये जायेंगे, ऐसा डर हो सकता है। परंतु किसी-न-किसी प्रकार का खतरा उठाये बिना कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। हिम्मत के बिना काम नहीं होता। इतनी जाग्रति रखना हमारा कर्तव्य है कि गलत तरीके आजमाये न जायँ और उतावली न रखें।

उपाय-संशोधन का मौका

हमने बहुत दफा कहा है कि इस काम के पीछे ईश्वर का हाथ है। तो लोग ऐसा समझते हैं कि यह ईश्वर का कार्य है, इसलिए ईश्वर सन् १९५७ में चमत्कार करेगा और काम हो जायेगा। हम मनुष्य में और ईश्वर में बहुत थोड़ा फर्क करते हैं। मनुष्य के दो हाथ होते हैं, ईश्वर सहस्र हाथोंवाला होता है। जहाँ हजारों मनुष्य इकट्ठे होते हैं, वहाँ ईश्वर की शक्ति प्रकट होती है, अर्थात् सज्जन धर्मकार्य के लिए जब इकट्ठा होते हैं, तब ईश्वर प्रकट होता है। जैसे ईश्वर के अनेक हाथ हैं, वैसे राक्षसों के भी अनेक हाथ होते हैं, परन्तु अनेक हाथ और धर्मकार्य का जहाँ संयोग होता है, वहाँ ईश्वर का अधिष्ठान होता है। यह हमारा विश्वास है कि ईश्वर की मदद इसके पीछे है। इसी वास्ते लोगों के दिल में अनुकूल भावना होती है। मुद्दत रखने का तात्पर्य यही है कि हमें उपाय-संशोधन का मौका मिलना चाहिए। एक उपाय हमारे हाथ में आ गया, उसे हम पूरा आजमाते नहीं हैं, तो काम नहीं बनता और फिर नया उपाय नहीं सूझता। एक उपाय को हम पूरी तरह से आजमाते हैं, निश्चित मुद्दत रखकर काम होता है, तभी समाधान होता है। पूरी शक्ति लगाने पर भी एक निश्चित मुद्दत में काम नहीं हुआ, तो संशोधन का मौका मिलता है और दूसरा उपाय सूझता है। हम सबको आगाह करना चाहते हैं कि पूरी ताकत लगाये बिना समय ही नष्ट करेंगे, तो वह गलत काम होगा। उपाय-संशोधन के लिए यह बहुत जरूरी है कि निश्चित मुद्दत में पूरी शक्ति से हम एकसाथ काम में लगें। गंभीरता के साथ परिणामों को भगवान् पर सौंपकर निष्काम-वृत्ति से काम में लगना चाहिए।

सम्मेलन में सबसे बड़ी खुशी होती है, सज्जन-संपर्क की और सज्जन-संगति की। एक बात का भान हमें सतत और निरंतर रहता है, वह यह कि जहाँ हम यात्रा करते हैं, वहाँ हमारे लिए सब प्रकार की सहूलियत लोग करते ही हैं; पर जहाँ हमारे भाई गाँव-गाँव जाते हैं, उन्हें किसी प्रकार की सहूलियत नहीं मिलती, बहुत तकलीफ उठाकर वे काम करते हैं। हमें इस बात का दुःख नहीं है कि उन्हें तकलीफ उठानी पड़ती है, बल्कि खुशी होती है कि तपस्या करने का मौका उन्हें मिलता है। ऐसे हमारे निष्काम तपस्या करनेवाले सेवकों पर प्रभु की कृपा बनी रहे, यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

(१०-४५ पर अधिवेशन स्थगित)

सोमवार, २८ मई, १९५६ : दोपहर ३ बजे

[खुला अधिवेशन]

दोपहर को २-३० से ३ बजे तक सूत्र-यज्ञ हुआ। इसके बाद जिन कार्यकर्ताओं को सम्मेलन के सामने कुछ खास बात पेश करनी थी, उनके संक्षिप्त भाषण हुए। भूदान-आन्दोलन की प्रगति आगे किस प्रकार हो, यह चर्चा का विषय था। सबसे पहले अध्यक्ष के आदेश पर सर्व-सेवा-संघ के सहमंत्री श्री सिद्धराज ढड्ढा ने अपने सुझाव रखे।

श्री सिद्धराज ढड्ढा :

भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया अब ग्रामदान तक पहुँच गयी है। भूदान-यज्ञ का लक्ष्य बहुत व्यापक है। वह समाज में बुनियादी परिवर्तन लाना चाहता है। उस परिवर्तन के लिए अहिंसा की शक्ति प्रकट करने का हमारा प्रयास है। जोतनेवाले की मालकियत से हमने आरंभ किया। अब भूमि का स्वामित्व ही न रहे, यह हमारी मन्शा है। छोटे-छोटे फुटकर युद्धों से आज का युद्धवाद संकुल युद्ध तक पहुँचा है। उसी तरह हमें जमीन की मालकियत में परिवर्तन करते हुए संकुल परिवर्तन तक पहुँचना है। इसके लिए सहयोगी उत्पादकों के समाज की स्थापना करनी होगी। यह संदेश गाँव-गाँव पहुँचाना होगा। इस दृष्टि से हमको अपनी कार्यपद्धति का निश्चय करना है। इसलिए मैं आपके

सामने कोई भाषण नहीं करूँगा, सिर्फ दो-तीन बातों की तरफ आपका ध्यान दिलाऊँगा ।

सबसे पहला महत्त्व का कार्यक्रम, जिसका मैं साक्षी था, वह हैं सघन पदयात्राओं का कार्यक्रम । मध्यप्रदेश में उसका प्रयोग बड़ी सफलता से हुआ । जो कुछ मैंने वहाँ देखा, उससे मेरे मन पर यह असर हुआ कि सघन पदयात्राओं का यह अस्त्र बड़ा सक्षम है ।

दूसरी चीज है, सामूहिक वितरण की । हम गाँववालों से स्वयं वितरण करायें । इससे स्वतंत्र जनशक्ति पैदा होगी । बिहार में कुछ जगह इसका प्रयोग किया गया । इसका काफी अच्छा परिणाम निकला ।

तीसरी बात यह है कि हम १९५७ तक अपने-अपने इलाके के प्रत्येक गाँव में भूक्रान्ति और ग्रामराज का सन्देश पहुँचाने के संकल्प से काम करने निकलें । गाँव की पुनर्रचना के सभी कार्यक्रमों की तरफ ध्यान दें । ग्रामराज एक व्यापक शब्द है । उसका क्रान्तिकारी पहलू लोगों के सामने रखें ।

चौथी बात है, नये कार्यकर्ता कैसे मिलें । साफ है कि किसी भी आन्दोलन में पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता इने-गिने ही होते हैं । वैतनिक कार्यकर्ता तो कम से कम होने चाहिए । अपनी-अपनी आजीविका का उद्योग करते हुए अपना अधिक से अधिक समय इस काम के लिए देनेवाले नागरिकों की आवश्यकता है । तभी यह आन्दोलन जनव्यापी आन्दोलन बनेगा ।

इन चारों बातों का विचार आप लोग करें और अपने-अपने क्षेत्र में इनका अमल करें ।

इसके बाद मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री ठाकुरदास बंग का भाषण हुआ । श्री वल्लभस्वामी ने श्री बंग का अल्प परिचय देते हुए कहा कि "बंग साहब वर्धा कामर्स कॉलेज के उत्साही और सुयोग्य प्रोफेसरों में से थे । भूदान-यज्ञ आन्दोलन से पहले ही उन्होंने अपना वह पद छोड़ दिया था और प्रत्यक्ष ग्रामसेवा के प्रयोग किये । अपने साथियों के साथ कांचनमुक्ति की दिशा में प्रयत्न भी उन्होंने निष्ठापूर्वक किये । आज वे देश के प्रमुख तरुण भूदान-कार्यकर्ताओं में से एक हैं ।"

श्री ठाकुरदास वंग (मध्य-प्रदेश) :

हमारे प्रांत की वड़ी अजीव हालत थी। कार्यकर्ताओं की दृष्टि से वह वड़ा सम्पन्न प्रान्त है। विनोवा, जाजूजी, दादा धर्माधिकारी, विमलताई ठकार, वल्लभ स्वामी, सभी हमारे प्रान्त के हैं। लेकिन ये सव प्रान्त छोड़कर वाहर चले गये थे। हम सिर्फ छोटे-छोटे कार्यकर्ता रह गये। हममें से एक-एक का, अकेले का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इस तरह से हम कुल पन्द्रह कार्यकर्ता रह गये थे। तव हमारे एक साथी पाटणकरजी ने कहा कि अव हमारे लिए 'वुद्धं शरणं गच्छामि' संभव नहीं है। उसकी जगह 'संघं शरणं गच्छामि' का रास्ता हमको अपनाना चाहिए। रामटेक तहसील में हम लोग वैठे तो यह वात सूझी। सामूहिक पदयात्राओं का आयोजन किया। सात टोलियाँ निकालीं। उनको एक हजार एकड़ जमीन मिली। इसका क्रम यह है कि पहले पन्द्रह-वीस कार्यकर्ताओं की एक-एक यूनिट वना लेते हैं। सारी टोलियाँ मिलजुलकर एक सप्ताह मनाती हैं। पन्द्रह दिन पहले २-३ कार्यकर्ता मुख्य-मुख्य शहरों में जाकर सप्ताह की सूचना दे देते हैं। फिर दो दिन का एक शिविर कर लेते हैं। शिविर में पन्द्रह-वीस कार्यकर्ता और ५० अन्य लोग मिलकर टोलियाँ वनाते हैं। अगर २५ टोलियाँ वन गयीं तो छह दिन सामुदायिक पदयात्रा का कार्यक्रम होता है। हर रोज दो गाँवों में जा सकते हैं। इस तरह तीन सौ देहातों में पहुँच जाते हैं। हमारा अनुभव यह है कि इस तरीके से दस-वारह हजार एकड़ जमीन मिली, जीवनदान देनेवाले या १९५७ तक काम करने का संकल्प करनेवाले नये कार्यकर्ता मिले और संपत्तिदान भी वहुत-सा मिला। पहले हमको सारे प्रान्त से, दो-तीन वर्षों के प्रयत्नों से ७० हजार एकड़ जमीन मिली। लेकिन सामूहिक पदयात्राओं से इतने थोड़े समय में १२ हजार एकड़ जमीन मिली है। वितरण वहुत सुलभ हो गया है। तंत्रमुक्ति का साध्य भी हम अगले १२ महीनों में कुछ हद तक सिद्ध कर सकेंगे। इस तरह तंत्रमुक्ति, सामूहिक वितरण, कार्यकर्ताओं की प्राप्ति आदि सारी वातें इस प्रक्रिया से सिद्ध होती हैं। इसीलिए हम इस सामूहिक पदयात्रा को रत्नचिन्तामणि मानते हैं। सर्व सेवकत्व इस तरीके से सिद्ध होगा।

मनमोहन चौधरी (उड़ीसा) :

मेरा बोलने का इरादा नहीं था। आगे के काम के बारे में कुछ सुनने के लिए मैं यहाँ आया था। हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि कार्यकर्ता काफी संख्या में कैसे मिलें? हमारे यहाँ कुल दो-ढाई सौ कार्यकर्ता हैं। उनके बल पर हम गाँव-गाँव में नहीं पहुँच सकते। सारे देश के लिए हजारों कार्यकर्ताओं की ज़रूरत है। कार्यकर्ता चाहे पूरा समय दें, या थोड़ा समय दें, असली बात यह है कि उन्हें पूरी लगन हो और इसी काम की धुन हो। अगले एक साल के लिए हम अपना यही लक्ष्य निश्चित करें कि हमने कितने नये कार्यकर्ता खड़े किये। नये-नये कार्यकर्ता खड़े करने के बजाय आज तक हमने पूरा समय देनेवाले जो पुराने कार्यकर्ता मौजूद थे, उन्हींसे काम लिया। यह हमारी गलती हुई। अब आवश्यकता इस बात की है कि नये कार्यकर्ता तैयार करने का व्यवस्थित आयोजन हो। संपत्तिदान की प्राप्ति और उसका उपयोग इसी दृष्टि से किया जाय।

मोतीलाल केजड़ीवाल (सन्थाल परगना—बिहार) :

हमारा संथाल परगना भी कोरापुट की तरह आदिवासियों का इलाका है। लेकिन अब तक वहाँ कुल तेरह गाँव ग्रामदान में मिले हैं। इसीलिए कोरापुट से उसकी तुलना करने में लज्जा आती है। हमारी शक्ति मर्यादित है। फिर भी आप सबका आशीर्वाद और सहयोग रहा, तो अगले साल हम भी हजारों ग्रामदान के नाम ले सकेंगे। अब कार्यसिद्धि के लिए हमको चार काम करने हैं। तीन कार्यकर्ताओं को और एक सर्व-सेवा-संघ को।

पहला काम भावात्मक है और दूसरा क्रियात्मक। भावात्मक काम यह है कि कार्यकर्ता प्रेम का पुतला बनकर सबके पास जायँ। जो लोग दान नहीं देते, हँसी-मजाक करते हैं, उनके पास भी प्रेम से जायँ, बार-बार जायँ। हर बार सौम्य से सौम्यतर भाव लेकर जायँ। १४ महीने पहले जो गाँव हमारा विरोध करते थे, चर्खा फेंको कहते थे, उन्हींमें से कुछ गाँव दान में मिले हैं। इसलिए हम बड़े मालिकों और धनिकों से भी प्रेम तथा सौजन्य का व्यवहार करें।

दूसरा काम क्रियात्मक है। गाँव-गाँव में जाकर सर्वोदय सेवक का प्रतिज्ञापत्र लोगों से भरवायें। उसमें यह लिखा हो कि गाँव की जमीन गाँव की है ; वह सबको बाँट देनी चाहिए ; मैं अपनी जमीन भी बाँटने के लिए दूंगा ; मैं मानता हूँ कि जमीन, संपत्ति, कारखाने आदि का स्वामी परमेश्वर है। मैं ग्रामराज्य की स्थापना करना चाहता हूँ। इस तरह के प्रतिज्ञापत्र पर लोगों की सही लें, अँगूठों की निशानी लें। '५७ तक ऐसे ५० हजार सर्वोदय सेवक बनाने का संकल्प करें।

तीसरा काम है ग्रामराज्य-सम्मेलन कराने का। दो-दो तीन-तीन प्रान्तों की सीमाओं पर उन प्रान्तों के संमिश्र ग्राम-राज्य सम्मेलन कराये जायँ। हमने बंगाल-बिहार की सीमा पर इस तरह का एक सम्मेलन किया। इससे बिहार-बंगाल के लोगों में परस्पर सद्भाव का वातावरण फैलने की आशा पैदा हुई। इसी तरह के सम्मेलन समय-समय पर कराने चाहिए।

चौथा काम सर्व-सेवा-संघ, गांधीनिधि, या इसी तरह की अन्य किसी जिम्मेवार संस्था का है। वह है ग्रामनिर्माण कार्य की योजना और प्रयोग। यह प्रयोग जब तक भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में नहीं होंगे, तब तक हमारे कार्य का स्पष्ट चित्र लोगों के सामने नहीं आयेगा। इसमें बड़ी देर हो रही है। देरी से नुकसान ही होता है।

श्री राजम्मा (केरल) :

कम-से-कम मैं यह शिकायत नहीं कर सकती कि नये कार्यकर्ता नहीं आते। कार्यकर्ता तो बहुत आते हैं। लेकिन जैसे-जैसे वे आते हैं, वैसे-वैसे हमें अपना दिल खोलकर उनका स्वागत करना चाहिए। कार्यकर्ताओं को अपनाने की, स्फूर्ति और प्रोत्साहन देने की जरूरत है। मनमोहन भाई ने कहा कि कार्यकर्ताओं के लिए हम संपत्तिदान इकट्ठा करें। मैं कहती हूँ कि जो पैसा हमने इकट्ठा किया है, उसको पहले कार्यकर्ताओं के लिए खर्च कर डालें। गांधी-निधि से मेरी प्रार्थना है कि वह निधि का उपयोग कार्यकर्ताओं के लिए करे। कार्यकर्ताओं के शिक्षण के लिए, उनके निर्वाह के लिए पैसा खर्च करे। पैसे का संग्रह करने का पाप न करें। जो विद्यार्थी कार्यकर्ता आते हैं, उनके छोटे-छोटे जत्थे बनाकर विद्यार्थियों के क्षेत्र में काम करें। प्रान्तीय समितियों में उन्हीं लोगों को सदस्य रखें जो क्रियाशील हैं, केवल नाम के लिए बड़े-बड़े लोग न रखें। स्त्रियों को भी आगे

आने का अधिक से अधिक मौका देना चाहिए। हमें सबको नज़दीक करना है। सबको अपनाना है। मेरी और एक सूचना यह है कि भूमिहीनों की और छोटे दाताओं की सम्मिलित सेनाएँ बनायी जायँ। वे दोनों मिलकर एक मुख से जाहिर करें कि हमको भूमि-क्रान्ति करनी है।

ए० केन गसबै (सिलोन) :

मैं लंका से आया हूँ। उस वक्त जिस प्रकार विभीषण रामचन्द्रजी की शरण म आये थे, उसी तरह हम १८ भाई यहाँ आये हैं। विनोबा से यह प्रार्थना करने कि वे हमारे यहाँ आयें और अपना सन्देश सिलोन के लोगों को सुनायें। वहाँ उसकी आवश्यकता है।

चेरियन टॉमस (केरल) :

मेरा यह हिन्दी में पहला भाषण है। और सम्मेलन में भी पहला ही भाषण है। हमारी बहन ने हिन्दी में भाषण किया, मुझे भी मजबूर होकर करना पड़ रहा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भूमिप्राप्ति का काम भूमिदान-यज्ञ का मुख्य काम है। वही आन्दोलन का प्राण है। हमें अपना सारा ध्यान सन् '५७ तक अपना लक्ष्य पूरा करने पर केन्द्रित करना चाहिए। उसके लिए बाकी सारे काम छोड़ने पड़ें, तो छोड़ देने चाहिए। इसका सबसे बड़ा साधन अखंड पदयात्रा है। हमने जो अखंड पदयात्रा शुरू की है, उसमें बहुत-से कार्यकर्ता हमारे साथ आते हैं। पदयात्रा में नेता और कार्यकर्ताओं का जो सम्पर्क हो सकता है, वह महत्त्व का है। इससे जो नौजवान कार्यकर्ता हमारे साथ आते हैं, उनको ट्रेनिंग देने का मौका मिलता है। परंतु इसके लिए बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं को हमारी पदयात्रा में समय-समय पर शामिल होना चाहिए। शंकरराव देव, जे० पी०, धीरेन्द्र भाई जैसे प्रमुख नेताओं की एक कमेटी बनाकर इन पदयात्राओं का संचालन और मार्गदर्शन करना चाहिए। इन नेताओं को भी बीच-बीच में पदयात्राओं में शामिल होना चाहिए। पदयात्राओं में हम लोग सफाई का काम करते हैं। उसका वैज्ञानिक रीति से आयोजन करना ज़रूरी है। गरीब लोग अपने पास से जमीन और कभी कभी साधन भी देते हैं। ऐसे दाताओं का संगठन करना होगा। अमीर लोग जमीन

देते हैं, मगर शोषण-नीति नहीं छोड़ते। उनका मत परिवर्तन करना होगा। यह तब होगा जब हमारे सभी बड़े नेता अखंड पदयात्रा में लग जायेंगे और अपने साथ छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं को लेंगे। २ अक्टूबर, १९५७ तक ये अखंड पदयात्राएँ चलें। २ अक्टूबर, १९५७ की नियत तिथि को सब लोग सेवाग्राम में बापूकुटी में आयें। भूदान में खादी, अस्पृश्यतानिवारण, सफाई, नयी तालीम—सारी बातें शामिल कर लें। इस तरह की पदयात्राएँ आप सब लोग यहाँ से जाते ही शुरू करें।

श्री भाऊ धर्माधिकारी (महाराष्ट्र):

महाराष्ट्र में भूदान का कार्य अपेक्षित मात्रा में नहीं हुआ। महाराष्ट्र में श्रद्धा और निष्ठा की कमी नहीं है। फिर भी इस काम में कार्यकर्ता अधिक संख्या में नहीं आते। महाराष्ट्र के १५,४०० गाँवों में भूदान का संदेश पहुँचाना हो तो काफी कार्यकर्ता चाहिए। कार्यकर्ता काफ़ी हैं भी, लेकिन युवक, विद्यार्थी और कार्यकर्ता राजनीति में दिलचस्पी रखते हैं, इसलिए वे भूदान में क्यों भाग लेने लगे ? इस पर भी जो कार्य हुआ है, वह निराशा-जनक नहीं हुआ है। विद्यार्थियों के शिविर हमने कराये। करीब ८५० विद्यार्थियों ने भाग लिया। अब तक २,२०० गाँवों में सन्देश पहुँचाया गया। काफी समयदानी भी मिले हैं। ३२ कॉलेजों में और २५० हाई स्कूलों में हमारे कार्य का प्रवेश हुआ। ३,५०० विद्यार्थियों ने आने का आश्वासन दिया, मगर प्रत्यक्ष ८५० आये। ७,५०० मील की पदयात्राएँ हुई। ५० हजार से अधिक लोगों को सन्देश सुनाया गया। यह सब काम विद्यार्थियों में हुआ। विद्यार्थियों की तरफ से हम उदासीन नहीं रह सकते। हमारे काम के लिए विद्यार्थी एक बहुत बड़ा साधन हैं।

श्री गोरा (गो० रामचन्द्रराव, आन्ध्र) :

सवाल यह है कि एक साल में भू-क्रान्ति सफल करने के लिए हम क्या करें ? इसके दो मार्ग हैं। (१) गांव-गांव में ग्रामराज्य की स्थापना के उद्देश्य से ग्रामराज्य के स्वरूप की शिक्षा दें। ऐसे गांव जब हर क्षेत्र में हो जायँगे, तो जिस दिन हम एक दिन में तमाम भूमि का बँटवारा करने की पुकार लगायेंगे, उस दिन ये ग्राम हमारा काम करेंगे।

(२) दूसरी बात आज सब लोगों में अन्तर है। उन सबको एक-दूसरे के नजदीक लाना चाहिए। श्रमदान माँगने के लिए जब हम श्रमजीवियों के पास जायें, तो श्रम न करनेवालों को अपने साथ ले जायें। आज सिर्फ भूमिहीनों को साथ ले जाते हैं, तो भूमिमालिकों को शंका आती है। इसलिए भूमिदाताओं को भी साथ ले जायँ। इस तरह सबको मिला-जुलाकर हम मोरचे बनायेंगे, तो शंका अपने आप मिट जायेगी। मेरी ये दो सूचनाएँ हैं।

श्री नारायण देसाई (गुजरात) :

हमें यदि करुणा का साम्राज्य स्थापित करना हो तो सज्जनता को समाज के हर वर्ग में, जीवन के हर क्षेत्र में, सक्रिय बनना होगा। प्रेम केवल तटस्थ रहेगा, तो करुणा की क्रान्ति नहीं होगी। इसलिए मैं जो कार्यक्रम आप लोगों के सामने उपस्थित करने जा रहा हूँ, वह प्रेम के आक्रमण का कार्यक्रम है। हमने भूमिहीनों के और श्रमिकों के संगठन की बात तो कई बार सोची है, लेकिन आक्रमणशील प्रेम की भूमिका से उनके संगठन का विचार अब तक हमने नहीं किया है। हमारा संगठन मनुष्यों को एक-दूसरे के साथ मिलाने का साधन बनना चाहिए। अब तक हम भूमिहीनों से और श्रमिकों से श्रमदान माँगते हैं। इसमें हमारा उद्देश्य श्रम की प्रतिष्ठा और श्रमजीवियों का आत्मविश्वास बढ़ाना है। लेकिन हम भूमिवानों से भूमि माँगते हैं और संपत्तिवानों से संपत्ति माँगते हैं, तो उसमें हमारा उद्देश्य भूमिवानों को और संपत्तिवानों को श्रमिकों के साथ प्रेम के बन्धन से जोड़ने का होता है। परन्तु बहुमत तो गरीबों का है। उनके संगठन में से समाज प्रेममय बनना चाहिए। इसलिए श्रमदान की भूमिका बदल देनी होगी। भूमिहीन अगर संपत्ति और स्वामित्व से वंचित हैं, तो श्रम से सम्पन्न हैं। हम, जिनके पास मालकियत है, उनसे मालकियत लेकर श्रमजीवी को देते हैं, उसी तरह जो श्रमवान् हैं, उनसे श्रम लेकर हम उस श्रम का दान श्रमहीनों को देंगे। जमीन के जो छोटे-छोटे मालिक हैं, उनको हम श्रमदान देंगे, विद्यार्थियों से और मजदूरों से श्रमदान लेकर भूमिवानों को उसका दान करेंगे। हम कहेंगे कि हम आपके यहाँ पैसे के लिए मेहनत नहीं करेंगे, आपको जब जरूरत होगी तब मुफ्त में श्रमदान करेंगे, आपको शरमाने के लिए नहीं, नीचा दिखाने के लिए नहीं। आपका भूमिदान

जिस तरह हमारे प्रति आपके प्रेम का प्रतीक है, उसी तरह हमारा यह श्रमदान आपके लिए हमारी मुहब्बत की निशानी है। हम इस तरह श्रमदान का आयोजन सामूहिक रूप से करें। जिन्हें श्रम के संस्कार नहीं हैं, वे सामाजिक दृष्टि से अपंग और दरिद्र हैं। हम श्रमदान के बदले में उनसे पैसे नहीं लेंगे। यदि वे उत्पादन के साधन और औजार देंगे तो ले लेंगे। इस तरह हम श्रमदान की भूमिका को बदलकर उसे आक्रमणशील प्रेम का प्रतीक बनाना चाहते हैं। मैं समझता हूँ, करुणा की क्रान्ति के लिए श्रमजीवियों का संगठन इसी आधार पर हो सकता है।*

श्री जयप्रकाश नारायण :

आज सुबह हम लोगों ने बाबा का बोधपूर्ण एवं प्रेरणादायी भाषण सुना। अभी दोपहर से कई विचारवान् मित्रों के भाषण सुन रहा हूँ। ऐसे सम्मेलन में, जहाँ कि इस तरह का विचार-यज्ञ होता है, आकर बड़ी प्रसन्नता होती है। मुझे कई प्रकार की सभाओं और सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ है, लेकिन उनकी याद कुछ बहुत मधुर नहीं है। वहाँ किस प्रकार एक-दूसरे का विरोध होता है, एक-दूसरे पर छींटाकशी की जाती है, जिसके फलस्वरूप इन सम्मेलनों में पारस्परिक कटुता का वातावरण पैदा हो जाता है। वह हमें अच्छी तरह याद है। इस सम्मेलन के दो-तीन दिन पहले से कई चर्चा-मण्डलों की सभाएँ भी चल रही हैं। उनमें से भी कुछ में भाग लेने का सौभाग्य मिला। वहाँ भी किस प्रकार विचार की धारा मुक्तरूप से बहती है और किस प्रकार से हम एक-दूसरे को समझने और एक-दूसरे को मदद देने का प्रयास करते हैं। मैं समझता हूँ कि सर्वोदय-समाज के इस मेले का भारत पर एक बहुत बड़ा उपकार है कि इस प्रकार से सह-विचार करने की परम्परा कायम हो रही है।

मैं आपके सामने कुछ नया विचार रखने के लिए नहीं आया हूँ। कई भाइयों का यह आग्रह रहता है कि मैं कुछ कहूँ, और मैं भी चाहता हूँ कि इस मौके पर जब कि हम सब लोगों का ध्यान सन् '५७ पर लगा है, अपनी बातें आपकी सेवा में नम्रता पूर्वक निवेदन करूँ। आज हममें से जितने भी लोग इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए आये हैं, सब अपने-अपने मानस में एक प्रश्न लेकर आये हैं कि किस प्रकार

---

* इन सभी भाषणों के तमिल अनुवाद सुनाये गये।

सन् '५७ का संकल्प पूरा होगा ? यहाँ बाबा हमें कौनसी नयी प्रेरणा देंगे। यहाँ कौनसा नया कार्यक्रम बनेगा, कौनसा नया विचार यहाँ से हम लेकर जायेंगे ? इसलिए जिस तरह हमारा यह काम चल रहा है, उस पर अपने विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ।

सन् '५७ और भू-क्रांति

सन् '५७ के अन्त तक भारत के सभी भागों में भू-क्रान्ति हो या भू-क्रान्ति का पहला चरण पूरा हो अर्थात् भूमि का वितरण हो, भूमिहीनता मिटायी जाय, ऐसा हम उच्चारण करते आये हैं। और इसी आशा और उत्साह से हम काम करते आये हैं। गणना करने पर हमें लगता है ५ वर्ष गुजर चुके हैं, १ वर्ष बाकी है। ५ वर्ष में ४५ या ४४ लाख एकड़ जमीन प्राप्त हुई है। तो वह शेष काम एक वर्ष में कैसे पूरा हो सकता है ? यहाँ पर कई लोगों से हमारी बातचीत हुई, उनमें से एकाध प्रान्तीय संयोजक भी थे। इस पर हमें यही महसूस हुआ कि कइयों के दिल में निराशा का निर्माण हुआ है और लोग ऐसा मानते हैं कि यह काम हमसे होनेवाला नहीं है। हम इस प्रकार नहीं सोचते हैं कि पाँच वर्षों में जो कुछ काम हुआ है उसको तौलने की दो दृष्टि हो सकती है। हमारे स्व० मित्र यूसुफ मेहरअली एक बहुत उपयुक्त मिसाल दिया करते थे कि एक गिलास आधा पानी से भरा हुआ है। जो आशावादी होगा, वह देखकर कहेगा कि गिलास आधा भरा हुआ है और जो निराशावादी होगा, वह कहेगा कि आधा गिलास खाली है। एक का ध्यान उसके भरे हुए होने की ओर होगा और दूसरे का खाली होने की तरफ जायगा। जो संकल्प हम सब लोगों ने किया उसको ध्यान में रखते हुए, यह अवश्य लगता है कि ५ वर्षों में ४४ लाख एकड़ जमीन प्राप्त हुई, लेकिन आप सोचिये कि क्या हमारे आन्दोलन की प्रगति केवल आँकड़ों की प्रगति रही है ? एक साल ५ लाख एकड़, दूसरे साल २५ लाख एकड़, तीसरे साल ३० लाख एकड़। क्या इसी ढंग से यह काम होता गया और हमारे अनुमान का भी यही मापदण्ड है ? आप विचार करेंगे, तो अपना-आपका अनुभव बतायेगा कि इन पाँच वर्षों में किस रीति से इस आन्दोलन का विकास हुआ ? किस प्रकार एक के बाद इसमें से शाखाएँ उप-शाखाएँ निकलती गयीं ? कितनी गहराई में यह विचार गया ? सन् '५७ में भू-क्रान्ति हो जाय, गाँव-गाँव में

जमीन का वितरण हो जाय, यदि यह इस आन्दोलन का चरम लक्ष्य हो, तब तो मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करूँगा कि आज से डेढ़ साल पहले वह बिहार में पूरा हो चुका।

ग्रामराज के लक्ष्य तक

बाबा एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में घूमते रहे। हर जगह उन्होंने किसी-न-किसी प्रकार का नया प्रयोग किया और भारत के सामने उसको रखा। जब बिहार में उनका प्रवेश हुआ, जैसा उन्होंने कहा कि भगवान् के स्मरण से उन्हें जैसी प्रेरणा मिली, उस पर से उन्होंने यह संकल्प किया कि यहाँ देश और दुनिया को इस बात का दिग्दर्शन कराया जाय कि इस प्रक्रिया से—इस अहिंसात्मक मार्ग से—इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। अगर २७ महीने में बाबा की इस प्रेरणा से बिहार प्रदेश में २३ लाख एकड़ जमीन मिल सकती थी, तो क्या हमें यह नहीं कहना चाहिए कि उसी अनुपात से अगर हर प्रान्त में जमीन मिल जाय, जैसे कि मिल सकती है, वह इसलिए कि बिहार में मिली और २७ महीनों के अन्दर मिली—तो सन् '५७ तक यह काम अवश्य ही पूरा हो सकता है। इसमें बहस और शंका की कोई गुंजाइश नहीं है। बाबा यह मिसाल हमारे और देश के सामने रखकर आगे बढ़े। उहोंने कहा कि भू-क्रान्ति का अगला कदम हमें उड़ीसा में उठाना है। वहाँ ग्रामदान हुआ। अब यह कोई आँकड़ों की बात तो नहीं हुई। इन ८०० गाँवों में जो जमीन प्राप्त हुई, उसका वितरण हुआ। ५ करोड़ में से इतनी जमीन का वितरण उड़ीसा में हुआ, यह तो नहीं कहा जा सकता। इस कदम से आन्दोलन का एक नया रूप सामने आया, एक नया विचार निकला। एक नया प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके परिणामस्वरूप यह सारा आन्दोलन जमीन माँगने और बाँटने की सतह से कहीं एक ऊँची सतह पर पहुँच गया। अगर आठ सौ ग्रामदान एक जिले में हो सकते हैं, तो क्या हम यह नहीं कह सकते कि भारत के हर जिले में यह काम किया जा सकता है? अर्थात् भारत के पाँच लाख उन्सठ हजार गाँवों में भू-क्रान्ति का अन्तिम चरण स्वामित्व-विसर्जन संभव है, यह सिद्ध हो चुका है। अब आपसे बाबा ने कहा है कि वे तमिलनाड़ में या दक्षिण में ग्रामदान से भी आगे का कदम सोच रहे हैं कि यहाँ पर बापूजी की सम्पूर्ण ग्रामराज की कल्पना को साकार किया जाय। वह भी कोई आँकड़ों की

वात नहीं हुई। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि अगर बाबा की प्रेरणा से तमिलनाड़ के एक गाँव में भी ग्रामराज का निर्माण होता है और फिर भी हम बैठकर यही हिसाव लगाते रहें कि एक गाँव में ५०० एकड़ जमीन है और उसीका वितरण हुआ, तो कैसे हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे ? तब यह हमारी नादानी और नासमझी ही होगी।

सबकी जिम्मेवारी

आप जरा विचार कीजिये कि हमारा यह सारा आन्दोलन किन विरोधी परिस्थितियों में से गुजर रहा है। किस तरह से अपने देश के हर क्षेत्र में काम-काज हो रहा है। चाहे वह व्यापार का क्षेत्र हो, आज कारखाने किस तरह से चलते हैं, मजदूर किस भावना से काम करते हैं, किस प्रकार से शासन-कार्य होता है ? यह सारा जो आज का प्रतिकूल वातावरण है, उसको देखते हुए इन पाँच वर्षों में इतना सारा काम हुआ, वह किसी प्रकार से कम नहीं हुआ है। यह हमारा सौभाग्य है कि इस परिस्थिति में बाबा का नेतृत्व प्राप्त है। लेकिन हमारे बीच राजेन्द्र बाबू नहीं हैं, जवाहरलालजी नेहरू नहीं हैं, मौलाना अबुलकलाम आजाद नहीं हैं। नहीं का मतलब यह नहीं है कि उनका आशीर्वाद प्राप्त नहीं है और उनका सहयोग हमें नहीं मिलता है। लेकिन जिस प्रकार स्वराज्य की लड़ाई के जमाने में उन्होंने अपने कन्धों पर सब भार उठाया था कि भारत को स्वतन्त्र करना है, वैसे ही इस काम को पूरा करना है, इस अहिंसक क्रान्ति को सफल बनाना है, इस बात का बीड़ा आज देश के इन महान् नेताओं ने नहीं उठाया। कुछ नाम गिनाकर मैं दोपारोपण की दृष्टि से नहीं कह रहा हूँ। बल्कि यह कह रहा हूँ कि हम छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं ने यह काम किया और इन महापुरुषों की सारी शक्ति हमें प्राप्त नहीं हुई, इसके बावजूद भी इतना काम हुआ है। इसलिए इस निराशा के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि सन् '५७ तक यह कार्य नहीं होगा। मैं तो समझता हूँ और जैसा मैंने कहा भी है कि यह हमें मान लेना चाहिए कि यह काम हो चुका है। इस माने में हो चुका है कि इसका प्रयोग हो चुका है और प्रयोग करके दिखा दिया गया है। एक प्रान्त में २२ लाख एकड़ से ज्यादा जमीन प्राप्त हो सकती है। और बाबा के जाने के बाद फिर २॥ लाख एकड़ जमीन प्राप्त हुई। इस मिसाल से और प्रयोग

से हम कह सकते हैं कि कार्यकर्ताओं ने यह देश के सामने साबित करके रख दिया कि इस पद्धति से यह काम पूरा हो सकता है।

काम में तीव्रता लाइये

आज हमारी स्थिति उन धुनिये की तरह है, जिसने एक गाँव में गट्ठर के गट्ठर रूई देखी और बेहोश हो गया। उसने सोचा कि इतनी रूई धुनेगा कौन ? तो हमारी हालत उसी धुनिये की तरह हो जायगी। अगर हम कार्यकर्ता ऐसा समझते हैं कि ८-१० हजार आदमी यहाँ इकट्ठा हुए वे सारा यह भार उठा लेंगे और ५ लाख ५८ हजार गाँवों में हम सारा भूमि-वितरण कर डालेंगे, तो यह हमारी अज्ञानता होगी और एक दुस्साहस होगा। यह काम तो जनता ही कर सकती है। जब गाँव-गाँव के लोग इस कार्य के लिए तैयार हो जायँगे कि अपनी-अपनी जमीन का बँटवारा स्वयं करने लगें, तभी हमारा यह काम पूरा हो सकता है, तभी यह क्रान्ति सफल हो सकती है। ऐसी परिस्थिति पैदा करना हमारा कर्तव्य है। यह जो संकल्प हुआ है, वह कोई अकेले बाबा का संकल्प नहीं, यह भूदान-समितियों का संकल्प नहीं, यह सर्व-सेवा-संघ का संकल्प नहीं, यह राष्ट्रीय संकल्प है। और इस प्रश्न का उत्तर सभीको देना है। कांग्रेस-पार्टी ने समर्थन किया कि यह आन्दोलन बड़ा अच्छा है और इसकी सफलता की हम मनोकामना करते हैं। तो कांग्रेस-पार्टी पर भी इसका उत्तरदायित्व आता है। बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने यह तय किया कि ३२ लाख एकड़ जमीन हम इकट्ठा करेंगे। उत्कल प्रान्तीय कांग्रेस समिति ने फैसला किया कि २० लाख एकड़ जमीन हम इकट्ठा करेंगे। इस संकल्प की पूर्ति का भार उनके ऊपर है या नहीं ? प्रजा-समाजवादी दल ने जब यह निश्चय किया तथा समर्थन किया और अपने सब कार्यकर्ताओं को आदेश दिया कि वह इसमें सहयोग प्रदान करें। क्या समाजवादियों पर इसकी जिम्मेदारी नहीं ? सारे देश के ऊपर इसकी जिम्मेदारी है। सभी सार्वजनिक कार्यकर्ताओं पर जिम्मेदारी है। मैं कहूँगा कि शासन पर भी इसकी जिम्मेदारी है। हमें शासनकर्ताओं में से ऐसा कोई नहीं मिला है, जिसने यह कहा हो कि यह आन्दोलन अच्छा आन्दोलन नहीं है अथवा यह ठीक विचार नहीं है। इससे हमारे निर्माण के काम में रुकावट पड़ती है। अपितु सबने इस विचार का स्वागत किया है। तो फिर उनके पास जो शक्ति है,

उस शक्ति का इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए क्यों नहीं उपयोग करते हैं ? यहाँ मैं यह कहे विना नहीं रह सकता कि ५ वर्ष से यह आन्दोलन चल रहा है, ऐसी घोर तपस्या बाबा ने की। बीमारी की हालत में भी हर रोज आठ मील चलते रहे हैं। बरसात में, सर्दी में, गर्मी में निरंतर वह यह काम करते रहे। क्या वह चाहते हैं कि इतना सारा हुआ, इस पर भी क्या सरकार का यह कर्तव्य नहीं है कि भू-क्रान्ति सफल की जाये ? मैं नम्रतापूर्वक याद दिलाना चाहता हूँ कि इस क्रान्ति को सफल बनाने की जिम्मेदारी उन सब पर है, जिन्होंने हमको सद्भावनाएँ दी हैं, जिनकी तरफ से हमारा समर्थन हुआ है। सन् '५७ को एक वर्ष और रह गया है, इसलिए काम की तीव्रता महसूस की जानी चाहिए, और काम की गति बढ़ानी चाहिए।

विचार समझने का अभ्यास करो

आज ही मुझसे एक भाई पूछ रहे थे कि उनके प्रदेश में १० लाख एकड़ या १२ लाख एकड़ सरकारी जमीन है, याने जिस पर सरकार की मालकियत है। तो हम गाँव-गाँव में जमीन माँगने से पहले हम सरकार से क्यों नहीं माँगें ? तो हमने कहा : 'भाई आपका प्रश्न सुनकर हमारा दिल तो बैठ गया। ५ वर्ष काम करने के बाद आप ऐसा कहते हो, तो इसका अर्थ यही होता है कि आपने विचार समझा नहीं। सरकार क्या करती है, क्या नहीं करती, सरकार की तरफ से जमीन का बँटवारा होता है या नहीं, उससे हमारा काम आगे कैसे बढ़ सकता है ? यह आन्दोलन तो केवल जमीन बाँटने का नहीं है।' यह आप-हम सभी जानते हैं कि बाबा गाँव-गाँव जाते हैं, घर-घर जाते हैं, किस काम के लिए ? किस बात के लिए ? क्या केवल जमीन माँगने के लिए ? नहीं, अपितु विचार समझाने और बदलने के लिए, मूल्य-परिवर्तन के लिए, नैतिक परिवर्तन के लिए। सरकार दस-पाँच लाख एकड़ जमीन बाँट भी दे, तो उससे कौन-सी नैतिक क्रान्ति जनता के अन्दर हो जायगी ? कौन-सी जन-शक्ति उससे पैदा हो जायगी ? बाबा से कई बार बिहार में लोगों ने कहा कि सरकार के पास १२ लाख एकड़ जमीन है, उससे क्यों नहीं माँग करते ? उन्होंने कहा कि यह हमारा काम नहीं है, उन्हें सोचना चाहिए। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि यदि सरकार के पास जमीन

है, तो उसे भूमिहीनों को नहीं बाँटना चाहिए। आपके तमिल प्रदेश में मद्रास सरकार के पास लाखों एकड़ जमीन है, तो भूमिहीनों को बाँटना चाहिए। गोपाल रेड्डी के पास है, तो उन्हें बाँटना चाहिए। यह हर जगह करना चाहिए। यह काम सब जगह हो रहा है, ऐसा भी हम नहीं कह सकते। बिहार में हमारे माल-मंत्री तो ऐसे खुशमिजाज हैं कि भूदान की मिली हुई जमीन को सरकार की तरफ से बँटवाना प्रारम्भ कर दिया। तो भूदान समिति ने आपत्ति की कि यह सब जमीन भूदान में मिली है, बाबा को मिली है। इसकी नैतिक जिम्मेदारी हमारी है। इसका बँटवारा ठीक ढंग से जैसा हम चाहते हैं, वैसा हो। सरकार के लोग बाँटते हैं, तब वह कैसे होगा? तो हमारे मालमंत्रीजी ने कहा कि भाई! इसमें क्या हर्ज है, हम आपकी जमीन बाँटें और हमारी जमीन आप बाँटें? हमने यह छूट दे दी कि हमारी जमीन सरकार बाँटे और सरकारी जमीन हम बाँटें। आज यदि किसी गाँव में भूदान की जमीन ५० एकड़ है और सरकार की जमीन १०० एकड़ है, तो डेढ़ सौ एकड़ जमीन का बँटवारा हुआ और हो रहा है। परन्तु जब इस प्रकार के प्रश्न कार्यकर्ता करते हैं, तो हमको लगता है कि अभी तक विचार अच्छी तरह से समझा नहीं गया है। जब हम विचार नहीं समझते हैं, तो लोगों को किस प्रकार समझा सकेंगे? तो मित्रो! हमें यह संकल्प करना चाहिए कि हम विचार समझने का निरंतर अभ्यास करें। हम हर घंटे यह अभ्यास करें, जिससे सेवा करने की क्षमता, योग्यता और पात्रता बढ़े।

अन्तःशुद्धि से शक्ति बढ़ायें

हम यहाँ जो आये हैं, शायद हममें से कोई ऐसा नहीं होगा, जो यह सोचकर नहीं आया कि यहाँ बाबा से कुछ लेकर जायँगे। वह कुछ मंत्र देंगे और उससे हम कार्य पूरा करेंगे। तो मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि ऐसा वादा न मैं दे सकता हूँ न और कोई दे सकता है। यह मंत्र तो हमारे अपने पास ही है। हम जितने यहाँ इकट्ठे हुए हैं, आठ हजार कार्यकर्ता, सब अपनी छाती के ऊपर हाथ रखकर पूछें कि क्या हमें वह अधिकार है कि हम बाबा से पूछें कि कोई अब नया उपाय बताइये। जो उपाय उन्होंने बताया था, उसकी क्या पूरी आजमाइश हमने कर ली? उसमें क्या पूरी शक्ति लगा दी? ऐसे कौन हैं, जो ऐसा कह सकते हैं? शायद बाबा के सिवा और कोई दूसरा नहीं कह सकता। मैंने भी दूसरे कामों से अपने को खींच

लिये और एकाग्रता से ही इस काम को कर रहा हूँ। इधर-उधर अगर समय मिला तो दूसरे कामों में बहुत ही कम समय दिया। लेकिन मैं ईमानदारी से नहीं कह सकता कि मैंने अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगायी है। जितना मैं कर सकता था, उतना मैंने पूरा किया है। मुझे लगता है कि अगर और सावधानी से काम किया होता, तो जो बहुत थोड़ा कर पाया हूँ, उससे दोगुना और अधिक काम होता, शायद उससे चारगुना भी हो सकता। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह एक ऐसा अवसर है, जब कि हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और अपने संकल्प को दृढ़ करके यहाँ से लौटना चाहिए। इस सम्मेलन की यही बहुत बड़ी देन है। प्रेरणा सब तरफ से नहीं मिलती। बाबा से प्रेरणा मिलती है, उनके नजदीक आकर उनके दर्शन करके, उनकी बातें सुन करके अन्तःशुद्धि होती है। काम करने की जो हमारी अपनी शक्ति है, वह आन्तरिक शक्ति ही है। मैं जब अपने दोषों को याद करता हूँ, तो जैसे संतों ने गाया है, वैसे मुझे लगता है कि हमारे जैसा एक नीच और पापी कितना कर सकता है। अगर हम अपनी शुद्धि नहीं कर पाते हैं, तो हमारी शक्ति नहीं बन पायेगी। योजना और कार्यक्रम में जो शक्ति है, वह बाहरी शक्ति है। किन्तु आन्तरिक शक्ति तो हमारी अन्तःशुद्धि से ही पैदा हो सकेगी। जब बाबा बोल रहे थे, तो आज मैं सुन-कर अवाक् रह गया।..............(इतना कहते-कहते श्री जयप्रकाशजी का गला रुँध गया और उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। कुछ रुँधी भाषा में उन्होंने अपना भाषण पुनः आगे बढ़ाया।)

बाबा, जो पवित्रता, शुद्धता और शुचिता की मूर्ति हैं, उन्होंने चिंतन, मनन, आत्मशुद्धि एवं संकल्पपूर्ति के लिए आज हम लोगों के सामने यह घोषित किया कि वे तीन दिन का उपवास करनेवाले हैं। जिनको अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से दो-दो, तीन-तीन घंटों में कुछ-न कुछ आहार लेना ही चाहिए, नहीं तो पेट का दर्द बढ़ जायगा, नुकसान होगा—ऐसे पूज्य बाबा ने तीन दिनों का उपवास करने का सोचा। मुझे नहीं मालूम कि इन तीन दिनों तक उनकी यात्रा बन्द रहेगी या नहीं। भगवान् हम सबको शक्ति दे कि हमारी प्रार्थना को वह स्वीकार करें कि तीन दिनों के इस उपवास-काल में अपनी यात्रा बन्द रख सकें, ऐसी घोर तपस्या का भार हम लोगों के ऊपर न डालें। तो मित्रो! यहाँ आ करके और इस महात्मा के संकल्प से

अपने अन्तःकरण की शुद्धि करके हम जायँ। मैं इतना परेशान इसलिए हो गया कि हमारी कमजोरियाँ और हमारे अवगुण और हमारे पाप ऐसे मौके पर सामने आकर खड़े हो जाते हैं और हृदय इतना भर जाता है कि कुछ कहा नहीं जाता है। तो मित्रो! अगर अपने जीवन की शुद्धि करते हुए इस आन्दोलन में हमारी निष्ठा बढ़ती जाय, इस विचार में निष्ठा बढ़ती जाय, तो पूरी शक्ति से काम कर लें और तब अगर काम पूरा न हो, तो दूसरा उपाय हम बाबा के पास पूछने के लिए आयें।

आन्दोलन भावुकता भरा नहीं

बहुत-से बुद्धिमान लोग आलोचना करते हैं कि सारा आन्दोलन भावुकता और भावना (इमोशन और सेण्टिमेण्ट्स) के आधार पर चलता है। मैं ऐसा नहीं मानता हूँ। भावना इसके पीछे है और हर बड़े काम के पीछे भावना और भावुकता चाहिए। लेकिन इसके पीछे ऐसा विचार और तत्त्व है, जिससे ऊँचा तत्त्व और विचार आज दुनिया के सामने नहीं है और न हो सकता है। हमसे लोग पूछते हैं कि इतना सारा काम किया और फिर भी जमीन के मालिक ने जमीन नहीं दी, बल्कि उल्टे बेदखल किया। जिन्होंने जमीन दी, उन्होंने भी बेदखली की। उनकी इस बातचीत से ऐसा लगता है कि हमारा यह सब असफल हो गया। इसलिए अब हमें कोई दूसरा तरीका अख्तियार करना चाहिए। इस अपूर्ण विश्वास और इस निर्बल निष्ठा से हमारा काम नहीं चल सकता। हम बार-बार पहले भी आपसे कह चुके हैं और आज भी हम निवेदन करना चाहते हैं कि जनता की तरफ से कोई कठिनाई नहीं, आज वातावरण अनुकूल है, जनता अनुकूल है। बराबर यह अनुभव आ रहा है। बिहार का २३ लाख एकड़ का अनुभव आया। आठ सौ ग्रामदान कोरापुट का अनुभव आया। बाबा ने ही सुबह जिक्र किया कि ध्वजाभाई की योजना थी कि सीतामढ़ी सब-डिवीजन में एक सभा में साढ़े सात हजार संपत्ति के दान-पत्र मिले। इन साढ़े सात हजार दाताओं में से दो हजार विद्यार्थी हैं। अब आप सोचिये, कितना काम हुआ। इन नवयुवकों के हृदय में विचार प्रवेश हुआ। और उसके अनुसार उन्होंने कुछ त्याग करने का निश्चय किया कि हमारे पिता ने अगर पाँच रुपया जेब-खर्च के लिए दिया है, तो उसमें से रुपया पीछे एक पैसा हम गरीब के लिए, समाज के लिए देते हैं। कितने बड़े निर्माण का यह काम हुआ। अगर यह

एक सभा में हो सकता है, तो हर सभा में हो सकता है। काम करनेवालों की कमजोरी है, अक्षमता है, कमी है। हम अपनी कमी परिस्थिति के ऊपर लाद देते हैं। यह भी परिस्थिति का दूसरा पहलू है। लेकिन जब हम यहाँ इसलिए इकट्ठा हुए हैं कि कुछ विचार करें और कोई रास्ता निकालें, तो सबसे पहले हमारा ध्यान इन बातों की तरफ जाना चाहिए, जिनका मैंने जिक्र किया। कइयों ने कई अच्छे-अच्छे विचार रखे हैं। चर्चा-मंडलों में भी विचार हुआ और संगठन के बारे में सोचा गया। बाबा ने आज डेढ़ बरस से कहना शुरू किया कि जब तक यह हमारा आन्दोलन किसी संगठन के दायरे में बन्द रहेगा, तब तक यह व्यापक नहीं हो सकेगा। तब तक क्रान्ति में इसका परिवर्तन नहीं हो सकेगा। इसलिए जल्द-से-जल्द हमारी ओर से यह प्रयास होना चाहिए कि यह काम जनता का है। हम जनता को समझा करके उसको यह सुपुर्द कर दें और जनता हमसे जितनी सहायता लेना चाहे, उतनी हम दें। इस बार यहाँ सर्व-सेवा-संघ के लोगों के सामने, प्रान्तीय भूदान-समितियों के संयोजकों के सामने यह भी विचार रखा कि आप सोचिये, आज उसका कोई आग्रह नहीं है कि जो कुछ संगठन हमने आज खड़ा किया है, वह सारा संगठन हम आज छोड़ दें और जनता के हाथों में यह काम सौंप दें। लेकिन हम कमजोर लोगों को ऐसा लगा कि आज यह व्यावहारिक नहीं होगा। इतना विश्वास हमारे लोगों को नहीं है कि जनता यह काम सँभाल लेगी। यद्यपि कितने ही अनुभव हमारे आये हैं और आपके भी आये होंगे कि जितनी दूर हम गये हैं, उससे कहीं ज्यादा जनता गयी है। इस तरह के कितने ही अनुभव रोजाना आते हैं। लेकिन हमें आज विश्वास नहीं होता कि यह हो सकेगा। इसलिए संगठन रहेगा। किस प्रकार से रहेगा? उसमें क्या संशोधन होगा? उसके ऊपर विचार हुआ है।

शहरों की उपेक्षा ठीक नहीं

हमारा शहरों में बहुत कम काम हुआ है। शहरों की हम लोगों ने उपेक्षा की है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अधिकतर हिंसा शहरों में प्रकट हुई है। गाँवों में सभी अहिंसक हो गये हैं, ऐसी बात नहीं है। वहाँ भी चोरियाँ, डकैतियाँ आदि होती हैं। मारकाट भी हो जाती है, फिर भी जो हिंसा के काम पिछले वर्षों में हुए हैं,

वे अधिकांश शहरों में ही हुए हैं । और शहरों में हमारा काम थोड़ा हुआ है, इसलिए कुछ शहरों की तरफ भी ध्यान देना चाहिए । हम दूसरी दृष्टि से यह वात पहले से ही कहते आये हैं कि हम शहरों की उपेक्षा कर रहे हैं । हमारी दृष्टि यह थी कि शहर आज सार्वजनिक जीवन के केन्द्र वने हुए हैं । वहीं विचार पैदा होते हैं, वहीं से विचार फैलाये जाते हैं । विचार-प्रसार के साथ अखवार, रेडियो आदि भी वहीं हैं । स्कूल, कॉलेज वही हैं । विद्वान लोग भी वहीं हैं । सभाएँ भी वड़ी-वड़ी वहीं करते हैं । तो, हमारा यह कहना था कि शहरों की ओर भी ध्यान देना चाहिए । हमारे देश के जो वुद्धिमान और वुद्धिजीवी लोग हैं, उनको हमने अभी तक अपनी तरफ नहीं खींचा है । वे यही समझते हैं कि कोई देहाती किस्म का एवं भावुकता का काम है । जहाँ के लोग श्रद्धालु और भावुक हैं, वहीं काम हो सकता है । जहाँ के लोग तर्क करनेवाले हैं, जहाँ के लोग हरएक चीज को अपनी वुद्धि पर तौल करके समझनेवाले अथवा परखनेवाले हैं, वहाँ यह सव नहीं चलनेवाला है । इसलिए हम पहले से ही सवके वीच काम करने के लिए कहते आ रहे हैं । लेकिन थोड़े ही लोग थे और एकाग्रता से इस काम को करना था, इसलिए शहरों के काम की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाये । लेकिन अव इस जगह पर हम पहुँच चुके हैं कि हमें शहरों के काम पर भी अपनी शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए ।

सामूहिक नेतृत्व की योजना

इसके सिवा एक वात की ओर आपका ध्यान और आकर्षित करना चाहता हूँ कि मानसिक आलस्य के कारण देश के किस भाग में कौनसा अच्छा प्रयोग हुआ, उससे हमें किस प्रकार फायदा उठाना चाहिए, यह हम नहीं कर पाये हैं । मध्य-प्रदेश में सघन पद-यात्रा का जो प्रयोग हुआ, वह वड़ा ही सफल प्रयोग हुआ । पद-यात्रा सघन हो या और कोई काम सघन हो, इसमें असली विशेषता है सामूहिक रूप से शक्ति लगाने की । मान लीजिये कि जिले में पचास कार्यकर्ता हैं, और वह पचास कार्यकर्ता सारे जिले में अलग-अलग अपना काम करें, तो थोड़ा काम कर पायेंगे, ऐसा अनुभव हुआ है । इसलिए अपनी शक्ति इकट्ठी करके छोटे-छोटे क्षेत्रों में सघन तरीके से काम करना चाहिए । यह अनुभव विहार और मध्यप्रदेश

का हुआ। इस सफलता से, सामूहिक रूप से काम करने का सिद्धान्त सही साबित हुआ। चाहे वितरण का, प्राप्ति का अथवा कोई भी काम हो, शक्ति बटोर करके ही हमें अब आगे काम करने की योजना करनी चाहिए। बाबा ने कलेक्टिव लीडरशिप की ओर सामूहिक रूप से शक्ति लगाने की जो बात कही थी, उसीके अनुसार आगे की हमें कार्य-योजना करनी चाहिए।

दबाव से नहीं, प्रेम से काम हो

अभी नारायण भाई ने एक विचार रखा कि भूमिहीनों को प्रेम करना सिखाना चाहिए। वह विचार भी कोई नया नहीं। क्योंकि रात-दिन हम लोग कहते हैं कि प्रेम का यह आन्दोलन है। तो जिनके पास कुछ भी देने के लिए नहीं है, वे हमें प्रेम ही दान करें। उन्होंने कहा कि हमें भूमिहीनों को भी प्रेम करना सिखाना चाहिए। किस तरह से वह दूसरों को, जिनके साथ वे रहते हैं, प्रेम दे सकते हैं। उसकी भी सूचना उन्होंने कुछ दी। जो भाई देहात में रहते हैं, वे जानते हैं कि भूमिवानों और भूमिहीनों में कोई सद्भाव नहीं है। भूमिहीनों की जैसी दुर्दशा रही है, जिस तरह से उनके साथ वर्ताव हुआ है, उनका दिल बहुत दुखा हुआ रहता है और उनके दिल में प्रतिहिंसा की आग जलती रहती है। यह एक अहिंसक क्रान्ति के लिए खतरे की बात है। बहुत-से भाई यह विचार लेकर हमारे सामने आते हैं और आज भी यह विचार रखा गया था कि भूमिहीनों का हम संगठन करें। इस विषय में उनके मन में ऐसा रहता है कि भूमिहीनों का संगठन बढ़ाकर और उस संगठन का डर दिखाकर मालिकों से हम जमीन माँगें और हासिल करें। इस विचार द्वारा हमारा काम होगा, तो सोलह आना हमारा काम बिगड़नेवाला है। इसमें कभी-कभी कोई भाई कृपा करके यह कह देते हैं कि उसमें कुछ मोटे भूमिवानों को भी मिला लें अथवा बड़े भूमिवानों को भी मिला लें। लेकिन भावना वही रहती है कि भूमिहीनों की शक्ति पैदा करके और उस शक्ति से उन पर हम दबाव डाल करके कुछ हासिल करें।

जन-शक्ति ही नैतिक शक्ति

सबको यह समझना चाहिए कि जब जनशक्ति के प्रयोग की हम कल्पना करते हैं, तो जन-शक्ति का यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि आठ-दस हजार आदमी लाठी

लेकर इकट्ठे हो गये, तो वह जन-शक्ति हो गयी, लाठी छोड़कर के भी इकट्ठे हो गये, तो जन-शक्ति हो गयी। जन-शक्ति तो वास्तव में नैतिक शक्ति ही है। जब जनता, साधारण गरीब लोग अपने कर्तव्य का पालन करेंगे, सत्य-मार्ग पर चलेंगे, तो उनके अन्दर ऐसी शक्ति पैदा होगी कि उनके सामने कोई खड़ा ही नहीं रह सकेगा।

आज मुझसे लोग पूछते हैं, खासकर वामपंथी लोग (और वामपंथ तो आज बढ़ता ही जा रहा है। जब से कांग्रेस ने निश्चय कर लिया कि एक समाजवादी समाज का निर्माण हमें करना है, तब से ही वाम-पंथ इतना व्यापक हो गया कि आप समझ सकते हैं।) पूछते हैं कि 'वामपंथियों की तरह से आप लोग यह विचार फैलाते हैं, तो आप क्या मान लेते हैं कि अमीरों को यह सारा विचार समझा दिया जाय, तो यह लोग आपका विचार समझ करके स्वामित्व का विसर्जन कर देंगे ? और कह देंगे कि यह कारखाना हमारा नहीं है, समाज का है ? मुनाफा हमारा नहीं है, सब समाज का है ? यह संभव है कि वह कुछ आपको आंशिक दान दे दें, अपना यश लूटने के लिए। अखबार में उनका नाम प्रकाशित हो जाय, इसके लिए, विनोबाजी प्रसन्न हो जायँ इसके लिए। मान भी लीजिये कि यदि उनके ऊपर थोड़ा असर ही हो गया और उन लोगों ने थोड़ा दे भी दिया, तो भी क्या यह संभव है कि इस प्रकार से क्रान्ति हो जायगी ? यह अमीर लोग अपने स्वामित्व का विसर्जन करेंगे ?' तो मैं कहता हूँ कि आज जैसी स्थिति है, जिस प्रकार की नैतिकता, जिस प्रकार के मूल्य और आचार-विचार समाज में चारों ओर प्रचलित हैं, इस परिस्थिति में आज कम-से-कम मैं इस अपेक्षा से किसी भी अमीर के पास नहीं जाता हूँ कि वह हमारी बात सुन लेगा, और सम्पत्ति का विसर्जन कर डालेगा। हमारी अपेक्षा यह भी नहीं रहती है कि वह छठा अंश भी हमें दे देगा। वह हमें दे देता है, तो आश्चर्य होता है। यदि कोई करोड़पति है और अपनी आय का छठा हिस्सा हर वर्ष देने को कहता है, तो मैं मानता हूँ कि यह महात्मा गांधी का प्रताप है, विनोबा का प्रताप है अथवा इस पुण्यभूमि का ही प्रताप है। गौतम और महावीर जैसे मुनियों का प्रताप है। राम और कृष्ण का प्रताप है। क्या है, यह तो भगवान् जाने; किन्तु उसको देते देखकर हमें आश्चर्य होता है। अगर वह

नहीं देता है, तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होता। दुःख और क्रोध का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

आपस में ही समान वितरण कर लें

आज समाज में जो गरीब लोग हैं और जो अमीर का धन चाहते हैं और अमीरों से कहते हैं कि तुम्हारा धन समाज का है, कारखाना तुम्हारा नहीं है, जमीन तुम्हारी नहीं है, वे ही गरीब लोग कहते हैं कि यह आधा बीघा जमीन हमारी है, हम इसके मालिक हैं। वह मालकियत का डंका बजा रहे हैं और लाठी लेकर खड़े हैं कि कोई अगर ज़मीन पर चढ़ा, तो लाठी से हम सर फोड़ देंगे। यह हमारी चीज है। चारों तरफ से 'हमारा, हमारा, हमारा' यह आवाज निकल रही है और हर कोई यह कह रहा है कि हम इसके मालिक हैं। महीनेभर में जो २५ रुपया कमाया है वह हमारा है, उसमें किसीका हिस्सा नहीं है। परन्तु धनिक ने जो पचीस करोड़ पैदा किया है, वह समाज का है। इस प्रकार हमारे जो तुच्छ स्वार्थ हैं, उनके संघर्ष से सर्वोदय नहीं निकलेगा, क्रान्ति की शक्ति का सृजन नहीं होगा; क्योंकि आज हमारे देश के जो अमीर लोग हैं, वे क्रान्ति के मंत्रों का उच्चारण नहीं करते हैं। वह नहीं कहते हैं कि धन, धरती का बँटवारा हो, पूँजीवाद का नाश हो, सत्ता का अंत हो, समाज से विषमता का अन्त हो, समता की स्थापना हो। यह देश में जो हजारों एकड़ के मालिक हैं, लखपति और करोड़पति हैं, उनकी यह आवाज नहीं है। क्रान्ति की यह आवाज तो साधारण जनता की है। गरीब की यह आवाज है। तो आज हमें गरीब को यह समझाना है कि आपके अन्दर क्रान्ति की शक्ति तभी पैदा होगी और तभी सफल भी होगी, जब कि आप जो पहले अमीर को करने के लिए कहते हैं, वह पहले अपने जीवन में करेंगे। अर्थात् आपके पास जो कुछ है, उसके स्वामित्व का विसर्जन करेंगे। आधा बीघा जमीन है, एक बीघा जमीन है, तो समझना होगा कि वह आपकी नहीं है। यह बात आप महसूस करो और आपके पास एक बीघा, उसके पास दो बीघा, तीसरे के पास पाँच बीघा, दस बीघा सब इकट्ठा कर लो और आपस में बाँट लो। सब मजदूर भी अपनी मजदूरी एक जगह एकत्र कर आपस में एक जगह समान रूप से बाँट लें। इस रीति से देश में करोड़ों लोगों का विचार पलट जाय और समान विभाजन कर लें।

और फिर सबके मुँह से यह आवाज निकले कि यह हमारा नहीं, यह तुम्हारा
यह सबका है। यदि गरीब इस नैतिक भूमिका पर खड़ा
आवाज में वह नैतिक शक्ति होगी कि उसके आगे करोड़पति
और उसे भी कहना पड़ेगा कि यह धन उसका नहीं है, समाज
हमारी अपेक्षा होगी कि करोड़पति भी अपने स्वामित्व का स्वतः
परन्तु आज हमारी अपेक्षा नहीं है।

दुनिया की सभी क्रांतियाँ

आज तक दुनिया में अनेक क्रान्तियाँ हुई हैं।
इत्यादि देशों में अभूतपूर्व क्रान्तियाँ हुईं, किन्तु मैं
सफल नहीं हुई। हमारे नवयुवक जिस क्रान्ति का
रूस में हुई। उससे वड़ी क्रान्ति इतिहास में नहीं हुई, न
उलट-फेर इन क्रान्तिकारियों ने किया। उन्होंने अपने
कितने ही जागीरदार-जमींदारों को कत्ल किया। कितने ही पूँ
के घाट उतार दिया। कारखाने छीन लिये, जमीन छीन ली और
वारा भी कर दिया। वहाँ जमीन का कोई मालिक नहीं है, समाज
खेती का कलेक्टवाइज़ेशन, सामूहीकरण, कारखानों का समाजीकरण,
इत्यादि हुआ। इतनी बड़ी हिंसाएँ और परिवर्तन सब समाज के लिए
कुछ दिन पहले रूस से वहाँ के प्रथम प्राइम मिनिस्टर निकोयान
उन्होंने प्लानिंग कमीशन के समक्ष अपने भाषण में यह
वहाँ ४०० रूबल एक मामूली मजदूर को मिलता है, तो २५
अधिकारी को मिलता है। समता के नाम पर की गयी क्रान्ति
आया कि वहाँ ४ सौ से २५ हजार तक की विषमता पैदा हो ग
स्टालिन जैसे डिक्टेटर के जमाने में हो गयी। उसने कितनी निर्ममता
को मौत के घाट उतार दिया, परन्तु वह मानव-मन में स्थित स्वार्थ पर
प्राप्त नहीं कर सका। लोगों के दिलों में जो लोभ और मोह था,
सामने उसको घुटना टेकना पड़ा।

नहीं देता है, तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होता। दुःख और क्रोध का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

आपस में ही समान वितरण कर लें

आज समाज में जो गरीब लोग हैं और जो अमीर का धन चाहते हैं और अमीरों से कहते हैं कि तुम्हारा धन समाज का है, कारखाना तुम्हारा नहीं है, जमीन तुम्हारी नहीं है, वे ही गरीब लोग कहते हैं कि यह आधा बीघा जमीन हमारी है, हम इसके मालिक हैं। वह मालकियत का डंका बजा रहे हैं और लाठी लेकर खड़े हैं कि कोई अगर ज़मीन पर चढ़ा, तो लाठी से हम सर फोड़ देंगे। यह हमारी चीज है। चारों तरफ से 'हमारा, हमारा, हमारा' यह आवाज निकल रही है और हर कोई यह कह रहा है कि हम इसके मालिक हैं। महीनेभर में जो २५ रुपया कमाया है वह हमारा है, उसमें किसीका हिस्सा नहीं है। परन्तु धनिक ने जो पचीस करोड़ पैदा किया है, वह समाज का है। इस प्रकार हमारे जो तुच्छ स्वार्थ हैं, उनके संघर्ष से सर्वोदय नहीं निकलेगा, क्रान्ति की शक्ति का सृजन नहीं होगा; क्योंकि आज हमारे देश के जो अमीर लोग हैं, वे क्रान्ति के मंत्रों का उच्चारण नहीं करते हैं। वह नहीं कहते हैं कि धन, धरती का बँटवारा हो, पूँजीवाद का नाश हो, सत्ता का अंत हो, समाज से विषमता का अन्त हो, समता की स्थापना हो। यह देश में जो हजारों एकड़ के मालिक हैं, लखपति और करोड़पति हैं, उनकी यह आवाज नहीं है। क्रान्ति की यह आवाज तो साधारण जनता की है। गरीब की यह आवाज है। तो आज हमें गरीब को यह समझाना है कि आपके अन्दर क्रान्ति की शक्ति तभी पैदा होगी और तभी सफल भी होगी, जब कि आप जो पहले अमीर को करने के लिए कहते हैं, वह पहले अपने जीवन में करेंगे। अर्थात् आपके पास जो कुछ है, उसके स्वामित्व का विसर्जन करेंगे। आधा बीघा जमीन है, एक बीघा जमीन है, तो समझना होगा कि वह आपकी नहीं है। यह बात आप महसूस करो और आपके पास एक बीघा, उसके पास दो बीघा, तीसरे के पास पाँच बीघा, दस बीघा सब इकट्ठा कर लो और आपस में बाँट लो। सब मजदूर भी अपनी मजदूरी एक जगह एकत्र कर आपस में एक जगह समान रूप से बाँट लें। इस रीति से देश में करोड़ों लोगों का विचार पलट जाय और समान विभाजन कर लें।

और फिर सबके मुँह से यह आवाज निकले कि यह हमारा नहीं, यह तुम्हारा नहीं, यह सबका है। यदि गरीब इस नैतिक भूमिका पर खड़ा होता है, तो उसकी आवाज में वह नैतिक शक्ति होगी कि उसके आगे करोड़पति को भी झुकना होगा और उसे भी कहना पड़ेगा कि यह धन उसका नहीं है, समाज का है। उस समय हमारी अपेक्षा होगी कि करोड़पति भी अपने स्वामित्व का स्वतः ही विसर्जन करे। परन्तु आज हमारी अपेक्षा नहीं है।

दुनिया की सभी क्रांतियाँ असफल

आज तक दुनिया में अनेक क्रान्तियाँ हुई हैं। रोम, फ्रांस, रूस, भारत, चीन इत्यादि देशों में अभूतपूर्व क्रान्तियाँ हुई, किन्तु मैं मानता हूँ कि एक भी क्रान्ति सफल नहीं हुई। हमारे नवयुवक जिस क्रान्ति का सपना देखते हैं, वैसी क्रान्ति रूस में हुई। उससे बड़ी क्रान्ति इतिहास में नहीं हुई, न होनेवाली है। कितना उलट-फेर इन क्रान्तिकारियों ने किया। उन्होंने अपने बादशाह की हत्या की। कितने ही जागीरदार-जमींदारों को कत्ल किया। कितने ही पूँजीपतियों को मौत के घाट उतार दिया। कारखाने छीन लिये, जमीन छीन ली और जमीन का बँटवारा भी कर दिया। वहाँ जमीन का कोई मालिक नहीं है, समाज मालिक है। खेती का कलेक्टवाइजेशन, सामूहीकरण, कारखानों का समाजीकरण, राष्ट्रीयकरण इत्यादि हुआ। इतनी बड़ी हिंसाएँ और परिवर्तन सब समाज के लिए हुआ। परन्तु कुछ दिन पहले रूस से वहाँ के प्रथम प्राइम मिनिस्टर निकोयान यहाँ आये थे। उन्होंने प्लानिंग कमीशन के समक्ष अपने भाषण में यह जाहिर किया कि अगर वहाँ ४०० रूबल एक मामूली मजदूर को मिलता है, तो २५ हजार रूबल सर्वोच्च अधिकारी को मिलता है। समता के नाम पर की गयी क्रान्ति का यह प्रतिफल आया कि वहाँ ४ सौ से २५ हजार तक की विषमता पैदा हो गयी और वह भी स्टालिन जैसे डिक्टेटर के जमाने में हो गयी। उसने कितनी निर्ममता से लोगों को मौत के घाट उतार दिया, परन्तु वह मानव-मन में स्थित स्वार्थ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। लोगों के दिलों में जो लोभ और मोह था, उसके सामने उसको घुटना टेकना पड़ा।

हमारे देश के और विदेश के कई विद्वान् लोगों की यह याचना है कि रेण्ट, इण्टरेस्ट और प्रॉफिट विषमता का कारण है। कुछ लोग जमीन के मालिक हैं, लगान देते हैं, कुछ सूद पर रुपया चलाते हैं और सूद लेते हैं, कुछ कारखाने वगैरह चलाते हैं और मुनाफा लेते हैं यह तो रेण्ट है, इण्टरेस्ट है और प्रॉफिट है—इन तीन कारणों और तीन परिस्थितियों से विपमता पैदा होती है। उनका मानना है कि इन परिस्थितिजन्य कारणों के निराकरण से समाज में समता स्थापित न हो सकेगी। किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता हूँ। रूस इसका ज्वलंत उदाहरण है। क्योंकि शिक्षित लोग, वैज्ञानिक इंजीनियर्स, डॉक्टर्स और अन्य विशेषज्ञों ने कहा कि जितनी मजदूरी एक मामूली मजदूर को मिलती है, उतनी ही अगर हमें मिलेगी, तो हम क्यों काम करेंगे? लेनिन ने तो कहा था कि मजदूरों के राज्य में जितनी मजदूरी मिलेगी, सर्वोच्च लोगों को भी उससे थोड़ा ही ज्यादा मिलेगा। लेनिन ने थोड़ा ही कहा था, यह भी नहीं कहा था कि दोगुना मिलेगा या तीनगुना मिलेगा। उसने तो कहा कि हर व्यक्ति अपनी शक्ति-भर समाज की सेवा करेगा और आवश्यकता-भर समाज से लेगा। लेकिन इस प्रकार की समानता का व्यवहार शिक्षित-वर्ग को स्वीकार न हुआ। खुलकर किसीने विरोध नहीं किया; क्योंकि यह भय था कि खुलकर जो कहता, वह गोली से उड़ा दिया जाता। लेकिन काम नहीं हुआ। योजनाएँ बनीं। परन्तु जो लक्ष्य निर्धारित किये जाते थे, वे पूरे नहीं होते थे। स्टालिन ने खूब दमन और संहार किया। जितने लोग उस क्रान्ति में नहीं मारे गये थे, उससे ज्यादा लोग कत्ल हुए। परन्तु स्टालिन डंडे के जोर से समता का सिद्धान्त स्वीकार नहीं करा सका। लोभ एवं स्वार्थ के सामने उसकी पराजय हुई और उसे झुकना पड़ा। पूँजीवाद मिटा देने के बाद, जमींदारी मिटा देने के बाद, अनेक प्रकार की सुविधाओं एवं बड़े-बड़े वेतन का लोभ देना पड़ा। असमता को अपने ही हाथों से समाज में प्रविष्ट कराया। इसलिए मित्रो! इस प्रकार की कितनी ही विश्व-क्रान्तियाँ आज पुकार-पुकारकर कह रही हैं कि वे सही अर्थों में क्रान्तियाँ नहीं थीं, क्योंकि क्रान्ति के बाद गरीबों के स्वार्थों से संघर्ष हो चला।

राष्ट्रीयकरण समस्या का हल नहीं

आज हमारे देश में राष्ट्रीयकरण हुआ है। रेलें अब व्यक्तिगत संपत्ति न रहकर राष्ट्र की संपत्ति हैं। एयर लाइन्स का भी राष्ट्रीयकरण हो गया। सिन्द्री और चित्त-रंजन के कारखाने भी राज्य द्वारा संचालित होते हैं। और मिलाई आदि में जहाँ-जहाँ कारखाने राष्ट्र की ओर से बननेवाले हैं, क्या वहाँ पूँजीवाद नहीं है? राज्य के अधि-कार में आने के बाद ही रेल्वे विभाग में मामूली मजदूर को सत्तर रुपया मजदूरी मिलती है और जनरल मैनेजर को साढ़े तीन हजार रुपया महीना मिलता है। क्या मुनाफा-खोरी या सूदखोरी बन्द हो गयी? केवल फर्क यह हो गया कि पहले व्यक्ति का होता था, अब राष्ट्र के नाम से होता है, अन्तर कुछ नहीं हुआ। केवल बाह्य परिवर्तन हुआ। आज लालबहादुर शास्त्री किसी भी जनरल मैनेजर को बुलाकर कहें कि सत्तर रुपया हम मामूली मजदूर को देते हैं, आपको डेढ़ सौ रुपया देने को तैयार हैं, आप काम कीजिये। तब एक-एक जनरल मैनेजर इस्तीफा देकर चला जायगा। पं० जवाहरलाल नेहरू के हाथों में न शक्ति है और न उस कानून के हाथों में कि उनसे वह काम करा ले। यह लोगों को विचार समझा करके ही करा सकते हैं। हमारी यह अपेक्षा है कि वे गरीब लोग—जिनमें क्रान्ति की आग सुलग रही है और जो क्रान्ति के जयघोष उच्चारित करते हैं, वे यदि इस विचार को समझ लेंगे और विचार पर अमल करेंगे, तो मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जो अभी हिंसक क्रान्तियों से पूरा न हो सका, वह कार्य इस मार्ग से कम समय में और सही अर्थों में पूरा हो सकेगा। साम्यस्थापना की सच्ची क्रान्ति हो सकेगी। इसी प्रक्रिया से भू-दान से ग्रामदान निकला और संपत्तिदान से संपत्ति का पूर्ण विसर्जन अर्थात् सम्पत्ति का समाजीकरण निकलेगा और हम ग्रामराज की ओर बढ़ेंगे। हमें इसी रास्ते से आगे बढ़ना है। आप इस पर विचार करके अमल करें, ऐसा मेरा अनुरोध है।

क्या सत्याग्रह और असहयोग भी संभव?

लोग हमसे पूछते हैं कि मान लीजिये, हमने यह किया और फिर भी पूंजीपतियों का विचार नहीं बदला, तो क्या सत्याग्रह हमारा अगला कदम होगा? इस बारे में बाबा ने कई बार कहा है। हमने भी कई बार इसका जिक्र किया है।

लोग ऐसा मानते हैं कि सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है, जो अमीरों के गले पर लटक रही है। यदि वे अपनी जमीन और संपत्ति का बँटवारा नहीं करेंगे, तो हम सत्याग्रह करेंगे। तब मैंने कहा कि यह सत्याग्रह नहीं हुआ, बल्कि दुराग्रह हुआ। इसमें से कुछ निष्कर्ष निकलनेवाला नहीं है। यदि असहयोग ही हमारा अगला कदम हुआ, तो इस संबंध में मैंने जो कुछ कहा, उसमें इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि अगर कभी हमारा असहयोग भी होगा, तो वह किसी व्यक्ति के साथ नहीं होगा, अपितु अन्याय, शोषण, अनीति, लोभ और संग्रहवृत्ति के विरुद्ध होगा। व्यक्ति के साथ तो प्रेम ही हो सकता है। आज कोई कहे कि हम आपके खेत में काम नहीं करेंगे, तो उसको यह कहने का तब तक अधिकार नहीं, जब तक कि वह यह मानता है कि दिनभर मजदूरी करके जो एक रुपया कमाया, वह उसका ही है, उसमें दूसरे का कोई हिस्सा ही नहीं है। उसके दिल में यह लोभ है कि यदि उसे कल एक रुपये की जगह पचास रुपया मिलेगा, तो वह यह नहीं कहेगा कि एक रुपया अपने लिए रखेंगे और उनचास रुपया गरीबों को बाँट देंगे। आज देश के अन्दर ऐसा एक भी गरीब नहीं होगा, जिसके पास एक बीघा खेत है और उसको सौ बीघा आप देने जायँ, तो वह कहेगा कि देखो भाई, हम सात बीघे रख लेते हैं, क्योंकि सात बीघे में परिवार का गुजारा हो जायगा, बाकी तिरानबे बीघा आप दूसरे गरीबों को बाँट दें। बल्कि इसके विपरीत यह कहेगा कि लाओ, सौ बीघा लाओ और भी सौ बीघा हो तो लाओ। वह उस पर अपना अधिकार करके बैठेगा। जमीन ही नहीं, यदि आप उसको एक हजार रुपया दें, तो उस रुपये को दोनों हाथों से मजबूत पकड़ेगा और छाती से लगाकर रखेगा। परन्तु वह यह नहीं कहेगा कि हम तो गरीब हैं, हमें रुपये की क्या जरूरत? लो, एक-एक रुपया गरीब भाइयों में बाँट देते हैं। तो, जब तक गरीबों में यह लोभ, संग्रह और स्वामित्व की भावना और विचार है, तो इनके रहते हुए जो भी असहयोग और सत्याग्रह होगा, वह वास्तविक नहीं होगा; बल्कि वह तो अपने स्वार्थ को पूरा करने का एक तरीका ही कहलायेगा। इसलिए सत्याग्रह और असहयोग के तत्त्वज्ञान को हमें अच्छी तरह समझना है और उसके लिए कौन-सी परिस्थितियाँ हैं, उस पर भी विचार करना है।

विविधता के बीच की एकता जरूरी

इस आन्दोलन की यह विशेपता है कि इससे एक के बाद एक कितने ही प्रकार के विचार निकलते गये हैं। यह कतिपय लोगों द्वारा संचालित किया हुआ आन्दोलन नहीं है। थोड़ा-बहुत मार्गदर्शन मिलता है। इतना मार्गदर्शन मिलता रहे और स्वतंत्र चिन्तन और स्वतंत्र प्रयोग हर जगह चलते रहें, यह इस आन्दोलन की विशेपता होनी चाहिए। लेकिन यह भी हमारे में शक्ति होनी चाहिए कि कहीं भी अच्छा विचार अथवा अच्छा प्रयोग हुआ, तो उसको हम समझें। उसे हम स्वीकार कर उस पर आचरण करें। लेकिन, विभिन्नता इतनी भी न हो जाय कि आन्दोलन का विचार ही इसमें खो जाय और कहीं समरसता रहे ही नहीं। अतः हमारे सारे कार्यों की विविधता एकता के सूत्र में बँधी रहनी चाहिए।

जीवनदानियों का नया अर्थ

विहार के तपस्वी और पुराने नेता श्री मोतीलालजी केजड़ीवाल ने सेवक बनाने की योजना रखी। यह ठीक नहीं होगा कि सब जगह एक ही ढंग अपनाया जाय। फिर भी प्रयोग की स्वतंत्रता रहते हुए भी मैं मानता हूँ कि कुछ मर्यादा रहने से हमारी शक्ति बन सकती है। आप सबको स्मरण होगा कि बोधगया में जीवन-दान का एक प्रसंग शुरू हुआ था। उस जीवनदान के आन्दोलन का जैसा विकास होना चाहिए था, उसमें से जितनी शक्ति निकलनी चाहिए थी, हमें कबूल करना पड़ता है कि वैसा नहीं हुआ। हमारी कल्पना यह थी कि उस जीवनदान के आन्दो-लन से एक सेना का निर्माण हो। परन्तु कई कारणों से ऐसा नहीं हो सका। उसमें मैं भी एक कारण हूँ। लेकिन उस विचार का और आन्दोलन का विकास होता गया। गया से अब तक तो पूरा समय देनेवाले आते रहे हैं, लेकिन कुछ काम-धंधा करनेवाले लोग लाखों-करोड़ों इस आन्दोलन में आयें। गाँव-गाँव में खेती, मजदूरी, शिक्षण करनेवाले और कोई अन्य धंधा करनेवाले, जैसे बढ़ई का काम करनेवाले, लुहार का काम करनेवाले, देहात में और शहर में जितने लोग रहते हैं, इन लोगों में से दो-चार-दस आदमी ऐसे निकल आयें, जो यह संकल्प करें कि हम इन विचारों को समझकर इन पर अमल करना प्रारंभ करेंगे। जैसे महात्माजी ने सत्या-ग्रहियों की परिभापा बनायी थी, वैसी कोई स्थूल परिभापा जीवनदानियों की

वनायी जाय और आन्दोलन को जितना भी व्यापक वनाया जा सके, वनाया जाय। आप हम लोग गाँवों में भूदान, संपत्तिदान, नयी तालीम, ग्रामदान और अन्य कामों के जरिये जाते हैं, तो अब आपकी दृष्टि यह भी होनी चाहिए कि हम गाँव में दो-चार भाईऐसे तैयार हो जायँ कि इन शर्तों को मानकर उन पर चलने का प्रयास करें। मैं मानता हूँ कि सन् '५७ में गाँव-गाँव में वहाँ की जनता जमीन का वँटवारा कर ले, वह संभव हो जायगा। अगर हर गाँव में ऐसे दो-चार व्यक्ति पैदा हो जाते हैं, तो उनको हम जीवनदानी कहें। ऐसे जीवनदानी हर गाँव में पैदा हों, इसके लिए हम कोई नया शव्द प्रचारित कर अलग-अलग श्रेणियाँ नहीं करना चाहते। जो शव्द प्रचलित हो गया है, उसीमें इस अर्थ का समावेश कर लेना चाहते हैं। हमें पुराने शव्दों में नये-नये अर्थ भरने होंगे। इस प्रकार जीवनदान का जो भी अर्थ रहा हो, अव उसका नया अर्थ वन रहा है। वावा के परामर्श से जीवनदानियों के लिए कुछ शर्तें निर्धारित हुई हैं, वे निम्न प्रकार से हैं :

१. जिनके पास भूमि है, वह उनका योग्य भाग भूदान में दें।
२. अपनी आमदनी या पैदावार का योग्य भाग संपत्तिदान में दें।
३. शरीर-श्रम में निष्ठा रखें तथा नियमित रूप से शरीर-श्रम करें।
४. खादी धारण करें तथा स्वयं सूत कातें। अपने परिवार के लोगों को खादी पहनने तथा सूत कातने को समझायें।
५. ग्रामोद्योग की अन्य वस्तुओं का उपयोग करने की चेष्टा करें।
६. ताड़ी, शराव, गाँजा, अफीम आदि का त्याग करें।
७. स्पृश्यास्पृश्य का भेद न करें।
८. अपने झगड़े पंचायती ढंग से फैसला कराने का प्रयत्न करें।
९. जमीन के मालिक हों, तो बेदखली आदि अन्याय न करें तथा अपने मजदूरों को उचित मजदूरी दें।
१०. किसी भी प्रकार के चुनाव में उम्मीदवार न वनें।
११. भूदान तथा निर्माण-कार्यों में यथासंभव योगदान करें।

शहरों में रहनेवाले और वुद्धिजीवियों पर उपर्युक्त जो कर्तव्य लागू होते हैं, उनके अतिरिक्त कुछ और कर्तव्य भी होंगे :

१. वकील संकल्प करें कि जिन मुकदमों को वह झूठा समझते हैं, वे उनको हाथ में न लें।
२. डॉक्टर निर्वाह-व्यय के अतिरिक्त अपने पेशे को धन-संग्रह का जरिया न बनाये तथा प्रतिबंधक उपायों और वनस्पतियों तथा सस्ती औषधियों पर जोर दें।
३. व्यापारी चोरबाजारी न करें। टैक्स से बचने की चेष्टा न करें तथा अपने व्यवहार में धोखा या ठगी न आने दें।
४. बुद्धिजीवी इन दोनों के अतिरिक्त बुद्धिदान करें। देश में इस प्रकार के जीवनदानी लाखों की संख्या में हों। अब हमारा ऐसा प्रयास होना चाहिए कि हम इस बात पर जोर दें। यदि इस तरह सबकी शक्ति इस काम की तरफ लग जायगी, तो यह काम बहुत दूर चला जायगा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना और सर्वोदय

कार्यकर्ताओं ने अक्सर यह पूछा है कि सर्वोदय-समाज का निर्माण करना है, तो उसका क्या स्वरूप होगा, इसकी स्पष्ट रूपरेखा सामने आनी चाहिए; क्योंकि देश में द्वितीय पंचवर्षीय योजना बन रही है। सर्वोदय का उसमें कहाँ तक स्थान है? उन योजनाओं की पूर्ति से सर्वोदय का कहाँ तक निर्माण होगा? मैं मानता हूँ कि यह सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के लिए चिन्तन का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। लेकिन इससे भी महत्त्व का प्रश्न यह है कि हम जो अपना काम कर रहे हैं, उससे कितनी शक्ति पैदा हो रही है। क्योंकि सरकार उतना ही कर सकेगी, जितना सरकार से जनता करा सकेगी। पिछले कई दिनों से सर्व-सेवा-संघ के सामने यह प्रश्न विचारार्थ आता रहा है। सर्व-सेवा-संघ ने एक समिति की भी नियुक्ति की थी कि सर्वोदय-विचार से देश का सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक निर्माण इत्यादि किस प्रकार का होगा? इन विषयों में हमारा भी विचार स्पष्ट हो और जनता के सामने भी एक चित्र उपस्थित किया जा सके। वह इस पर मसविदा तैयार कर सम्मेलन के सम्मुख रखे। समिति ने इस विषय पर मसविदा तैयार किया है। वह भी आपके सामने आयेगा। उस पर भी आप विचार करेंगे और अपने सुझाव देंगे। लेकिन आप यह न भूलें कि मुख्य बात हमारे

लिए यह है कि हमारा काम देश में कितनी शक्ति पैदा करता है। आज हमें मानना पड़ेगा कि हमारे आन्दोलन में उतनी शक्ति नहीं है। आज हम अल्पमत में हैं। बहुमत हमारे साथ नहीं है। इसलिए सरकार की तरफ से जो योजना तैयार हुई है, वह हमारे लिए समाधानकारक नहीं है। हम नहीं कह सकते कि उस योजना के पूर्ण होने से सर्वोदय-समाज का निर्माण होगा। उस योजना का कोई विरोध हमें नहीं करना है, लेकिन अपनी एक आशंका प्रकट कर रहा हूँ। हम लोगों ने अपने विचार योजना बनानेवालों के सामने रखे थे, लेकिन मानना पड़ेगा कि उन विचारों के पीछे इतनी शक्ति नहीं थी कि योजना बनानेवालों को हमारे विचार स्वीकार होते। यहाँ तक कि खादी और ग्रामोद्योग का काम, जो इसी योजना के अन्तर्गत सरकार की ओर से हो रहा है, हम नहीं कह सकते, कि वह काम पूर्ण रूप से समाधान-कारक है। वह सारा काम देश की बेकारी की समस्या के निराकरण के दृष्टिकोण से हो रहा है। यह दृष्टिकोण गलत है। ऐसा हम नहीं कहते, क्योंकि बेकारी की समस्या का हल होना ही चाहिए। लेकिन हमारा निवेदन है कि बेकारी की समस्या को हल करने का जो उपाय सोचा गया है, वह भी जिस प्रकार से किया जाना चाहिए, उस प्रकार से नहीं हो रहा है।

हम ही दोषी

यदि इस स्थिति पर विचार करें, तो इसके दोषी हम लोग ही हैं। खादी और ग्रामोद्योग का काम, जो सरकार की तरफ से खादी-ग्रामोद्योग-बोर्ड द्वारा किया जा रहा है, उसका भी मार्गदर्शन चरखा-संघ के ग्रामोद्योग-विभाग के तज्ञों ने ही किया है। हमें यह मानना पड़ता है कि जिस प्रकार से सरकार का यह सारा काम हुआ और आज हो रहा है अर्थात् व्यापारिक दृष्टि से कि कहीं कपास पैदा होगी, कहीं से कपास खरीदी जायगी और वहाँ से रेलगाड़ी द्वारा कपास दूसरे स्थान पर पहुँचायी जायगी, कहीं अन्य स्थान पर सूत बनेगा। अन्यत्र सूत का कपड़ा तैयार हो और बिकेगा किसी दूसरी जगह पर, तो यह सारी योजना व्यापारिक है, इससे स्वावलंबन नहीं निकलता। चाहे फिर यह व्यापार अम्बर द्वारा ही क्यों न चलाया जाय? परन्तु किसे कहें? इसके दोषी भी तो हम और आप ही हैं। आज भी जैसे बिहार में खादी-ग्रामोद्योग-संघ का काम चलता है, उत्तर प्रदेश

में गांधी-आश्रम का काम चला है, उनका भी ज्यादातर काम व्यापारिक खादी का ही रहा है। खादी की उत्पत्ति कराना और बिक्री कराना, यही प्रमुख काम है। यही काम आज जब सरकार कर रही है, तो उसको क्या दोष दें! आज हमारे सामने यह भी एक प्रश्न है, जिस पर हम लोग गंभीरतापूर्वक विचार करें। जब बाबा ने कहा कि यहाँ दक्षिण प्रदेश में रह करके ग्रामराज, जिसमें खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम आदि सम्मिलित हैं, का प्रयोग करेंगे, तो हमें बड़ी स्फूर्ति मिली कि इससे एक नया मार्गदर्शन होनेवाला है।

स्वावलंबन ही मुख्य लक्ष्य हो

जगन्नाथपुरी में बाबा ने यह आवाहन किया था कि जो लोग रचनात्मक क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, जिनका विश्वास सर्वोदय में है, वे सब लोग अपना काम छोड़ करके यह काम उठा लें। इसका अर्थ यह लगाया गया था कि सारे रचनात्मक काम बन्द कर देने पड़ेंगे और गाँव-गाँव जाकर जमीन माँगनी पड़ेगी। यह काम नहीं हुआ। आवाहन की पूर्ति नहीं हुई। लेकिन इसका असली अर्थ तो यह था कि वह सारे काम जिस ढंग से आज तक होते आये हैं, उस तरीके को हम बदलेंगे। और भूदान-आन्दोलन ने देश में विचार का जो एक आधार पैदा कर दिया है, उस आधार पर इन कामों को खड़ा करेंगे। किसी भी ग्राम में जाकर कत्तिनों और बुनकरों को आप पैसा देंगे और इस आधार पर खादी का काम खड़ा करेंगे, तो यह आसान होगा, पर वह क्रान्ति का काम नहीं होगा। उससे शक्ति पैदा नहीं होगी। आज गाँव में बेकारी है। और अगर चार आना भी लोग कमा सकते हैं, तो वह कमाना चाहेंगे। लेकिन किसी गाँव में स्वावलंबन के लिए कपड़ा पैदा करेंगे, उसके लिए चरखा चलायेंगे, इसके लिए अपने गाँव में कपास पैदा करेंगे, इसके लिए गाँव में बुनकर बैठायेंगे—यह विचार उनको समझाना चाहें, तो आज भूदान के अलावा देश में सर्वोदय का और कोई व्यापक आन्दोलन नहीं चल रहा है। क्योंकि हर काम को जनता में प्रचार करने के लिए भावनात्मक आन्दोलन चाहिए। जितने रचनात्मक काम करनेवाले हैं, उन सबका यही अनुभव आया है कि यदि आन्दोलन शुरू नहीं होता, तो धीरे धीरे सब सरकार की शरण में चले जाते और जहाँ और सरकार का रुपया मिलता, तभी खादी की उत्पत्ति होती। परन्तु आज पाँच बरस के

अन्दर जो इस आन्दोलन से शक्ति पैदा हुई है, गाँव-गाँव में भूदान हुआ, वितरण हुआ, ग्रामदान हुआ, संपत्तिदान हुआ, ग्रामराज की जहाँ चर्चा प्रारंभ हो गयी है, वहाँ यह सारा रचनात्मक कार्य सही रूप में अब प्रकट होनेवाला है। व्यापारिक खादी नहीं, बल्कि स्वावलंबी खादी अब वहाँ बनेगी। गाँवों का आर्थिक निर्माण अब स्वावलंबन के आधार पर होगा। जो कच्चा माल वहाँ पैदा होता है, तो उसका पक्का माल वहीं तैयार हो और अपने गाँव के इस्तेमाल करने से जो बच जाय, उतना ही बाहर जाय——इस आधार पर सारा आयोजन हो, इस तरफ अब हमें मुड़ना चाहिए। इसके लिए चाहे गांधी-आश्रम हो, बिहार खादी-ग्रामोद्योग-संघ हो अथवा सरकार की संस्थाएँ हों, सबसे निवेदन है कि इस दृष्टिबिन्दु की ओर उनका ध्यान जाना चाहिए। हम-आप यह संकल्प करें कि हम अपने काम में ऐसी शक्ति पैदा करेंगे, जिससे देश की दिशा बदल जाय और सरकार को भी हमारे मार्ग का अनुसरण करने को विवश होना पड़ जाय।

अन्त में इतना निवेदन आपसे कर देना चाहता हूँ कि हम यहाँ से जायँ, तो अन्तःकरण की शुद्ध निष्ठा को दृढ़ करके लौटें——चाहे हम आंशिक समय देनेवाले या पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता हों। हम सातत्य भावना और सत्यनिष्ठा से हमारे संकल्प को पूरा करने में जितनी शक्ति लगा सकते हों, लगायें, तो ग्रामराज्य का जो हमारा संकल्प है, हमारा दृढ़ विश्वास है कि हम '५७ तक पूरा कर सकेंगे।

(अधिवेशन स्थगित ५-५५)

[शाम को नित्य की तरह सार्वजनिक प्रार्थना और विनोबा का प्रवचन]

मंगलवार २९ मई, १९५६ : सुबह ९ बजे

खुला अधिवेशन

श्री वल्लभ स्वामी :

सम्मेलन के अंगभूत ग्रामरचना, संपत्तिदान, रचनात्मक संस्थाओं का भूदान में सहयोग, सर्वोदय-योजना और शहरों में काम आदि विषयों के लिए चर्चा-

मंडल कायम किये गये थे। उनकी रिपोर्ट अब पेश की जायँगी। इन विषयों की चर्चा काफी हुई, उसके लिए विभागीय बैठकें हुईं। पर्याप्त चर्चा के बाद ही ये निवेदन तैयार किये गये हैं। यहाँ अब भाषणों के लिए मौका नहीं है। फिर भी थोड़े समय में कोई खास बात कहनी हो, तो कही जा सकती है।

श्री करणभाई :

ग्राम-रचना और ग्राम-निर्माण

भूदान-आन्दोलन का प्रारम्भ एक विशेष परिस्थिति में हुआ। पाँच साल के इस अल्प काल में ही इस आंदोलन ने देश और दुनिया के सामने एक नया दृश्य उपस्थित किया है। सर्वोदय की दृष्टि से अहिंसक समाज-रचना सम्भव है एवं शासनमुक्त और शोषणहीन समाज-रचना हो सकती है, ऐसी निष्ठा इस आन्दोलन के फलस्वरूप पैदा हो गयी है। पहले भूमिहीनों को जमीन मिली। फलतः बहुत से ऐसे गाँव हमारे देश में हो गये हैं, जहाँ अब कोई भी भूमिहीन नहीं रहा। ऐसे गाँवों में आज कुछ मात्रा में प्रेम और करुणा का वातावरण है। हजारों एकड़ के बड़े-बड़े भूखण्ड मिले, जहाँ नये नमूने के गाँव बसाये जा सकते हैं। ऐसे स्थानों में तो पूरी रचना का सही चित्र उपस्थित किया जा सकता है। भूदान का आदर्श और अद्भुत क्रांतिकारी रूप तो समग्र ग्रामदान ने उपस्थित किया है। गाँव के गाँव ऐसे मिले, जहाँ के सभी भूमि-मालिकों ने अपनी सारी-की-सारी जमीन दान में दे दी है, अपनी-अपनी व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन कर दिया है। ऐसे गाँव में ग्रामराज्य का सही चित्र पेश किया जा सकेगा, ऐसी सम्भावना पैदा हो गयी है।

इसके अलावा सारे देश में रचनात्मक संस्थाएँ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक काम कर रही हैं। भिन्न-भिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। जहाँ कार्यकर्ता हैं, गाँव में कुछ भावना है, ऐसे गाँव में भी आज भूदान-यज्ञ का सही आदर्श उपस्थित किया जा सकता है। निम्न चार प्रकार के क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ ग्राम-निर्माण का कार्य कर ग्राम-राज्य का स्पष्ट चित्र उपस्थित करने का सुयोग प्राप्त हो गया है।

१. ग्रामदानी गाँव—जहाँ "सबै भूमि गोपाल की" इस सिद्धान्त को गाँव-वालों ने मान लिया है और अपनी सारी जमीन दान में दे दी है।

२. बड़े-बड़े भूखण्ड—सौ से लेकर हजार-हजार एकड़ के बड़े-बड़े खण्ड हैं, जहाँ नये सिरे से गाँव बसाना है।

३. ऐसे गाँव—जहाँ भूदान-यज्ञ के कारण कोई भूमिहीन नहीं रहा है।

४. रचनात्मक केन्द्र—जहाँ भूदान का काम तो नहीं हुआ है, पर अर्से से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, कार्यकर्ता बैठे हैं, रचनात्मक काम का असर है और एक वातावरण तैयार है, जिसमें रचनात्मक कार्य के द्वारा मालकियत का विसर्जन कर ग्रामराज्य की स्थापना का प्रयत्न हो सकता है।

ऐसे चारों प्रकार के गाँवों में ग्राम-निर्माण का काम किस प्रकार हो ? भूमि-व्यवस्था, ग्राम-व्यवस्था, उद्योग, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा, सबका नियोजन ऐसा हो, जिसमें शोषण-रहित समाज की सही व्यवस्था प्रतिबिम्बित हो।

ग्राम-व्यवस्था—यह पहला प्रश्न है। गाँववालों को ही सब काम करना है। उन्हें ही अपनी समस्याएँ समझना और हल निकालना है, इसलिए गाँव के सभी बालिग स्त्री-पुरुष मिलकर सर्वानुमति से एक समिति बनायेंगे। अच्छा हो, उसका नाम "ग्रामोदय-समिति" हो। इस समिति की एक कार्यकारिणी सभा हो सकती है। जो भी काम इस गाँव में हो, वह यह समिति ही करे। सलाह सर्व-सेवा-संघ दे, पर वह भी इस प्रकार, जिसम उनकी स्वयं प्रेरणा, व्यवस्था-शक्ति और जिम्मेवारी जाग्रत हो।

गाँव का पूरा चित्र—गाँव की सारी जानकारी और सर्वेक्षण पहले कर लेना चाहिए, जिसमें गाँव का सही चित्र हमारे सामने रहे। यह ग्रामोदय-समिति का पहला काम होगा।

भूमि-व्यवस्था—भूमि-व्यवस्था किस प्रकार हो ? ग्रामदानी गाँव तथा बड़े-बड़े भूखण्डवाले गाँवों में तो सारी भूमि ग्राम-समाज की होगी। उसकी व्यवस्था ग्रामोदय-समिति करेगी। खेती करने के लिए हरएक परिवार को उसके व्यक्तियों की संख्या के अनुपात में जमीन जोतने को दी जायगी। सामान्यतः हरएक परिवार को जमीन की किस्म का ध्यान रखकर जमीन दी जायगी।

ग्रामदान में जहाँ जमीन का बँटवारा हुआ है, वहाँ ग्रामसभा अक्सर उन लोगों को अधिक जमीन देना चाहती है, जिन्होंने बहुत ज्यादा दान दिया है। इस बात का ध्यान रखा जाय कि उन्हें अनुपात से बहुत अधिक न मिले।

हर दसवें साल पुनर्विचार होगा, जमीन की पुनर्व्यवस्था की जायगी। जमीन का सरकारी लगान गाँव-समिति देगी। गाँव में कारीगर-वर्ग हो और कारीगरी से उसका गुजारा चलता हो, तो अनुपात में उसे कम जमीन मिलेगी। धीरे-धीरे हर परिवार कोई-न-कोई उद्योग भी करे। इस तरह गाँव में 'मल्टिक्राफ्ट अँग्रो-इकॉनॉमी' (विविध उद्योगयुक्त कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था) ही आधार हो।

खेती व्यक्ति की, खेत समाज का, नीति सहकारिता की।

सामान्यतः गाँव की कुल जमीन का दसवाँ हिस्सा सामूहिक उपयोग के लिए रखा जाय, जिसमें सामुदायिक खेती की व्यवस्था हो। उसे इस प्रकार कमाया (डेवलप किया) जाय, जिसमें धीरे-धीरे गाँव के सामूहिक काम उसीके उत्पादन से पूरे हों।

बड़े-बड़े भूखण्डों में जो नये गाँव बसाये जायँगे, उनमें भी भूमि-व्यवस्था इन्हीं तत्त्वों के अनुसार होगी। इस बात का ध्यान रखें कि बाग-बगीचे के लिए भी पूरी व्यवस्था हो, जिसमें तरह-तरह के दवा-दारू के पौधे भी उगाये जायँ। जब तक सामुदायिक खेती के उत्पादन से गाँव का सामूहिक काम न चलने लगे, तब तक हरएक परिवार उत्पादन का छठा या दसवाँ हिस्सा गांव-समिति को दे।

जहाँ भूमिहीन नहीं रहा, वहाँ सामुदायिक रूप से खेती की साझेदारी का कार्यक्रम हाथ में लिया जा सकता है और उसके लिए श्रमदान, साधनदान, सम्पत्तिदान का आयोजन किया जा सकता है। इसके अलावा ग्राम-उद्योगों के संयोजन के लिए भी वहाँ अवसर हो सकता है। ऐसा प्रयास हो, जिससे सामुदायिक शक्ति का विकास हो और लोग निजी मालकियत का विसर्जन तत्परता से करें।

जहाँ रचनात्मक कार्य चल रहे हैं, वहाँ ऐसा प्रयास हो कि ग्रामोदय-समिति द्वारा सामूहिक रूप से सारी समस्याओं का समाधान सोचा जाय। कोई भूमिहीन न रहे और सामुदायिक शक्ति का विकास करते हुए मालकियत का विसर्जन हो।

पंचायत ही क्रॉप-प्लॉनिंग (फसलों का संयोजन) करे। गाँव की आवश्यकता को देखते हुए कौन-सी उपज का आयोजन किस तरह किया जाय, यह गाँव-समाज निर्धारित करे। इस वात का ध्यान रखें कि व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ समूचे गाँव की आर्थिक स्वयंपूर्णता के लिए आवश्यक कच्चे माल का उत्पादन हो। लोगों की दृष्टि मनी-क्रॉप (व्यापारी फ़सलों) की तरफ न जाकर ग्राम-आवश्यकता की तरफ ही रहे। सारा संयोजन ग्रामोदय-समिति करे।

भूमि-सुधार—अभी जो जमीन निःसहाय है, उसकी तनिक भी परवाह नहीं की गयी है। वाँध बाँधना, समतल करना, मेंड़ लगाना, उतार-चढ़ाव ठीक करना, नयी जमीन तोड़ना, कटाव रोकना और वृक्षारोपण—ये सारे काम भूमि-सुधार में शामिल हैं। ये सारे काम गाँव की जन-शक्ति का अधिक-से-अधिक उपयोग कर किये जाने चाहिए। इसमें सरकारी सहायता भी लेने का पूरा प्रयास हो।

साथ ही सिंचाई के लिए तालाव, कुएँ खोदना, छोटे-छोटे वाँध वनाना तथा नालों को मोड़ना आदि की योजना ग्रामोदय-समिति करे।

कर्ज—गाँव में कर्ज की समस्या का रूप भयानक है। फौरन इसका कोई हल नहीं निकल पाता। प्रयास इस बात का हो कि महाजन लोग ऋण-दान के रूप में कर्जमुक्ति दें। तव तक उसे व्यक्ति-कर्ज ही माना जाय।

हमारा प्रयास हो कि हर परिवार की शक्ति वढ़े और धीरे-धीरे इतनी क्षमता प्राप्त हो कि उनका पहले का कर्ज मिटे। महाजनों से तो ऋण-मुक्ति का दान लिया जाय, पर साथ-साथ दूसरी तरफ से ऐसा प्रयास हो कि ऋणी अपना कर्ज अदा करें और वह रकम गाँव-समाज की पूँजी वने।

कर्ज की समस्या इतनी वड़ी है कि पीछे का कुछ है ही नहीं, ऐसा ही मानकर प्रारम्भ में चलना पड़ेगा। हाँ, भविष्य में सामुदायिक तथा व्यक्तिगत शान्ति-क्षमता के विकास के लिए तथा और सुधार के लिए Rural Credit Facility (ग्रामीणों को कर्ज देने की सुविधाएँ) करनी पड़ेंगी।

Credit Agency (कर्ज देने की व्यवस्था) सहकारिता के आधार पर ही हो। Co-operative Credit Bank (सहयोगी वैंकों) के द्वारा ही Credit

(कर्ज) दिया जाय। ग्राम-सुधार बैंक बनाये जायँ और हर छोटी-छोटी बचत इसमें जमा हो, ताकि एक सामूहिक पूँजी बन सके।

सहकारी-समिति तथा भंडार—ग्रामोदय-समिति सहकारी-भंडार की स्थापना करे और सारी खरीद-बिक्री इस सहकारी-भंडार द्वारा ही हो। गाँव का कोई भी व्यापार व्यक्तिगत रूप से न होकर सहकारी-भंडार के द्वारा ही हो, यह ग्रामोदय-समिति का अत्यन्त आवश्यक और प्राथमिक महत्त्व का काम होना चाहिए। गाँव के सारे काम सहकारिता के आधार पर हों।

खादी-ग्रामोद्योग—हमारा उद्देश्य Multicraft Agro-Economy (विविध उद्योगयुक्त कृषिप्रधान अर्थ-व्यवस्था) है। हमारी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तो ग्रामोद्योग के द्वारा होनी ही है। साथ ही ऐसा पक्का माल, जिसकी आवश्यकता गाँव में है, उसके कच्चे माल का उत्पादन तथा ग्रामोद्योग के द्वारा पक्का माल तैयार करने का आयोजन हो।

शिक्षा—भूदान-यज्ञ-आंदोलन नवसमाज-रचना का काम है। सारी रचना का आधार ही तालीम है। इसलिए सारी नींव ही नयी तालीम होगी। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी ग्रामवासी नव-समाज-रचना के अंग होंगे और समग्र नयी तालीम का आयोजन होगा। भूमि-सुधार, सिंचाई, ग्राम-व्यवस्था, ग्रामोद्योग, स्वास्थ्य, सफाई, सभी जीवन-शिक्षा के अंग ही हैं। बुनियाद में ही परिवर्तन करना है। इसलिए बुनियादी तालीम और समग्र नयी तालीम ही हमारा आधार होगा।

स्वास्थ्य और सफाई—इसकी व्यवस्था ऐसे आधार पर करनी होगी, जिसमें सारे गाँव के जीवन में परिवर्तन हो। सफाई जीवन का अंग बने। बुनियादी-शाला उसका केन्द्र हो। बाग-बगीचे में आवश्यक दवाई के पौधे लगाये जायँ और सारी योजना इस प्रकार हो कि बीमारी ही न आये। शाला के शिक्षक ही ग्राम के वैद्य हों। एक-दो बहनों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जो मिडवायफरी (धाय) का काम कर सकें और उसके आवश्यक उपकरण ग्रामोदय-समिति के पास हों। ग्राम-सफाई का आयोजन ग्रामोदय-समिति करे।

कार्यकर्ता-प्रशिक्षण—उपर्युक्त सारे कामों का आयोजन करने के लिए हमें खेती, गोपालन, खादी, विभिन्न ग्रामोद्योग आदि के विशेषज्ञ अच्छे कार्यकर्ता

चाहिए। साथ ही ओवरसीयर, इंजीनियर भी चाहिए। ऐसे कार्यकर्ताओं को तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। इसकी योजना बनाकर सर्व-सेवा-संघ को यह काम फौरन अपने हाथ में लेना चाहिए।

सर्वेक्षण और गवेषण—जो निर्माण के काम चल रहे हैं, उनके कामों का निरीक्षण-परीक्षण और उसका सही मूल्यांकन हो, इसकी अभी हमारे पास कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसी व्यवस्था हो, जिसमें पैमाइश, खोज-बीन और जाँच-पड़ताल का काम भी साथ-साथ चले।

श्री वैद्यनाथप्रसाद चौधरी :

संपत्तिदान-यज्ञ

संपत्ति-दान की जो चालू पद्धति है, उसमें निम्नलिखित अतिरिक्त सुझाव चर्चा-मंडल की ओर से पेश किये जाते हैं :

१. जो दान मासिक या वार्षिक के रूप में दाता की हैसियत के अनुसार हर साल प्राप्त हो, उसे सम्पत्ति-दान माना जाय। जो दान एकमुश्त या किसी विशेष कार्य के लिए प्राप्त हो, उसे साधन-दान गिना जाय।

२. किसानों से सम्पत्तिदान प्राप्त करने के लिए उनकी उपज के निम्न-लिखित अंश की माँग की जानी चाहिए :

(क) वर्ष में पचास मन तक उपजवाले किसान से प्रति मन आधा सेर अर्थात् ८०वाँ हिस्सा।

(ख) वर्ष में ५० मन से अधिक १५० मन तक की उपजवाले से प्रति मन १ सेर अर्थात् ४० वाँ हिस्सा।

(ग) वर्ष में १५० मन से अधिक २५० मन तक की उपजवाले से प्रति मन १॥ सेर और उससे ऊपर प्रति १०० मन पर आधा सेर बढ़ाकर पहले कदम के तौर पर छठ हिस्से के परिमाण तक पहुँचना चाहिए।

३. खेतिहर मजदूरों से महीने में कम से कम आधे दिन की मजदूरी की माँग की जाय।

४. विद्यार्थियों से तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से उनको निर्वाह के लिए

मिलनेवाली रकम के अनुपात से जितना अंश वे सम्पत्तिदान में देना चाहें, उतने मूल्य का सूत देने की सुविधा भी रहे।

५. जिस गाँव या क्षेत्र में ५ या ५ से अधिक दाता हों, वहाँ सम्पत्तिदान-यज्ञ के संचालन, उसे बढ़ावा देने तथा प्राप्त दान के विनियोग में दाता की मदद के लिए दाताओं की समिति का संगठन किया जाय।

६. दाता को सम्पत्तिदान के विनियोग के सम्बन्ध में जानकारी रहे, इस दृष्टि से जिससे दानपत्र प्राप्त किया जाय, उन सभी दाताओं को विनियोग के नियमों की जानकारी के पर्चे दिये जायँ।

७. अगर कोई दाता अपनी आय में से धर्मादाय या चैरिटी ट्रस्ट के नाम से सम्पत्तिदान के अनुपात में निकालता है और सम्पत्तिदान के नियम के अनुसार कम-से-कम एक-तिहाई विनियोग करना स्वीकार कर सम्पत्तिदान का दानपत्र देता है, तो उसे मान्य किया जाना चाहिए।

८. जिस दाता के पास भूमि हो और अब तक भूदान न दिया हो, लेकिन भूदान देने का विचार कर रहा हो; ऐसे दाता यदि सम्पत्तिदान से ही दान देना प्रारम्भ करें, तो उसे मान्य किया जाना चाहिए। परन्तु भूमि रहते हुए जो दाता भूदान देना अस्वीकार करें, उनका सम्पत्तिदान स्वीकार न किया जाय।

९. जिस प्रकार व्यक्ति अपनी आय पर सम्पत्तिदान देते हैं, उसी प्रकार कोई संस्था भी अपनी आय पर सम्पत्तिदान दे सकती है।

१०. यदि कोई दाता भूदान-कार्य के लिए यात्रा करता है और इस सफरखर्च को अपने सम्पत्तिदान से व्यय करना चाहता है, तो वह वैसा कर सकता है।

११. साधनदान में खेती के साधन के अतिरिक्त ग्रामोद्योग के साधन भी जोड़ दिये जायँ।

१२. संपत्तिदान की रकम का पूंजी के रूप में संग्रह नहीं किया जाना चाहिए।

१३. साहित्य-प्रचार में सर्व-सेवा-संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य के सिवा गांधी और विनोबा-साहित्य भी जोड़ दिया जाय।

श्री विचित्रनारायण शर्मा :

रचनात्मक संस्थाओं का भूदान में योग

"भूदान-आन्दोलन में रचनात्मक संस्थाओं का योगदान" इस विषय पर चर्चा-मंडल की बैठक ता० २५ मई '५६ को सायंकाल ८ बजे प्रारम्भ हुई। करीब ढाई घंटे विचार-विमर्श होने के बाद बैठक दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गयी। ता० २६ को प्रातः ९ से ११ बजे तक बैठक हुई और फिर अंतिम बार ता० २७ को प्रातः ८ से ९॥ बजे तक हुई। पहले दिन की चर्चा में सर्वश्री अप्पासाहब पटवर्धन, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, लाला अचिंतराम, डा० गोपीचंद भार्गव, नारायण देसाई तथा मनमोहन चौधरी ने विशेष रूप से भाग लिया। इन सज्जनों में से अधिकांश दूसरे दिन भी चर्चा में शरीक हुए और दूसरे भाइयों ने भी विचार-विनिमय में भाग लिया। इन सब चर्चाओं का तफसीलवार विवरण देना कठिन है, लेकिन उसका सारांश नीचे दिया जा रहा है।

पहले दिन की चर्चा आम तौर से सैद्धांतिक तथा मौलिक धारणाओं को सामने रखकर हुई और इस बात पर विचार किया गया कि यह सारी प्रवृत्तियाँ मूल में एक ही हैं और इन सबका मुख्य उद्देश्य एक अहिंसक समाज की रचना करना है, जिसे दूसरे शब्दों में सर्वोदय-समाज भी कह सकते हैं। इसलिए ये प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे की विरोधी न होकर पूरक हैं। यह बात अक्सर भुला दी जाती है, इससे परस्पर में कभी-कभी विरोध और अविश्वास का दर्शन भी हो जाता है। इसलिए यह बात इतनी महत्त्व की नहीं है कि हम कौन-सी रचनात्मक प्रवृत्ति हाथ में लेते हैं, बल्कि यह बात अधिक महत्त्व की है कि हम किस वृत्ति से उस कार्य का संपादन करते हैं। हमारा सबसे बड़ा कार्य इन प्रवृत्तियों के पीछे जो क्रांतिकारी विचारधारा छिपी हुई है, उसे अपने तथा जनता के सामने स्पष्ट रूप से रखना ही है। इस दृष्टि से रचनात्मक संस्थाओं को उत्तरोत्तर भूदान-मूलक होना होगा और भूदान-कार्यकर्ताओं को अधिक-से-अधिक इन रचनात्मक प्रवृत्तियों को अपने कार्य-क्रम का मुख्य अंग बनाना होगा। इस पृष्ठभूमि को सामने रखते हुए और इस बात के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कि करोड़ों भूमिहीनों को स्वतंत्र आजीविका का साधन जुटा देना भी एक महान् रचनात्मक काम है, यह आवश्यक

समझा गया कि इस दिशा में रचनात्मक संस्थाएँ जो अधिक-से-अधिक कर सकती हैं, उसका प्रयत्न करें। गांधीजी के समय में रचनात्मक प्रवृत्तियों को स्वराज्य-प्राप्ति का साधन होने के कारण बल तथा तेज मिला। खास-खास मौकों पर रचनात्मक संस्थाओं ने अपने साधारण कार्यक्रमों को छोड़कर भी आन्दोलन में भाग लिया। इधर हाल में भी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में पूज्य विनोबाजी की भूदान-यात्रा के समय में रचनात्मक संस्थाओं ने पदयात्रा की प्रायः सारी व्यवस्था करने का भार अपने ऊपर लिया। सन् '५७ का ध्यान रखते हुए उस प्रवृत्ति को फिर जाग्रत करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से निम्न सुझाव उपस्थित किये जा रहे हैं और यह आशा की जाती है कि जहाँ तक संभव हो, उनके मुताबिक अधिक-से-अधिक आचरण किया जायगा। इनके अलावा भी संस्थाएँ जो कर सकें, उसकी उनसे अपेक्षा की जाती है।

(१) रचनात्मक संस्थाएँ अपने प्रमुख कार्यकर्ताओं को यथासंभव पूर्णतः भूदान-कार्य के लिए मुक्त कर दें। यदि यह संभव न हो, तो अधिक-से-अधिक समय वे भूदान के लिए दें, ऐसी व्यवस्था करें।

(२) संस्थाओं की जो शाखाएँ, शहरों, कस्बों या जिलों अथवा तहसीलों में हैं, उनके प्रमुख कार्यकर्ता भी महीने में संभव हो, तो १५ दिन; नहीं तो कम-से-कम एक सप्ताह भूदान-कार्य में लगायें।

(३) संस्थाओं को चाहिए कि वे अपने कुल कार्यकर्ताओं का षष्ठांश भाग अथवा इससे कम या अधिक जहाँ तक संभव हो, सन् '५७ तक के लिए पूरा समय भूदान में देने के लिए मुक्त करें और इसके लिए आवश्यक सुविधाएँ उन्हें प्रदान करें।

(४) संस्थाओं की छोटी शाखाएँ तथा ट्रेनिंग के लिए आये हुए कार्यकर्ता सप्ताह में एक या दो दिन भूदान में भाग ले सकें, ऐसी सुविधा होनी चाहिए।

(५) किसी संस्था के क्षेत्र में भूदान में यदि पूरे गाँव मिले हों अथवा भूदान की भूमि पर नये गाँव बसाये जा रहे हों, तो वहाँ खादी और ग्रामोद्योग वगैरह के विकास-कार्यों की पूरी जिम्मेदारी संस्थाएँ अपने ऊपर लें।

(६) संस्थाएँ अपने क्षेत्र के गाँवों को समग्र ग्रामदान के लिए तैयार कर दें। खादी तथा ग्रामोद्योग-विस्तार आदि की दृष्टि से सर्वे कराने की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर लें।

(७) संस्थाएँ अपनी शाखाओं-उपशाखाओं में भूदान-साहित्य बिक्री के लिए रखें। विशेष प्रचारक या विक्रेता रखकर प्रचार करवायें। भूदान-पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक बनाने का काम करें। संस्था के कार्यकर्ता यदि साहित्य-बिक्री का काम अतिरिक्त समय में करना चाहें, तो अमुक मूल्य का साहित्य बिक्री के लिए उन्हें उधार देने की व्यवस्था करें।

(८) संस्थाओं में भूदान-साहित्य के चिंतन, मनन, स्वाध्याय के लिए सुविधा हो, अर्थात् ऐसे साहित्य के छोटे पुस्तकालय हों, भूदान-पत्र उसमें मँगाये जायँ तथा साप्ताहिक या मासिक चर्चा-मंडल, चर्चा-केंद्र या अध्ययन-केंद्र चलायें। इनमें कार्यकर्ताओं के अलावा अन्य नागरिकों को भी समय-समय पर आमंत्रित करें। इस साहित्य और उसके विचार-आंदोलन में उनमें रुचि उत्पन्न की जाय।

(९) संस्थाओं के कार्यकर्ता स्वयं भी भूदान, संपत्तिदान, श्रमदान, बुद्धि-दान दें।

(१०) संस्थाओं के कार्यकर्ता वस्त्र और भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामोद्योग की वस्तुओं का व्यवहार तथा मिलोद्योगी वस्तुओं के बहिष्कार का संकल्प करें।

(११) संस्थाएँ ग्राहकों को इसके लिए राजी करने का प्रयत्न करें कि खादी, चर्मोद्योग, घानी-तेल आदि का जो नकद कमीशन मिलता है, उसे नकद न लेकर उसके एवज में भूदान-साहित्य खरीदें।

(१२) संस्थाएँ अपने लेटर-हेड, रसीद-बुक, लिफाफे तथा पत्र आदि पर भूदान-विचार संबंधी नारे, वाक्यांश छपायें या उनकी रबर-मोहर लगायें।

(१३) संस्थाएँ प्रतिवर्ष सूतांजलि को अपना विशेष कार्यक्रम बनायें। खादी-संस्थाओं का तो यह आज भी विशेष कार्यक्रम है। पर उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे इस पर और भी जोर दें। दूसरी संस्थाओं से भी यह आशा की जाती है कि वे भी इसमें सहयोग दें।

(१४) संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की ओर से सूतदान का एक रूप यह भी हो सकता है कि वे आंदोलन के लिए स्वयं आधी गुण्डी प्रतिदिन सूत-यज्ञ करें और उसकी रकम या गुण्डी भूदान-कोष में दें।

(१५) भूदान-कार्यकर्ताओं की खादी तथा ग्रामोद्योग वगैरह के शिक्षण की जिम्मेवारी संस्थाएँ अपने ऊपर लें।

(१६) गांधी-जयंती, भू-क्रांति-दिवस, विनोबा-जयंती आदि मुख्य अवसरों पर संस्थाएँ पदयात्रा, विचार-सभा, घर-घर पहुँचकर दानपत्र भरवाना तथा साहित्य-बिक्री करना आदि का विशेष आयोजन करें, अन्य अवसरों पर ऐसे विशेष व्यक्तियों के भूदान-दौरे आदि के कार्यक्रम मिल-जुलकर बनायें और उन्हें सफल बनाने का प्रयत्न करें।

उपर्युक्त सुझावों के अलावा और भी कार्यक्रम संस्थाएँ सोच और ढूँढ़कर निकाल सकती हैं। भूदान और रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सारी दृष्टि भूदान-मूलक और रचनात्मक संस्थाओं को नयी क्रांति का वाहन रूप बनाने की है।

जिन भाइयों ने इस चर्चा-मंडल में भाग लेकर तथा अपने सुझाव देकर योगदान दिया, उनका मैं आभारी हूँ और यह आशा करता हूँ कि चर्चा का जो सार ऊपर दिया है, उससे क्रांति को व्यापक बनाने और आगे बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

श्री मणीन्द्रकुमार घोष :

सर्वोदय की दृष्टि से मजदूर-आन्दोलन कैसे हो ?

चर्चा के दौरान में यह मत प्रकट किया गया कि औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूर-आंदोलन परस्पर मालिक-मजदूर-विरोध पर आधारित है। इस विरोधयुक्त दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन लाकर मेल-जोल का वातावरण पैदा करना होगा।

श्री खंडूभाई देसाई ने इधर साझेदारी का सुझाव रखते हुए कहा है कि मजदूर-मालिक को उद्योग में साझेदारी की भावना से काम करना चाहिए। इस पर अमल करने से मजदूरों एवं मालिकों में संघर्ष करने की भावना दूर होगी, क्योंकि वे लोग उस समय एक ही स्वार्थ से उद्योग की तरक्की के दृष्टिकोण से सोचेंगे।

इतना ही काफी न होगा। इस संघर्ष में एक तीसरा पक्ष भी है, उपभोक्ता। मजदूर एवं मालिक साझेदारी पर चलकर उपभोक्ताओं का शोषण आसानी से करने का प्रयत्न करेंगे। अतएव हम लोगों को कोई ऐसा उपाय निकालना होगा, जिससे सारे संघर्षों के कारणों की समाप्ति हो—साथ-ही-साथ मजदूरों और मालिकों के भी।

गांधीजी हम लोगों को एक राह दिखा गये हैं। उनकी राय थी कि मालिक अपनी उच्चता के कारण स्वयं को मजदूरों के ट्रस्टी समझें। समय आ गया है कि अब यह भी काफी नहीं होगा। मालिक और मजदूर, दोनों अपने को करोड़ों गरीबों की आवश्यक वस्तुओं को देते रहने के जिम्मेवार समझें। ट्रस्टीशिप का यह नया पहलू होगा। यह (विचार) परिवर्तन सभीको सोचने के लिए वाध्य करेगा और आम लोगों के हितों के लिए काम करने की प्रेरणा देगा।

इस विचार को आरंभ करने के लिए निम्न कार्यक्रम सुझाया जाता है:

१. विचार-प्रचार (ट्रस्टीशिप से संबंधित)
२. मजदूरों एवं मालिकों में भूदान, संपत्तिदान, श्रमदान तथा बुद्धिदान के के लिए रुचि पैदा करना।
३. सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाकर धन को तथा व्यवस्थापकों को उत्पादक श्रम की ओर मोड़ना। उद्योग में प्रत्येक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ उत्पादक परिश्रम करना ही चाहिए—जैसे कि कातना, बागवानी तथा घरेलू कार्य।
४. इस प्रकार का प्रयत्न करना कि मजदूर बुद्धि-कार्य तथा व्यवस्था में भाग लें तथा दूसरी ओर सुपरवाइजर श्रम-कार्य करें।
५. ग्राम-अर्थ-व्यवस्था की सहायता करना तथा उसे प्रोत्साहन देना, प्रत्येक व्यक्ति का खादी एवं ग्रामोद्योग वस्तुओं को व्यवहार में लाना और औद्योगिक मजदूरों तथा ग्रामीण किसानों में भाईचारे का संबंध कायम करना।

श्री जयप्रकाशजी ने एक और कार्य व्यवहार में लाने का निम्नलिखित सुझाव दिया:

इस प्रकार का प्रयत्न करना कि मजदूरों में सामूहिक रहन-सहन का

भाव पैदा हो। सारी आमदनी का सामूहिक फंड बनाना और प्रति परिवार के व्यक्तियों की संख्या के आधार पर आवश्यकतानुसार बँटवारा करना।

श्री मनोहर मेहता (अहमदाबाद) ने इस पर कठिनाई प्रकट की और कहा कि मालिकों का रवैया मजदूरों के प्रति असंतोषजनक है। वे ट्रस्टी के रूप में प्रत्यक्ष व्यवहार करेंगे, ऐसी अपेक्षा रखना कठिन है।

श्री जयप्रकाशजी ने राय दी कि यदि हम लोग मजदूरों के विचारों को जनता की भलाई की ओर बदलें, तब हम लोग इस हालत में रहेंगे कि मालिकों को भी इस तरह का दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। यदि मालिक न बदलें, तो मजदूर उन उद्योगों में काम करने से इनकार कर देंगे और इस तरह वे अपनी बात मानने के लिए मालिकों को बाध्य कर सकते हैं।

अंत में यह सोचा गया कि यह अच्छा होगा कि मजदूर-आंदोलन के कार्यकर्ताओं की, जिनका कि सर्वोदय पर विश्वास है, मीटिंग बुलायी जाय और उसमें इस पर विचारकर इसके लिए भूमिका तैयार की जाय।

इस चर्चा में श्री जयप्रकाशजी, श्री धीरेंद्र भाई, श्री करण भाई, श्री अण्णासाहब आदि ने भी भाग लिया।

श्री रवीन्द्र वर्मा :

सर्वोदय-योजना की रूपरेखा

योजना-चर्चा-मंडल की कुल दो बैठकें हुईं। समय के अभाव में मंडल ने मुख्य रूप से योजना के दो अंगों पर अपना विचार प्रकट किया। उसके निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

१. पहला प्रश्न यह उठाया गया कि क्या सर्वोदय और योजना, दोनों में मेल बैठ सकता है? अनेक दृष्टियों से इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् मंडल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सर्वोदय और योजना, दो विरोधी वस्तुएँ नहीं हैं। हम जीवन और प्रकृति में चारों ओर एक प्रकार की व्यवस्था पाते हैं। प्रकृति अपने में स्वयं योजनानिष्ठ है। इस योजना का तारतम्य टूटा नहीं कि प्रकृति उग्र रूप धारण कर लेती है। उसी प्रकार जीवन में भी योजना की आवश्यकता होती

है। बिना किसी व्यवस्था और योजना के जीवन में अराजकता आ जाती है। फलत: जीवन का पूर्ण और सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो पाता। उसकी उत्तरोत्तर प्रगति अवरुद्ध हो जाती है और अन्त में वह एकांगी और विकृत हो जाता है। जो बात व्यक्तिगत जीवन के लिए लागू है, वही सामाजिक जीवन पर भी समान रूप से घटित होती है। अगर सामाजिक जीवन का समग्र एवं संश्लिष्ट विकास होना है, तो उसके लिए एक योजना अवश्य ही चाहिए।

सर्वोदय और योजना में असंगति नहीं

सर्वोदय सामाजिक जीवन का एक आदर्श है। वह सामाजिक जीवन का इस प्रकार संगठन एवं संवर्धन करना चाहता है कि समाज में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का पूर्ण साधन उपलब्ध हो सके। अतएव ऐसे समाज में, जिसका लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास है, एक व्यापक एवं बुनियादी योजना की आवश्यकता होगी ही। इस तरह सर्वोदय और योजना में कोई असंगति नहीं, बल्कि एक मूलगामी योजना पर ही सर्वोदय-समाज का भवन खड़ा किया जा सकता है।

योजना कई तरह की हो सकती है। एक योजना ऐसी होती है, जिसकी जड़ें सत्ता, केंद्रीकरण और मजदूरशाही में निहित होती हैं। फलत: उसका स्वरूप सर्व-सत्तावादी (Totalitarian) हो जाता है। लेकिन एक योजना ऐसी भी होती है, जो पूर्णरूप से जनतंत्रात्मक हो और जो लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता और अभिक्रम (Initiative) का अवसर प्रदान करें और जिसमें केन्द्रीकरण नहीं हो, ऐसी योजना सर्वोदयी हो सकती है।

सर्वोदयी-योजना के लक्ष्य

स्पष्ट है कि इस प्रकार की समाज-रचना के लिए जिस योजना की अपेक्षा होगी, उसके कुछ तात्कालिक लक्ष्य होंगे। इस प्रकार मंडल ने एक बार योजना की अहमियत महसूस करके उसके लक्ष्यों पर भी विचार किया। वे इस प्रकार हैं:

श्रम द्वारा आत्माभिव्यक्ति

(अ) मंडल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उपर्युक्त प्रकार की समाज-रचना के लिए यह जरूरी है कि समाज में सभी लोगों को काम मिले। अर्थात् समाज में

कोई व्यक्ति विना काम के न रहे। प्रत्येक व्यक्ति के लिए काम—यह दृष्टिकोण सर्वोदय-विचार में अत्यन्त महत्त्व का है। वास्तव में सर्वोदय की सारी विचार-धारा ही "काम" या दूसरे शब्दों में "श्रम" पर आधारित है। सर्वोदय के अनुसार श्रम स्वयं एक कर्तव्य है। समाज में मनुष्य वस्तुतः कर्तव्यसहित उत्पन्न होता है। वह समाज से अपने जीवन-संयोजन के लिए अनेकानेक साधन प्राप्त करता है। अतएव समाज के प्रति उसका एक जन्मजात कर्तव्य हो जाता है। इसलिए वह काम या श्रम द्वारा समाज के ऋण से उऋण होता है। श्रम या काम उसका समाज के प्रति कर्तव्य है। दूसरी एक दृष्टि से भी श्रम या काम मनुष्य के लिए आवश्यक है। सर्वोदय का दृढ़ विश्वास है कि विना उद्योग या श्रम के मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्णत्व का साक्षात्कार नहीं कर पाता। उसके व्यक्तित्व की अन्तर्हित शक्तियों और संभावनाओं की पूर्णाभिव्यक्ति के लिए काम या श्रम वड़ा आवश्यक है। उसीके द्वारा वह अपनी आत्माभिव्यक्ति भी कर पाता है।

और अन्त में काम इसलिए जरूरी है कि वह उसकी जीविका का साधन है। अतएव सर्वोदय-योजना का लक्ष्य है कि:

(ब) समाज के प्रत्येक सदस्य को पूरा और संश्लिष्ट रोजगार प्राप्त हो। इसलिए सामाजिक-अर्थतन्त्र और यांत्रिक संगठन (Technology) को इस महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की पूर्ति के हेतु उत्पादन में प्रवृत्त किया जायगा। हर वयस्क में काम करने की रुचि होगी और उसे अपनी वृत्ति या पेशा चुनने की पूरी आजादी होगी। वह काम में अपनी सम्पूर्ण प्रवृत्तियों और शक्तियों को संयोजित कर सकेगा। उसके स्वाभाविक गुणों का काम में उपयोग होगा। इस तरह उद्योग द्वारा वह समाज को विभूतिमय वना सकेगा।

श्रमनिष्ठ योजना

जाहिर है कि इस प्रकार का पूरा और संश्लिष्ट रोजगार औद्योगिक उत्पादन की कोई निश्चित सीमा प्राप्त करने से सिद्ध नहीं हो सकता। वरन् उसकी सफलता के लिए तो औद्योगिक ढाँचा ही इस प्रकार का होना चाहिए कि पूरा और संश्लिष्ट रोजगार सवको मिल सके और दूसरी ओर क्षमता (Efficiency) क्षीण न हो, वल्कि क्षमता और कार्यकुशलता वढ़े। इस तरह की योजना मुख्यतया

श्रमनिष्ठ (Labour Intensive) होगी और चूंकि सर्वोदय का यह अभीष्ट है कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का केन्द्रीकरण न हो, इस तरह की रोजगारी मुख्यतया सेल्फ इंप्लॉयमेंट की होगी। फलतः इस तरह के रोजगार में मजदूर और मालिक का भेद प्रायः विलीन हो जायगा—ऐसा भेद, जिसके द्वारा मजदूर और मालिक के रिश्ते से अनेकानेक बुराइयाँ पैदा होती हैं।

विकेन्द्रित यन्त्रकला को मान्यता

परन्तु इस तरह के रोजगार की कल्पना का मतलब यह नहीं होगा कि मजदूर को पुराने औजारों से काम करना होगा। सर्वोदय का यह कदापि अर्थ नहीं कि वह समाज को बीते हुए जमाने के औजारों में गिरफ्तार रखकर एक निम्नतम जीवन-स्तर पर रखना चाहता है। वास्तव में मानव-जीवन के सर्वाङ्गीण और स्वस्थ विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसका जीवनमान बढ़े। उसे जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के अभाव से अधिक-से-अधिक मुक्ति मिले। स्पष्ट है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उत्पादन को बढ़ाना पड़ेगा। जीवनमान को बढ़ाने का यह कोई अर्थ नहीं कि आवश्यकताओं की अनियंत्रित वृद्धि हो। इसलिए इसकी सिद्धि के लिए टेक्नॉलॉजी का सहारा लेना पड़ेगा। बहुत-से लोगों का यह खयाल है कि सर्वोदय और टेक्नॉलॉजी, दोनों में एक गहरी खाई है। वस्तुतः इस तरह की कोई बात नहीं। सर्वोदय का टेक्नॉलॉजी (यंत्रकला) से कोई विरोध नहीं। ऐसी टेक्नॉलॉजी (यंत्रकला), जो मानव-शक्ति की जगह न ले, जिसके उपयोग से मनुष्य को पूरा तथा संश्लिष्ट रोजगार प्राप्त हो और उसके स्वाभाविक गुण और शक्ति का विकास हो, जिसमें मालिक-मजदूर का भेद मिट जाय और जो सम्पत्ति और स्वामित्व को प्रोत्साहन न दे, उस टेक्नॉलॉजी (यंत्रकला) का सर्वोदय स्वागत करता है। थोड़े शब्दों में, सर्वोदय हर प्रकार के विकेन्द्रित टेक्नॉलॉजी (यंत्रकला) को प्रश्रय देता है।

अतएव सर्वोदय भी टेक्नॉलॉजी (यंत्रकला) में एक बुनियादी क्रांति की कल्पना करता है। वह ऐसी टेक्नॉलॉजी होगी, जिसके द्वारा स्वावलंबन (Self-Sufficiency) बढ़ेगा। स्वावलंबन का ही आवश्यक विकास परस्परावलम्बन में होगा। स्वावलंबन का यह अर्थ नहीं कि यदि किसी क्षेत्र में किसी चीज की

कमी है, तो वह दूसरे क्षेत्र से न ले, बल्कि स्वावलंबन का मुख्य लक्ष्य यह होगा कि वह जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं में अधिकांश रूप से स्वतंत्र हो। यह इस कारण कि जहाँ जीवन की मौलिक आवश्यकताओं के लिए अन्य क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता है, वहाँ शोषण और शासन, दोनों का भय बढ़ता है। फलतः अभिक्रम लुप्त हो जाता है।

प्राकृतिक साधनों का उपयोग और पूर्ति साथ-साथ

योजना का अंतिम और महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि उत्पादन के साधन और यंत्र ऐसे हों, जो भौतिक सुखों की होड़ में प्रकृति के प्रति बर्बरता से और लूट-खसोट के साथ पेश न आयें, बल्कि उनका निर्माण इस दृष्टिकोण से किया जाय, जिससे कि सर्व-जीवन के प्रति आस्था बढ़े और सारे मानव-समाज की समृद्धि का लक्ष्य सिद्ध हो सके। तात्कालिक परंतु शंकाकुल लाभों की बलिवेदी पर शाश्वत मूल्यों की भेंट न चढ़ा दी जाय। अतएव ऐसे यंत्र और उत्पादन के औजार, जो कि केवल प्रकृति का शोषण ही करते हैं, उनका उपयोग सार्वभौम और शाश्वत उपकरणों के रूप में न किया जाय। मानव ने शताब्दियों से जिन सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन किया है, उनको दृष्टिगत करते हुए ही उत्पादन के साधनों का संयोजन होना चाहिए। प्राकृतिक साधनों का उपयोग और उनकी फिर से पूर्ति करने का प्रयास जहाँ तक संभव हो सके, साथ-साथ चलना चाहिए।

इसलिए मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अखिल जीवमात्र की रक्षा करे, जिसके द्वारा उसकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन-प्रक्रिया प्रेरित होती है। इसलिए जीवमात्र के लिए समादर ही हमारे संयोजन की आधारशिला होनी चाहिए।

इस तरह मंडल ने योजना के इन दो पहलुओं पर विचार किया। समय की कमी के कारण वह योजना के प्रत्येक पहलू पर व्यापक रूप से विचार नहीं कर सका।

वह काम सर्व-सेवा-संघ ने अपनी योजना-समिति द्वारा किया है, जिसकी रिपोर्ट "प्लानिंग फॉर सर्वोदय" के नाम से छप चुकी है।

सर्वोदय-योजना तथा राष्ट्रीय नियोजन

दूसरी पंचवर्षीय योजना का मसविदा तैयार हो चुका है तथा शीघ्र ही इसका अंतिम स्वरूप हमारे सामने आनेवाला है। सर्वोदय-विचारकों का यह कर्तव्य है कि राष्ट्रीय नियोजन के बारे में अपने विचार देश के सामने रखें। अतः सर्वोदय-सम्मेलन की ओर से नियोजन के बारे में अधिकृत रूप से सुस्पष्ट विचार रखे जायँ, यह अत्यावश्यक है।

राष्ट्रीय नियोजन के बारे में विचार करते समय मुख्य प्रश्न जनता का है। नियोजन का लाभ जनता को मिले, यह प्राथमिक सिद्धान्त है। इस दृष्टि से यह दुःख की बात है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना का आधार सबको काम देना नहीं माना गया है। पहली योजना के बारे में चर्चा करते वक्त सर्वोदय-विचारकों ने बेकारी की समस्या की ओर ध्यान दिलाया था। जाहिर है कि इस समस्या के बारे में पूरा ध्यान न दिये जाने की वजह से पहली योजना के समाप्त होने पर भी बेरोजगारी की समस्या पहले से भी अधिक भीषण हो गयी है। आशा की जाती थी कि पहली योजना की यह त्रुटि दूसरी योजना में दूर हो जायगी। परंतु यह बड़े दुःख की बात है कि नियोजन के प्राथमिक सिद्धान्त को दूसरे योजना-काल के लिए भी मान्य नहीं किया गया है।

सर्वोदय की दृष्टि में यह स्पष्ट है कि सबको काम देने का सिद्धान्त मान्य किये बगैर तैयार की हुई किसी भी योजना को राष्ट्रीय नियोजन नहीं कहा जा सकता तथा ऐसा करना जनता के मूलभूत अधिकारों की उपेक्षा करना है।

उपर्युक्त साधारण विवेचन के बाद योजना के विशेष पहलुओं की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

भूमि-संबंधी नीति—इसका कोई स्पष्ट चित्र सामने नहीं आता। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के दस साल बाद भी भूमि-संबंधी नीति स्पष्ट नहीं हो सकी है। देश की जनता का ७० प्रतिशत भाग भूमि पर निर्भर है। ऐसी हालत में विशेषतः जब जनमत सबको भूमि दिये जाने के अनुकूल हो, तब भूमि की न्यूनतम सीमा बाँधना इसकी उच्चतम सीमा बाँधने से कहीं ज्यादा जरूरी है। सबको जमीन देने के बाद जो जमीन बचे, उसके प्रबंध के

वारे में सोचा जा सकता है। भूमि-संवंवी नीति के वारे में सर्वोदय के निम्न-लिखित सुझाव हैं :

१—जमीन रखने का अधिकार केवल उसीको हो, जो स्वयं खेती करता हो तथा जमीन की हद उतनी होनी चाहिए, जितनी एक परिवार अपने सदस्यों की सहायता से अर्थात् सावारणतः विना मजदूरों की सहायता के कर सकता है।

२—भूमि-व्यवस्था के वारे में ग्रामीकरण का सिद्धान्त मान्य किया जाना चाहिए तथा भूमि की मालकियत खतम हो जानी चाहिए।

३—भूमि का समुचित वितरण होने के वाद ही सहकारी खेती का सवाल उठ सकता है। जव तक भूमि की वर्तमान व्यवस्था है, तव तक अतिरिक्त भूमि सहकारी-समितियों को सौंपने का विचार भ्रमपूर्ण है तथा इससे वेजमीन किसानों को कोई राहत नहीं मिल सकती।

४—जहाँ सिंचाई का प्रवन्ध करना हो, वहाँ पहले भूमि का पुनर्वितरण होना चाहिए, अन्यथा अधिक उत्पादन का लाभ, जो वड़े-वड़े भूमिवान् हैं, उन्हींको मिल सकेगा तथा गरीव किसानों या वेजमीन मजदूरों को इससे कोई राहत नहीं मिल सकेगी।

५—यदि सीलिंग की व्यवस्था रखनी ही हो, तो यह सीलिंग काफी नीची होनी चाहिए तथा सीलिंग से नीचे और पाँच एकड़ से ऊपर जितनी जमीन एक परिवार के पास हो, उसमें से कम-से-कम छठा हिस्सा अवश्य लिया जाना चाहिए।

६—जमीन को वेचने, रेहन रखने आदि का अविकार समाप्त हो जाना चाहिए, ताकि जमीन गैर-किसानों के हाथ में न जा सके।

भूमि की उचित व्यवस्था हुए विना गरीव जनता का जीवन-स्तर नहीं उठ सकता और न आम जनता में राष्ट्रीय नियोजन के लिए उत्साह पैदा किया जा सकता है। उत्पादन वढ़ाने की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि भूमि जोतनेवाले के अधिकार में रहे। मजदूरों द्वारा खेती कराने से मजदूरों में उत्साह पैदा नहीं किया जा सकता। सहकारी-समितियाँ भी स्वेच्छा से ही पनप सकती हैं। जवर्दस्ती लादी हुई सहकारी-समितियाँ कोई उत्साह पैदा नहीं कर सकतीं तथा इन समितियों में प्रवंधकर्ता-वर्ग द्वारा गरीव किसानों का शोषण जारी रहने की

संभावना है। भूमि-सुधार का काम केवल बड़ी-बड़ी योजनाओं से उतना आगे नहीं बढ़ सकता, जितना जनता में उत्साह पैदा करके हो सकता है।

ग्रामोद्योग—दूसरी योजना में ग्रामोद्योग को स्थान तो दिया गया है, परंतु स्पष्ट नीति के अभाव में ग्रामोद्योग पनप नहीं सकते। इस संबंध में कर्वे-समिति की रिपोर्ट को कार्यान्वित करना प्राथमिक कदम है। समिति की सिफारिशों को पूर्णतः मंजूर किया जाना चाहिए। यदि सरकार केन्द्रित उद्योगों को समाप्त करने की नीति नहीं अख्तियार कर सकती, तो कम-से-कम ग्रामोद्योग द्वारा उत्पादित सारा माल उचित मूल्य पर खरीदने की जिम्मेदारी सरकार को मान्य करनी ही होगी। इसके बिना ग्रामोद्योग खड़े नहीं हो सकते। ग्रामोद्योगों द्वारा समुचित उत्पादन हो सकता है या नहीं, यह तभी सिद्ध किया जा सकता है, जब ग्रामोद्योगों की वस्तुएँ खरीदने का भार सरकार अपने ऊपर ले।

इसके बारे में निम्नलिखित सुझाव हैं:

१—कर्वे-समिति के सुझाव के अनुसार उपभोक्ता सामग्रियों का अतिरिक्त उत्पादन ग्रामोद्योगों पर निश्चयपूर्वक छोड़ देना चाहिए। केन्द्रित उद्योगों को बिलकुल क्षमता न बढ़ाने दी जाय, ताकि ज्यों-ज्यों उनके पुर्जे पुराने पड़ते जायँ, त्यों-त्यों केन्द्रित उद्योगों का उत्पादन उत्तरोत्तर घटता जाय तथा दस वर्ष की अवधि में केवल इतना उत्पादन रह जाय, जितना विदेशों में खप सके।

२—ग्रामोद्योग तथा केन्द्रित उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य समान स्तर पर रखा जाय तथा इसके लिए केन्द्रित उद्योगों पर इतना उत्पादन-कर लगाया जाय, जो ग्रामोद्योग की वस्तुओं पर रिआयत के रूप में देने से दोनों की कीमत बराबर हो जाय।

३—ग्रामोद्योगों में यंत्रों का उतना ही स्थान होना चाहिए कि जिससे बेकारी न पैदा हो सके।

४—ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने की नीति-निर्धारण के संक्रमण-काल में केन्द्रित उद्योगों की वस्तुओं की कीमत बहुत ऊँची चली जाती है तथा इनके प्रति उपभोक्ता का रुख प्रतिकूल हो जाता है। अतः इन क्षेत्रों में कीमतें स्थिर कर दी जानी चाहिए तथा यदि चोर-बाजार बढ़ने लगे, तो सहकारी-समितियों द्वारा स्थिर की गयी कीमतों पर बिक्री की व्यवस्था की जाय। जो व्यक्तिगत दूकानदार स्थिर

किये गये भावों पर बेचने का सक्रिय आश्वासन दें, केवल उनको ही माल बेचने का अधिकार दिया जाय।

मध्यम तथा वृहत् उद्योग—ग्रामीण जनता को काम दिलाने के लिए भोजन तथा वस्त्र की सामग्रियों का उत्पादन पूर्णतः ग्रामोद्योगों के लिए सुरक्षित रखने के बाद जितनी उपभोक्ता सामग्री बचे, उसका उत्पादन मध्यम दर्जे के उद्योगों के लिए सुरक्षित कर देना चाहिए। साबुन, सुगंधित तेल, अन्य अखाद्य तेल, बिजली के छोटे सामान, माचिस आदि का उत्पादन मध्यम दर्जे के उद्योगों के लिए छोड़ देना चाहिए। ग्रामोद्योगों की भाँति इनको भी केन्द्रित उद्योग से संरक्षण मिलना चाहिए।

वृहत् उद्योगों का उचित स्थान केवल वही है, जो ग्रामोद्योग तथा मध्यम दर्जे के उद्योगों के दायरे से बाहर हो। लोहा, सीमेण्ट, कोयला, विद्युत्-सामग्री, भारी मशीनरी, रासायनिक द्रव्य आदि अनेक उद्योग हैं, जो केन्द्रित उद्योगों के लिए रह जाते हैं। बड़े उद्योगों का उपयोग जनता का जीवन-स्तर उठाने के लिए अवश्य है, परंतु बेरोजगारी की समस्या का हल इनसे नहीं हो सकता।

मूल्य-निर्धारण—देश के सर्वांगीण विकास तथा उत्पादन के समुचित वितरण के लिए यह आवश्यक है कि वस्तुओं का मूल्य स्थिर कर दिया जाय तथा सट्टेबाजी बिलकुल बंद हो जाय। निर्धारित मूल्यों के अभाव में उत्पादक को उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सट्टेबाजी के कारण देश का धन कुछ हाथों में चला जाता है। कर की चोरी आदि को भी सट्टेबाजी से बहुत मदद मिलती है। सट्टेबाजी नियंत्रणाधीन करने की नीति गलत है। व्यवहार में नियंत्रण निकम्मे साबित हो जाते हैं।

इसके संबंध में निम्नलिखित सुझाव हैं:

१—प्रत्येक वस्तु का मूल्य निर्धारित कर दिया जाय तथा विशेष परिस्थितियों में ही मूल्यों में हेरफेर किया जाय।

२—देश के उद्योगपतियों तथा व्यापारियों को साफ तौर पर निश्चित नीति के रूप में बता दिया जाय कि अमुक समय में यदि सट्टेबाजी बंद नहीं कर दी जाती, तो राष्ट्रीयकरण का सिद्धान्त लागू कर दिया जायगा।

३—विदेशी व्यापार का जिन वस्तुओं से संबंध हो, उनका प्रबंध राष्ट्र के हाथों में हो तथा जब तक यह संभव न हो, तब तक उत्पादकों से निर्धारित मूल्य पर वस्तुएँ लेकर सार्वजनिक एजेन्सी विदेशों में चालू मूल्यों के अनुपात में निर्यातकों को बेचने की व्यवस्था करे।

मद्य-निषेध—खेद है कि मद्य-निषेध जाँच-समिति की सिफारिशों को मान्य नहीं किया गया है। देश में सर्वत्र मद्य-निषेध लागू किये बिना मद्य-निषेध नीति सफल नहीं हो सकती। समिति की सिफारिशों को अविलंब मान्यता देने की घोषणा होनी चाहिए।

संपत्ति-विषयक नीति—भूमि-संबंधी नीति निर्धारित करने में एक विशेष आपत्ति भूमि के सिवा अन्य संपत्ति के बारे में आती है। ऐसी संपत्ति की भी उच्चतम सीमा निर्धारित होनी चाहिए तथा पूँजी-कर के रूप में संपत्ति का छठा हिस्सा लिया जाना चाहिए।

रक्षा-कोष—सर्वोदय के सिद्धान्त के अनुसार देश की रक्षा का भार अहिंसक जनता पर होना चाहिए। इसके लिए जनता को उचित शिक्षण मिलना चाहिए। अहिंसा तथा सत्याग्रह की शिक्षा जनता को व्यापक रूप से देनी चाहिए। जनता की अहिंसा में श्रद्धा बढ़े, इसके लिए आवश्यक है कि सरकार का काम अहिंसक पद्धति की ओर अग्रसर हो। देश की आभ्यंतरिक सुरक्षा का प्रश्न अहिंसक पद्धति द्वारा हल होना चाहिए।

विदेशी आक्रमण से सुरक्षा के लिए कुछ समय तक सैन्य-बल की आवश्यकता पड़ सकती है। इस अन्तरिम काल में जब तक सेना रखना आवश्यक हो, तब तक सेना के लोगों को विकास के कार्यक्रम में लगाकर फौजी खर्च कम किया जाना चाहिए। सेना को दो टुकड़ियों में बाँटा जा सकता है तथा सेना का आधा भाग विकास-कार्यों में लगाया जा सकता है।

मुकदमेबाजी—यद्यपि नियोजन के चालू अर्थ में इस विषय का समावेश नहीं हो सकता, परंतु जब हम राष्ट्रीय नियोजन के बारे में विचार करते हैं, तो ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय को छोड़ा नहीं जा सकता। आज के जमाने में बढ़ती हुई मुकदमेबाजी एक भीषण रूप धारण करती जा रही है, जिसके कारण लोगों

का अत्यधिक नुकसान तथा समय की वर्बादी हो रही है। मुकदमेवाजी का नतीजा तवाही के सिवा कुछ नहीं होता। न्यायालयों में न्याय मिलने में इतना खर्च तथा समय लगता है कि न्याय मिलना कठिन होता है। देश की कानून-संबंधी-नीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए विना जनता को राहत नहीं मिल सकती। इस सम्बन्ध में नीचे लिखे सुझाव हैं :

१. पंच-निर्णय की पद्धति को उत्तरोत्तर वढ़ावा मिलना चाहिए। पंच-निर्णय को मामूली वातों पर रद्द कर देने की न्यायालयों की पद्धति है, उसे खतम करना चाहिए तथा पंच-निर्णय में न्यायालयों को साधारणतया हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

२. अदालतों में वकीलों की उपस्थिति वंद कर दी जाय तथा दोनों पक्ष अपनी दलीलें खुद ही उपस्थित करें। इन दलीलों को कानून के विशेषज्ञों द्वारा तैयार कराया जा सकता है।

३. कानूनों के वारे में पार्लियामेण्ट की सत्ता सार्वभौम समझी जानी चाहिए। यहाँ निष्पक्ष न्याय के लिए जरूरी है कि किसी कानून को अंतिम स्वरूप देने के पहले उसकी सर्वोच्च न्यायालय के वैधानिक विभाग द्वारा जाँच करा लेनी चाहिए तथा जव कानून का मसविदा जनमत के लिए प्रेषित किया जाय, उस समय लोगों को जो अन्यायपूर्ण वातें लगें, उनके वारे में वैधानिक विभाग पूरी जाँच-पड़ताल कर ले। परंतु कानून पास हो जाने के वाद किसी न्यायालय को कानून की वैधानिकता के वारे में हस्तक्षेप करने का अधिकार न होना चाहिए।

अध्ययन-मण्डलों के विवरण

श्री नारायण देसाई :

शहरों में काम कैसे वढ़े ?

सर्वोदयपुरम्, कांचीपुरम् में सातवें सर्वोदय-सम्मेलन के अन्तर्गत एक चर्चा-मंडल की 'शहरों में काम' के वारे में विचार करने के लिए चार वैठकें हुईं, जिनमें प्रायः ३०० लोगों ने करीव १० घंटे चर्चा की। चर्चा का सार निम्न प्रकार है।

भूदान-आरोहण में शहरों का कार्यक्रम विशेष महत्त्व रखता है। हमारे देश के लोगों की वड़ी हिंसा पर से तो श्रद्धा उठ गयी है, लेकिन अभी अहिंसा पर श्रद्धा

जमी नहीं है। कई प्रसंगों में छोटी हिंसा पर श्रद्धा प्रकट करनेवाली घटनाएँ बन जाती हैं। भूदान-यज्ञ का मुख्य काम देश में अहिंसा के प्रति निष्ठा बढ़ाना है। इसके लिए हमारी जनता में समस्याओं को अहिंसात्मक तरीके से हल करने की शक्ति आनी चाहिए। इस शक्ति का मूल विचार-परिवर्तन में है। हमारे शहर आजकल विचार-प्रवर्तन के केन्द्र बन गये हैं। इस दृष्टि से शहरों में हमारा विचार पहुँचाना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

प्रत्यक्ष भूमि-प्राप्ति की दृष्टि से भी शहरों का काम महत्त्व का है; क्योंकि जमीन-मालिकों का खासा बड़ा हिस्सा शहरों में रहता है।

भूदान का आरंभ हम जमीन के पुनर्वितरण से करते हैं। लेकिन हमारा दावा सारे आर्थिक क्षेत्र में क्रांति करने का है। हमारी औद्योगिक तथा व्यापारिक प्रवृत्तियों के केन्द्र आजकल शहर हैं। इन क्षेत्रों में क्रांति की दृष्टि से भी शहरों का काम महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

हमारे देहातों के काम का मुख्य उद्देश्य मालकियत का विसर्जन होगा और शहरों के कार्यक्रम का जोर श्रम-मूल्यों को बढ़ाने पर होगा।

शहरों के कार्यक्रम का देहातों के कार्यक्रम पर भी गहरा असर पड़ता है तथा शहरों के काम की यदि उपेक्षा की जाय, तो देहातों के काम का बिगड़ना भी संभव है। इस दृष्टि से चर्चा-मंडल में कार्यक्रमों की तफसीलवार चर्चा हुई, जिसके मुख्य मुद्दे नीचे दिये जाते हैं:

विचार-प्रचार

शहरों में विचार-प्रचार हमारे काम की नींव होगी। उस दृष्टि से निम्न कार्यक्रम किये जायँ:

(१) साहित्य-प्रचार को अपना "मिशन" समझनेवाले छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष कार्यकर्ता निकलें।

(२) घर-घर साहित्य पहुँचाने का प्रयास किया जाय। मुहल्लेवार साहित्य-फेरी निकाली जाय। जगह-जगह सभाएँ आयोजित की जायँ तथा उनमें साहित्य बेचा जाय।

(३) भूदान-पत्रों के ग्राहक बनाने के लिए विशेष प्रयत्न किया जाय, जिसमें साहित्य-फेरी, विशेष दिन मनाना तथा व्यक्तिगत संकल्प लेकर ग्राहक बनाना आदि कार्यक्रम रखे जायँ।

(४) शहरों से निकलनेवाले अखबारों से संपर्क स्थापित कर उनसे सहयोग प्राप्त करना, सर्वोदय-विचार के दैनिक कॉलम, साप्ताहिक लेख, समाचार तथा समय-समय पर संपादकीय लेख और टिप्पणी निकलवाना।

(५) स्थानिक रेडियो से भूदान-समाचार, गीत तथा भूदान-वृत्ति की ओर संकेत करनेवाले नाटक, कहानी आदि को कार्यक्रम में शामिल करवाना।

(६) ट्रेनों में, रेलवे-स्टेशन पर तथा अन्य सभी स्थानों में जहाँ लोग इकट्ठे होते हों, खास तौर पर साहित्य की बिक्री करना।

(७) शहर के भित्तिपत्रों पर नियमित रूप से सर्वोदय-विचार, समाचार आदि देना।

(८) कला-पथक तथा संगीत-मंडलियों का आयोजन करना।

(९) डाक्युमेंटरी फिल्म तथा अन्य फिल्मों में भूदान-वृत्ति का प्रवेश कराना।

(१०) शहर के तमाम वाचनालयों में सर्वोदय-साहित्य पहुँचाना।

साहित्य-बिक्री के कमीशन से भूदान-केन्द्रों का खर्च काफी हद तक निकल सकता है।

विद्यार्थी संपर्क

विद्यार्थी हमारे भावी समाज के निर्माता तथा अग्रदूत हैं। इसलिए उनमें भूदान-यज्ञ संबंधी कार्यक्रम करना अत्यंत आवश्यक है।

विद्यार्थियों के कार्यक्रम में दृष्टि यह रहे कि वे किसी बँधे विचार में न फँसते हुए समाज की समस्याओं के बारे में स्वतंत्र चिंतन करने की शक्ति प्राप्त करें, उनके शील का विकास हो तथा गुरुजन-सेवा द्वारा नित्य नयी तालीम प्राप्त करते रहें।

काम की दृष्टि से नीचे लिखे कार्यक्रम किये जा सकते हैं :

(१) हाईस्कूल तथा कॉलेजों में जाकर विद्यार्थी तथा अध्यापकों से संपर्क-साधना, उनके सामने सर्वोदय का विचार रखना तथा उनमें साहित्य-प्रचार करना।

(२) विद्यार्थियों के शिविरों का संगठन करना।

(३) छुट्टियों में इर्दगिर्द के प्रदेशों में पदयात्रा का आयोजन करना, जिसमें साहित्य-फेरी, ग्राम-सफाई, दानपत्र भरना आदि कार्यक्रम रहें।

(४) कोई सघन क्षेत्र चुनकर वहाँ से अधिकाधिक विद्यार्थियों का समयदान पाकर तहसील या जिले के हर गाँव तक भूदान के विचार को पहुँचाने के लिए पदयात्राओं का आयोजन करना।

(५) विद्यार्थियों से श्रमदान प्राप्त कर उसका विनियोग शहरों की गन्दी बस्तियों में मकान बाँधना, सड़क तैयार करना, घर-घर जाकर चक्की चलाना, घर सजाना आदि कार्यक्रमों के लिए किया जाय। ग्रामों में जाकर ग्रामवासियों की मदद के सारे कार्य किये जायँ।

(६) विद्यार्थी अपने जेब-खर्च की रकम से कुछ हिस्सा संपत्तिदान में दें।

(७) मौजूदा छात्रावासों से संपर्क तथा सर्वोदय की दृष्टि से कुछ स्वतंत्र छात्रावासों का संचालन करना।

(८) मौजूदा विद्यार्थी-संघटनों से संपर्क स्थापित कर उनमें देश-सेवा के कामों में मतभेद छोड़कर इकट्ठे होने की वृत्ति तथा विचार-स्वातंत्र्य की भावना पैदा करना।

भूमि-प्राप्ति

शहरों में हमारे भूमिवानों का बहुत बड़ा हिस्सा रहता है, इसलिए वहाँ से काफी जमीन मिल सकती है।

(१) भूमिवानों की नामावलि प्राप्त करने के लिए ग्रामों के भूदान-कार्यकर्ताओं तथा शहर में बने हुए ग्राम-संघों से संपर्क स्थापित करना।

(२) घर-घर, बस्ती-बस्ती में जाकर व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करना।

(३) कमाई के अन्य साधन रखनेवालों से खास तौर पर पूरी जमीन की माँग की जा सकती है।

शहरों का मुख्य काम यह होगा :

(१) समाज का हरएक व्यक्ति पहले दे, पीछे खाये, यह हमारा आदर्श है। इस दृष्टि से शहर में जितने मुँह हैं, उतने संपत्तिदान होने चाहिए।

(२) सारे मजदूर अपनी कमाई को एक जगह मिलावें तथा उसमें से कुछ हिस्सा समाज के लिए समर्पण करें।

(३) व्यापारी अपने हिसावों में संपत्तिदान का अलग खाता रखें और नियमित रूप से समाज के लिए समर्पण करें।

(४) श्रीमान् लोग अपना धर्म समझकर किसी गाँव, तहसील या जिले के पुर्नानिर्माण के सारे खर्च का भार उठा लें।

(५) कारखाने में काम करनेवाले व्यवस्थापक तथा मजदूर अपनी सारी कमाई को एक जगह मिला दें या कम-से-कम अपने संपत्तिदान की रकम को मिला दें।

(६) सूत्र-दान।

समय-दान

शहरों से काफी परिमाण में आंशिक या पूरा समयदान प्राप्त करने की गुंजाइश है :

(१) जीवनदान की नयी कल्पना के अनुसार समयदानी प्राप्त किये जायँ।

(२) नियमित रूप से रोज कुछ समय, सप्ताह में एक दिन, महीने में कुछ दिन या साल में एक महीना देनेवाले को समयदानी समझा जाय।

(३) समयदानी स्वेच्छा से ऊपर दिये हुए कार्यक्रमों में से कोई भी अनुकूल कार्यक्रम उठावें और उसकी जानकारी समिति को दें।

(४) भूदान-समितियाँ समयदानियों का मार्गदर्शन करें।

श्री सिद्धराज ढड्ढा के कुछ सुझाव :

भूदान-आन्दोलन का उद्देश्य समाज-रचना वदलकर शोषण-रहित समाज स्थापित करने का है। इस काम के दो मुख्य पहलू हैं। पहला, व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन और दूसरा वर्ग-निराकरण। गाँवों में वसनेवाली अधिकांश जनता

पहले से ही उत्पादक शरीर-श्रम में लगी हुई होने से देहातों के हमारे कार्यक्रम में वर्ग-निराकरण या श्रम-प्रतिष्ठा से सम्बन्ध रखनेवाले कार्यक्रम का स्थान गौण है। वहाँ हमारा मुख्य जोर मालकियत के विसर्जन पर है—अर्थात् जमीन के ग्रामीकरण पर।

शहरों के कार्यक्रम में मालकियत के विसर्जन का पहलू तो मुख्य है ही, जिसका पहला कदम सम्पत्ति-दान है, पर वहाँ वर्ग-निराकरण और श्रम-प्रतिष्ठा के कार्यक्रमों का स्थान भी मुख्य होना चाहिए; क्योंकि शहरवासी अधिकतर अनुत्पादक काम में लगे हुए होते हैं, जिन्हें मालकियत के विसर्जन के साथ-साथ वर्ग-निराकरण की ओर भी सक्रिय कदम बढ़ाना है। ऐसे कई प्रकार के कार्यक्रम सोचे जा सकते हैं। विद्यार्थियों के, नौजवानों के, साप्ताहिक या पाक्षिक श्रम के कार्यक्रम रखे जा सकते हैं। सुयोजित सफाई का कार्यक्रम भी शहरों के काम का एक मुख्य अंग हो सकता है। विद्यार्थियों, नौजवानों तथा कार्यकर्ताओं के मजदूरों के साथ मिलकर काम करने के आयोजन भी रखे जा सकते हैं।

इसके बाद श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय ने तमिल में एक भाषण पढ़कर सुनाया।

श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय :

मंदिरों के इस पावन प्रदेश की प्रथम पूजा के लिए यहीं के पेड़-पौधों के फूल लेने की प्रेरणा हुई और भाई जगन्नाथन्‌जी से उसके लिए सहायता माँगी। फूल उन्होंने ला दिये, श्रेय मैं ले रहा हूँ। अन्यथा तमिल भाषा का मुझे क्या ज्ञान ?

दक्षिण के प्रथम प्रवेश-काल में, सागर की उत्ताल तरंगों के बीच, उत्तुंग गोपुरम् वाले मंदिरों के दर्शन जब किये थे, पूर्व संचित श्रद्धा घनीभूत हो उठी थी। आज उसी प्रदेश में सर्वोदय का सर्वात्मि-सम्मेलन हो रहा है। इस यज्ञ के 'होता' हैं, महान् शंकराचार्य के अनन्य भक्त आचार्य विनोबा। सहज स्मरण आया। एक शंकर दक्षिण से उत्तर गये, दूसरे शंकर उत्तर से दक्षिण अब एक नया अलख जगाने आये हैं। यहाँ वे सर्वोदय की क्रान्ति का दर्शन कराना चाहते हैं। इस महान् प्रदेश के लिए यह आकांक्षा पूरी करना क्या कठिन है? (इसके बाद हिन्दी में) :

शहरों के काम के बारे में यहाँ चर्चा हो रही है। मैं अधिक न कहकर दो एक बातें भर सुझाना चाहूँगा। बुद्धिजीवियों में यदि हमें काम करना है, तो पहली आवश्यकता है, व्यक्तिगत संपर्क की और दूसरी आवश्यकता है, चर्चा-मंडलों की। बुद्धि की भूख बुद्धि से सहज शमन हो सकती है।

इसके साथ सामूहिक रूप से सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन भी एक जरूरी क़दम है। इसकी भी एक शक्ति है, यदि ढँग से वह इस्तेमाल हो। एक वातावरण का निर्माण हमें करना है और उसके लिए यह कारगर साधन है। सामूहिक रूप में बुद्धिजीवियों पर प्रेम का आक्रमण तो करना है, पर इस ढंग से कि वह आक्रमण नहीं, आमंत्रण महसूस हो।

मंगलवार, २९-५-'५६ : तीसरे पहर, ३ बजे
खुला अधिवेशन

२-३० से ३ बजे तक सूत्र-यज्ञ हुआ।

श्री अण्णा साहब (अनंत वासुदेव) सहस्रबुद्धे (कोरापुट) :
कोरापुट के ग्रामदानी गाँवों की रिपोर्ट

कोरापुट एक बहुत बड़ा विशाल क्षेत्र है। दस हजार चौरस मील का जिला है और ६४ लाख एकड़ जमीन उस ज़िले में है, जिसमें से १४ लाख एकड़ जमीन खेती के काम में आती है और २८-३० लाख एकड़ जंगल है और दूसरी सारी पड़ती जमीन है। आबहवा की दृष्टि से जिले के तीन विभाग किये जा सकते हैं। एक हजार फुट ऊँचाई का एक भाग, दो हजार फुट ऊँचाई का दूसरा विभाग और तीन हजार फुट ऊँचाई का एक तीसरा विभाग, जो सबसे बड़ा विभाग है। उड़ीसा में पू० बाबा की पदयात्रा चार साढ़े चार महीने चलती रही।

बाबा उड़ीसा में प्रवेश कर रहे थे, तब उन्हें ८० गाँव मिले थे और जब २ अक्तूबर को उन्होंने उड़ीसा छोड़ा, तब करीब ७०० गाँव हो गये। आज १०५० गाँव हो गये हैं। उनके जाने के बाद दो-ढाई सौ गाँव चार महीने में मिले। जैसे जैसे निर्माण-कार्य होता रहेगा, वैसे-वैसे गाँव मिलते रहेंगे। आज एक हजार गाँव मिले हैं। सम्भव है कि अगले सम्मेलन तक दो हजार या उससे भी अधिक तक वे पहुँच जायँ। ज़िले की आबादी १२ लाख है, जिसमें से करीब-करीब १०

लाख के ऊपर आदिवासी लोग हैं। छोटे-छोटे गाँव हैं। करीब छह हजार गाँवों में सारी आबादी रहती है। गाँव उसको कहते हैं, जिसका खेत प्रतिपालन कर सकते हैं। उतने छोटे क्षेत्र का ५–१०–२५ एकड़ में एक-एक गाँव बसा हुआ है। जंगली मुल्क है और ५ मील जायेंगे, तो दो-चार पहाड़ पार करके जाना होगा। रास्ता नहीं है और काफी नदियाँ बहती हैं। पानी के मौसम में ४-६ महीने एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाना मुश्किल हो जाता है। इस क्षेत्र में ६०० ऐसे समग्र ग्रामदानी गाँव मिलने के कारण हमलोग वहाँ गये। पहले ही भूदान-समिति की ओर से सौ-एक कार्यकर्ता यहाँ काम करते थे। जब बाबा की पदयात्रा चलती थी, तब दो–ढाई सौ कार्यकर्ता काम करते रहे। उसका असर सारे क्षेत्र पर हुआ था। सारे आदिवासी गाँव हैं और नयी जाग्रति उनमें पैदा हुई है। वे सोचने लगे हैं कि उनके सुधार का क्या उपाय है? जब गाँव-गाँव में पदयात्रा चलती रही और लोगों को समझाया गया कि जैसे आप बाँट करके खाते हैं, वैसे जमीन क्यों नहीं बाँट लेते, तो उन्होंने मंजूर किया और अपने गाँव की सारी भूमि भूदान में दे दी। अभी ४५० गाँवों का वितरण हो गया है। इन गाँवों में ९११२ परिवार रहते हैं और कुल ५३ हजार की आबादी है। ५१ हजार एकड़ जमीन उनको बाँटी गयी है और १६११ एकड़ जमीन उन्होंने सामुदायिक खेती के लिए रखी है। २०–२१ हजार एकड़ जमीन ऐसी पड़ती है, जो गाँवों में है और खेती के काम में आ सकती है। ऐसी परिस्थिति में वहाँ काम शुरू हुआ। पिछले तीन-चार महीनों तक बँटवारे का काम ही महत्त्वपूर्ण रहा और सारे कार्यकर्ता उसीमें लगे हुए थे और करीब-करीब ४५० गाँवों में पूरा बँटवारा हो गया। बँटवारा करने की नीति जो हमने रखी है, उसकी भी थोड़ी जानकारी मैं आपको देना चाहता हूँ।

बँटवारे का तरीका

गाँव में जितनी जमीन होती है, उसके हम तीन विभाग करते हैं। एक तो वेट लैंड, या तो धान की खेती। दूसरी, ड्राइ लैंड या तो रबी की खेती और तीसरी बंजर, जो खेती के काम आ सकती है, लेकिन लायी नहीं जाती है और हरएक परिवार को एक-एक प्रकार की जमीन में हिस्सा लेने का सोचा

जाता है और फिर गाँव में जितनी आवादी होगी, उसमें फिर हर व्यक्ति के लिए जितने डेसिमल भूमि एक-एक के नाते और जितने लोग परिवार में होंगे, उतनी भूमि परिवार को दी जाती है। परिवार में यदि ज्यादा लोग हों, तो ज्यादा जमीन मिलेगी। परिवार में कम लोग काम करनेवाले हैं, तो कम भूमि मिलेगी। यह तो नियम हुआ। आखिर भूमि का वँटवारा गाँववालों को ही करना है। औसत जमीन एक व्यक्ति के पीछे जितनी आती है, उससे दो गुना, तीन गुना, कहीं एक गाँव में चार गुना तक जमीन किसी एक परिवार को दी गयी है। इतनी विषमता आज हमारे वँटवारे में रह जाती है। वँटवारा हुआ, लेकिन गाँव के लोगों को यह समझाया जाता है कि यह वँटवारा कोई आखिर का नहीं है। यदि गाँव में खेती का कुछ सुधार हुआ, पानी न आया, नहर वनायी गयी और पानी के नीचे फिर से खेती में जोतने की सुविधा प्राप्त हुई, तो फिर से जमीन का वँटवारा होगा। गाँववाले यह भी मंजूर कर लेते हैं कि दस साल के वाद फिर से एक एक इस वारे में सोचा जायगा और जरूरत हो, तो जमीन का वँटवारा किया जायगा। ४५० गाँवों में ५३ हजार एकड़ जमीन का वँटवारा हुआ और २० हजार एकड़ पड़ती ऐसी रखी गयी है, जिसका वँटवारा नहीं हुआ। उस जमीन को तोड़ना होगा, जोतने के लायक वनाना होगा और वाद में उसका वँटवारा हो सकेगा। फिलहाल जितनी जमीन जोती जाती थी, उतनी ही जमीन का वँटवारा कर लिया है और हरएक घर में जितने लोग परिवार में थे, उनके अनुपात में वँटवारा हो चुका।

वँटवारे के वाद उनको खेती के लिए वैल और औजार देने का सवाल हमारे सामने आया। आदिवासियों के पास वैल पहले से ही कम रहते हैं। महाजन से खेती के लिए चार या छह महीनों के लिए वैल लाते थे और एक वैल के लिए ५-६ महीनों के लिए उनको वीस रुपये देना पड़ता था। एक वैल की जोड़ी लाते थे, तो चालीस रुपया देना पड़ता था और फिर चार-छह महीने की खिलायी भी उनकी ही जिम्मेवारी थी। पर यह देखा गया कि यदि वैल के लिए उनको महाजनों के हाथ में ही रहना पड़ेगा, तो कायम के लिए महाजनों के हाथ में रहेंगे। इसीलिए गाँव की खेती के अनुपात में गाँव में, वैल देने का भी सोचा गया। करीव-करीव कोरापुट जिले में ८०० वैल-जोड़ियाँ तीन महीने में वँट

गयीं हैं। जहाँ धान की खेती थी, वहाँ ५ एकड़ के पीछे एक बैलजोड़ी दी गयी और जहाँ खुश्की की जमीन थी, वहाँ १० एकड़ के पीछे एक बैलजोड़ी देने का सोचा गया। अभी एक-एक परिवार को कम जमीन मिलती है, तो दो या तीन परिवार में मिलकर एक बैलजोड़ी मिलेगी। यदि उस गाँव में जमीन की मात्रा ज्यादा है, तो सम्भव है कि एक परिवार को एक बैलजोड़ी मिल सकती है। जैसे बैलजोड़ी दी गयी, वैसे खेती के औजार देने का भी सोचा गया और कुदाल, फावड़े से लेकर हल भी गाँव-गाँव में देने का विचार चल रहा है। हम आशा रखते हैं कि औजार भी उनको दिये जायँगे। खेती का बँटवारा हुआ, उनको बैलजोड़ी मिली। फिर भी वह जोतता रहेगा, खेती पर काम करता रहेगा और अगले साल फसल उसको मिलेगी। उस दिशा में देखते रहने का काम हमको करना है। पानी के मौसम में वह काम किया जाय। ४५० गाँवों का बँटवारा हुआ है और ४११ गाँव कोरापुट जिले में बाकी हैं, जहाँ हम अभी तक नहीं पहुँचे। सम्भव है, अगले एक-डेढ़ महीने में दो-एक सौ गाँव उसमें से हो जायँगे। शेष दो-एक सौ गाँवों में इस साल पहुँचना हमारे लिए मुश्किल है। यह जो मैंने कहा कि ६०० गाँवों में हम पहुँच सकेंगे, वहाँ पहुँचने के खयाल से हमने जिले भर में २५ या ३० केन्द्र बनाये। भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है कि १०-५ भूदान में मिले हुए गाँव आते हैं। बीच-बीच में दूसरे भी गाँव आ जाते हैं। इसलिए सघन क्षेत्र नहीं होता। तो हमने अपने लिए सघन क्षेत्र बना लिया। चार मील की त्रिज्या में जितना क्षेत्र होता था और कम-से-कम पाँच गाँव हों ऐसे जितने केन्द्र हो सकते थे, उतने किये गये। आज फिलहाल २५ या ३० केन्द्र ऐसे बनाये गये हैं। एक-एक केन्द्र के नीचे करीब २०० परिवार आ जाते हैं और दस-एक गाँव आ जाते हैं। दस गाँवों ने मिलकर एक ग्रामसभा बनायी। इस ग्रामसभा के मातहत सारे पुनर्निर्माण का काम सौंप दिया गया। उनके ही द्वारा काम हो, इस दिशा में हमारी हमेशा कोशिश रहती है। पहले आवश्यक माना गया और पूछा गया कि कौन-सी प्रवृत्ति पहले गाँववाले लेना चाहते हैं। सभी की राय रही कि पहले हमारे गाँव में हमारी दूकान हो। आज उनमें इतनी जाग्रति आ गयी है कि वे चाहते हैं कि जितनी

जल्दी-से-जल्दी हो सके, हम महाजनों के हाथ से छुटकारा पायें। इसलिए उन्होंने तय किया कि हम अपने गाँव में दूकान खोलेंगे।

दूकान का स्वरूप

दूकान के लिए प्रति परिवार के पीछे कुछ रुपये की पूंजी बनायी गयी और एक केन्द्र के लगभग दो सौ परिवारों के लिए डेढ़ सौ-दो सौ रुपये की पूंजी इकट्ठी हो गयी। जितनी पूंजी इकट्ठी हुई थी, उसके प्रमाण में पाँच गुना से लेकर दस गुना तक पूँजी सर्व-सेवा-संघ की तरफ से वहाँ लगायी गयी और आज सर्व-सेवा-संघ की पूँजी करीब ४० हजार रुपया इस प्रवृत्ति में लगी हुई है। उसका अर्थ है कि उनकी पूंजी करीब-करीब पाँच हजार की है और दूकानों में जो हमारे मामूली अनुभव आते हैं, उनसे बिल्कुल नये अनुभव वहाँ हमें आये। विशेष खुशी की बात है कि ये सारे आदिवासी लोग बड़े प्रामाणिक हैं। दूकान के लिए हमें जगह खोजने का प्रयास नहीं करना पड़ा। गाँव में किसी के बरामदे में दूकान शुरू हुई। गाँववालों ने ही दूकान चलायी। दूकान चलाने के लिए यदि आदमी की नियुक्ति भी करनी हो, तो गाँववाले ही करते हैं। हफ़्ते में एक दिन गाँववाले बाजार करने चले जाते हैं और जो आवश्यक चीजें होती हैं, वे खरीद लाते हैं और शाम को या सबेरे एक घंटा दूकान खुली रहती है और गाँववाले या पड़ोसवाले अपनी जरूरत की चीज वहाँ से खरीद लेते हैं। दूकान शब्द जब मैंने आपके सामने रखा, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि बहुत बड़ी दूकान। चार या पाँच चीजें वहाँ बेची जाती हैं। उनकी आवश्यकता आज जितनी है, कम-से-कम आवश्यकता, पूरी करने के खयाल से यह दूकान चलायी जाती है। मिट्टी का तेल, नमक, मिरच, क्वचित् खाने का तेल, हाथ-करघे का कपड़ा और अनाज रहता है। यदि ज्यादा चीजें खरीदनी हों, तो उन्हें बाजार से खरीदने की इजाजत है। लेकिन दूकान में हमने उतनी ही चीजें रखीं, जो बिल्कुल आवश्यक मालूम हुईं और गाँववालों ने भी जिन्हें उचित समझा। इस दूकान की प्रवृत्ति से एक नयी तालीम उनको मिल रही है, वे सोचने लगे हैं। अड़ोस-पड़ोस में महाजनों की दूकान है। उसके साथ उनको फरमारी करना आवश्यक होता है। उनके दाम से ज्यादा दाम में माल न बेचा जायगा,

वह भी यह मानते हैं। जब वह खरीद करने के लिए चले जाते हैं, तब सोचते हैं कि किस दाम में खरीदी हो और किस दाम में बेची जाय, इसका निर्णय भी इस ग्राम-सभा के सदस्य ही करते हैं। ग्राम-समिति ही बाजार में जाती है और दूकान भी चलाती है। दूकान चलाने के लिए एक पैसा आज तक खर्च नहीं होता है, क्योंकि ऐसा आदमी नहीं रखा गया है, जो दिन भर काम करता रहे। अपना-अपना काम सँभालते हुए दूकान चलाने की जिम्मेदारी ग्राम-सदस्यों को दी गयी है, इस प्रवृत्ति को हम कायम करना चाहते हैं। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं यह भी हुआ है कि केन्द्र में जो दूकान चलती थी, उसकी शाखाएँ गाँव-गाँव में खुलने लगी हैं। गाँव की शाखा, हफ़्ते में जितनी आवश्यकता होती है, उतना माल दूकान में ले जाती है और हफ़्ते में फिर वापस लौटाकर माल ले जाती है। छोटे-छोटे गाँव होने के कारण और आपस में खूब मेल होने के कारण और उनकी सच्चाई के कारण गत तीन या चार महीने का अनुभव ऐसा आया कि आज २७ दूकानें हमारी चल रही हैं, लेकिन किसी भी दूकान में घाटा नहीं आया। एक या दो दूकानें ऐसी हैं, जिनमें एक या तीन रुपये का घाटा तीन महीने में आया है। शेष में कहीं २० रुपये, कहीं ४० रुपये और कहीं ५० रुपये का तीन महीने में, मुनाफा हुआ है। हमारा आदमी या तो सर्व-सेवा-संघ से या नव-जीवन मंडल से एक महीने, डेढ़ महीने या दो महीने में वहाँ पहुँचता है। हिसाब लगाने की कोशिश करता है। जितने वह हिसाब बतला पाते हैं, उतने बतलाये जाते हैं। स्टॉक लिया जाता है और फिर हिसाब लगाया जाता है। अभी-अभी मई महीने की १५ तारीख तक हिसाब निकाले गये। उस पर से यह देखने में आया कि किसी दूकान में घाटा नहीं आया है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं दूकानों ने गत ४ महीने में ५०) व १००) की आमदनी की है। लिखे-पढ़े लोग न होते हुए भी यह दूकान चलाने की प्रवृत्ति आज उनकी तरफ से चल रही है।

प्रश्न : उधारी भी होती है ?

उत्तर : हाँ, उधारी भी होती है। एडवान्स के रूप में गाँववालों को दिया जाता है, ग्राम-सभा की जिम्मेदारी है, वह वसूल करती है। वह जिम्मेदारी

लेते हैं और वही देते हैं। इस तरह से कहीं-कहीं १००), २००) और कहीं-कहीं ५००) तक की भी उधारी दी गयी है। जैसे-जैसे पानी का मौसम आयगा, उधारी बढ़ती जायगी, क्योंकि जब वह काम नहीं करेंगे और कमायेंगे नहीं और फिर भी उनको खेती का काम करते रहना होगा, तो खाने इत्यादि की चीजों की आवश्यकता रहेगी। अब यदि वह दूकान की तरफ से सब पूरा करना हो, तो एडवान्स के तौर पर उनको और चीजें देनी होती हैं। इस समय बड़े विश्वास से काम हो रहा है। आज तक के मेरे जितने विचार थे, खयालात थे, सब बदल गये। लोग कहते थे और मैं भी मानता था कि दूकान चलाने के लिए थोड़ा पढ़ने-लिखने की आवश्यकता है, लेकिन यह अनुभव आता है कि सच्चाई हो और लिखना-पढ़ना न भी आता हो, तो अच्छी से अच्छी दूकान गाँववाले चला लेते हैं। दूसरा ऐसा भी अनुभव है कि सौ-दो सौ काम करनेवाले जो कार्यकर्ता हमारे हैं, उनमें से आधे से ज्यादा कार्यकर्ता ऐसे हैं, जिनको लिखना-पढ़ना बहुत कम आता है, नहीं के बराबर है, फिर भी उनकी तरफ से प्रचार का काम होता है, बँटवारे का काम होता है और हमसे वह ज्यादा काम कर सकते हैं, ऐसा भी हमने अनुभव किया।

परिवारों की स्थिति

तो, भूदान आन्दोलन में आप यदि यह मानते होंगे कि लिखे-पढ़े ही लोगों से काम होगा, तो यह आपको कुछ समय के लिए भूल जाना होगा। यदि कोरापुट का जो अनुभव है, उसको काम में मदद के लिए रखना हो तो। अभी तो यह प्रवृत्ति शुरू हुई दूकान की। उसको हम किस दिशा में ले जाना चाहते हैं, यह मैं आपको बतला देना चाहता हूँ। अभी मैंने आपको समझाया कि ४५० गाँवों में ५३ हजार की आबादी या करीब-करीब १० हजार परिवार आज वहाँ हैं। हमारे कुल २० हजार ग्रामदानी परिवार होते हैं और करीब १ लाख ६ हजार की आबादी होती है। सारे गाँव की मिलाकर तीन लाख एकड़ जमीन होती है, जिसमें एक लाख एकड़ जमीन इनके काम में आयेगी, ऐसा हम मानते हैं। प्रति व्यक्ति करीब-करीब एक एकड़ जमीन उनको मिलेगी और एक परिवार के पीछे ५ एकड़ जमीन उसकी रहेगी। ५ एकड़ के हिसाब से

उनको आज आमदनी क्या होती है, यदि उसका हिसाब जोड़ा जाय, तो मैंने हिसाब लगाया था कि सारे परिवार की सालाना आमदनी दो-ढाई सौ रुपये से ज्यादा नहीं होती है। और प्रत्येक को रुपये-आने-पाई में भी जितनी उनको प्राप्ति होती है, ऐसा यदि हिसाब लगाया जाय, तो सौ रुपये से ज्यादा आमदनी नहीं होती। तो दो सौ या ढाई सौ रुपये में यह परिवार रहता है क्या? तो यह कबूल करना होगा कि ४–६ महीने उनको भुखमरी में रहना पड़ता है। औसतन एक आना या अच्छे दिनों में दो-ढाई आने से ज्यादा एक दिन में वे नहीं खा पाते। तीनों समय के उनके भोजन की कीमत दो-ढाई आने से ज्यादा नहीं होती और जब कमी रहती है, तो उसीमें ज्यादा पानी मिलाया जाता है और जब उनके पास अनाज रहता है, तब पानी के बदले आटा ज्यादा मिलाया जाता है और एकमात्र उनका भोजन होता है खाद्य। कभी-कभी चावल मिल जाता है, लेकिन बहुत कम, कंजी में थोड़े चावल डाल देते हैं और उसीसे उनका गुजारा चलता है। इतना निकृष्ट अनाज उनको मिल रहा है, जिसका परिणाम उनके शरीर और सारी शक्ति पर हुआ है। जब हमने एक शिविर कराया, तब देखा गया कि एक आदमी सात-आठ घंटे में मिट्टी काटने का काम करीब-करीब छह आने, आठ आने से ज्यादा नहीं कर पाता है। वही काम बाहर से आया हुआ आदमी दो रुपये का कर सकता है। इतनी कार्य-शक्ति उनकी आज घट गयी है—कम खाना मिलने के कारण। वहाँ अगर काम करना हो, तो साथ-साथ यह भी खयाल रखना होगा कि आज कम-से-कम जितना भोजन वह पाते हैं, उतना भोजन मिलता रहे। याने एक परिवार में दस आना, बारह आना तक की आमदनी होती रहे। उतना तो उनको मेहनताना मिल ही जाना चाहिए, भले उनसे काम बने न बने, कम बने, ज्यादा बने। और आज तक जितना काम हुआ, उसका हिसाब लगाया गया, तो मुझे लगता है कि ५० फीसदी वे काम से पा सकेंगे और २५ फी सदी उनको रोज की आमदनी में या तो रोजी में सबसाइड करना होगा। उस दृष्टि से हमारी सारी नव-निर्माण की योजना बनानी होगी और उसको कार्यान्वित करने की कोशिश करनी होगी। जो अनादिवासी गाँव हैं, उनमें कारीगर-वर्कर अलग

रहता है। लुहार होता है, बढ़ई होता है, दर्जी होता है। गाँवों में दूसरे-दूसरे लोग होते हैं और खेती करनेवाले लगभग ८०% हैं। आदिवासियों में कोई अलग कारीगर नहीं, वे सभी के सभी कारीगर हैं, या उनमें एक भी कारीगर नहीं है, ऐसा भी आप कह सकते हैं। अपनी आवश्यकता के अनुसार वे खुद अपना मकान बना लेते हैं। बढ़ईगीरी का काम भी करते हैं और खेती तो उनका मुख्य उद्योग है ही। जो काम करना है, वे सभी करते हैं और उनमें सामुदायिक भाव ज्यादा है। ऐसा होते हुए भी हमने कहीं कोऑपरेटिव मार्केट नहीं बनाया, ग्राम-ग्राम में जो ग्राम-सभा बनायी गयी है, उसको एक साल के बाद, दो साल के बाद, सम्भव है, हम कोऑपरेटिव की दिशा में ले जा सकेंगे। लेकिन फिलहाल जितनी उनमें समझ है और उनकी इच्छा के अनुसार वहाँ का संगठन खड़ा हो, इस खयाल से ग्राम-सभा बनायी गयी। एक-एक परिवार को ग्रामसभा का सदस्य किया गया और जितने ग्रामसभा के नीचे आ सकते थे, उतने यानी दस गाँवों को मिलाकरके एक ग्रामसभा बनायी। यह है गाँव की इकाई का संगठन आदि। अब सवाल यह है कि उनकी अभी सालाना आमदनी दो-ढाई सौ रुपये है, प्रति परिवार और एक-एक व्यक्ति के पीछे ४०) सालाना आमदनी आती है। माहवार ३ या ४ रुपये एक व्यक्ति के पीछे हो जाता है। उनको जो खेती मिल गयी है, आज उसमें यदि कुछ सुधार होगा, पानी का इन्तजाम होगा, तो वहाँ इतनी विपुलता है, पानी की, तो संभव है उनकी आमदनी खेती से भी दो-ढाई सौ के बदले ५०० रुपये तक बढ़ सकती है। याने एकड़ के पीछे दो रुपये की आमदनी अच्छी खेती करने के बाद यह कोई असंभव नहीं है; आसान है, उनके लिए भी आसान है। लेकिन उस हद तक वहाँ पहुँचने की आवश्यकता है। अभी जो ४५० गाँवों का बँटवारा हुआ, उसमें मैंने बताया कि ५३ हजार एकड़ जमीन खेती के काम में आयी है और १६१९ एकड़ जमीन सामुदायिक खेती के लिए रखी गयी है। हरएक गाँव की परिस्थिति के अनुसार और ग्रामसभा की इच्छा के अनुसार सामुदायिक खेती के लिए कितनी जमीन रखी जाय, उसका निर्णय उन्होंने ही किया। हम तो उनको बतलाते ही रहते हैं कि १०वाँ हिस्सा सामुदायिक खेती के लिए रखें। लेकिन जमीन की मात्रा

कम से कम जमीन रखी जाती है। साढ़े तीन एकड़ एक-एक गाँव के पीछे जमीन का औसत सामुदायिक खेती में आ जाता है। २० हजार एकड़ जमीन पड़ती है, जो इन गाँवों में खेती के काम में आ सकती है। उस जमीन को तोड़ने का काम किया जाय और अच्छी खेती के लायक जमीन एक-दो साल में बनायी जाय, तो हमारी सामुदायिक खेती में काफी जमीन आ सकती है, बढ़ सकती है। और दसवाँ हिस्सा जमीन गाँव की सामुदायिक खेती के काम में रहे, ऐसी हमारी मंशा है और गाँववालों को भी उस दिशा में सोचने और करने के लिए कहते रहते हैं। वहाँ ६० या ७० इंच बारिश होती है और चार या पाँच महीने बारिश होती रहती है। जब बारिश होती है, तब खूब पानी होता है। यदि उस पानी का उपयोग खेती के काम में किया जा सकता है, छोटे-छोटे नहर बनाये जा सकते हैं, तो खेती की आमदनी भी बढ़ सकती है और आज जिसे वहाँ वेट लैंड कहते हैं, वह भी दो गुना, तीन गुना बढ़ सकती है। जितना आज तक इञ्जीनियर लोगों ने निरीक्षण किया है, उस पर से हमें लगता है कि यदि पाँच या छह साल का प्रोग्राम वहाँ किया जायगा, तो तीस-चालीस हजार एकड़ जमीन पानी के नीचे आ सकेगी और कम-से-कम एक फसल के लिए और उसमें से आधी दो फसल के लिए और दस-एक हजार एकड़ जमीन तीन फसल के लिए पानी के नीचे आ जायगी। यदि इतनी जमीन हमको पानी की खेती के लिए मिल जाती है, तो आमदनी की मात्रा काफी बढ़ जाती है और धीरे-धीरे उसी खेत में से पैदावार बढ़ने की गुंजाइश हो जाती है। देखा है कि यदि ऐसी छोटी-छोटी नहरें बनाना हो, तो औसत खर्चा एक एकड़ के पीछे ५०) से लेकर १००) तक आ जायगा। विपुल पानी होते हुए भी गर्मी के दिनों में वहाँ पानी की वहुत कमी रहती है। आज आप वहाँ चले जायँगे, तो उनको नहाने के लिए पानी नहीं मिलेगा। कहीं गाँव में दो-दो मील जा करके पानी लाना होगा और कपड़े धोने का सवाल वहुत ही कम मात्रा में करता होगा। इसलिए गाँव-गाँव में जहाँ स्वच्छता है, वहाँ कुएँ वनाने का काम हम अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

इस साल १७ गाँवों में कुएँ वनाये गये और अभी काम चालू है। गाँव-सभा

की तरफ से ही कुआँ बनाया जाता है। पचासेक रुपये, साधन, औजार उन्हें दिये जाते हैं और फिर सारा काम गाँववाले ही कर लेते हैं। ८ दिन में, १५ दिन में एक कार्यकर्ता वहाँ पहुँचता है। जितना काम हो गया, इसका गाँववाले हिसाब रखते हैं और उसके अनुसार उनको मजदूरी दी जाती है। कुएँ बनाने का काम सब गाँववाले कर लेंगे, उस दिशा में हमारी कोशिश है। १७ गाँवों में कुएँ बनाये गये, तो संभव है, ८-८, १०-१० कारीगर एक-एक गाँव में लग जायँ और १०-१० कारीगर पीछे एक-एक कुआँ तैयार हो जाता है। तो अगले साल एक कुआँ, दो कुएँ, तीन कुएँ और चार कुएँ तक बनाने की शक्ति उनमें आ जायगी। जिस तरह से गाँव आज बसे हुए हैं, उस तरह से उनमें यदि सामुदायिक काम करना हो, तो आज गुंजाइश नहीं है। इसलिए यह सोचा गया कि जहाँ-जहाँ हमारे केन्द्र बने हैं, वहाँ-वहाँ एक-एक केन्द्र के गाँव में गांधी-घर भी बनें। गांधी-घर को आप 'कम्युनिटी हाउस' भी कह सकते हैं, उद्योग-मंदिर भी उसका नाम रखा जा सकता है। अस्सी फुट की लम्बाई और बारह फुट की चौड़ाई और चारों ओर से इसका बरामदा, ऐसा एक मकान, जिसका दाम दो-ढाई-तीन हजार रुपया हो जायगा, हरएक गाँव में बनाया जायगा। यह हमारी सारी प्रवृत्तियों का मध्यबिन्दु रहेगा या मध्यवर्ती केन्द्र। कार्यकर्ता भी यहीं रहेंगे, बालवाड़ी चलाना हो, तो यहीं चलेगी। पाठशाला आदि का काम यहीं से होगा। चरखे चलाना हो, बुनाई शुरू करनी हो, तो इसी गांधी-घर में चलेगी। सारे उद्योग इस उद्योग-मंदिर के इर्द-गिर्द खड़े किये जायँगे। गाँववाले ये सारे उद्योग करते रहेंगे और अपने गाँव में आमदनी बढ़ाने का जरिया उसके द्वारा उनको पर्याप्त मात्रा में बढ़ेगा। जिले में आज परिस्थिति ऐसी है कि इतना पिछड़ा हुआ भाग होते हुए भी यह सरप्लस जिला माना जाता है। दो-चार लाख रुपये का अनाज भी इस जिले से बाहर जाता है। जंगल की आमदनी भी इस जिले में काफी है। १४ लाख की आमदनी होती है। जंगल की चीजें भी बहुत बाहर चली जाती हैं। ये सारे उद्योग यदि ठीक-ठीक संगठित किये जायँ, तो खेती के अलावा कहीं अधिक बड़े पैमाने पर उद्योग खड़े किये जा सकते हैं और उनको उसीसे आमदनी प्राप्त हो सकती है। भगवान् ने वहाँ सम्पत्ति इतनी दी है कि यदि

ठीक ढंग से ५-१० साल वहाँ काम होता रहे, तो कोई कारण नहीं कि दूसरे देशों जितनी आमदनी उस क्षेत्र में से पैदा न हो। जापान में भी ऐसा ही एक-एक गाँव में तीन गुना, चार गुना जंगल होता है और १६ फीसदी, २० फीसदी जमीन में खेती की जाती है। लेकिन हमारी खेती के अनुपात में वहाँ दस गुनी आमदनी होती है और जंगल का भी उन्होंने उपयोग किया है। जंगल गाँव की मालिकी का होता है। यहाँ भी वहाँ जैसा नया कानून वन रहा है, ग्राम-पंचायत के मातहत यह जंगल रहेगा और यदि उनको धीरे-धीरे जंगल-अभिवृद्धि का प्रोग्राम या कार्यक्रम दिया जा सके, तो जंगल की आमदनी भी काफी वढ़ेगी। वहुत वड़े पैमाने में जंगल का उपयोग उनके सामने आ जायगा।

योजना की दृष्टि से अपेक्षाएँ

वहाँ मुख्य सवाल है, कार्यकर्ताओं की कमी किस तरह पूरी हो? लेकिन जब से हमने देखा कि लिखे-पढ़े लोगों के न होते हुए भी काम चल सकता है, तव हमारे हृदय में अव धीरज पैदा हुआ है कि गाँववालों की तरफ से ही हमें कार्यकर्ता मिलते रहेंगे। उनकी तालीम का प्रवन्ध भी हम कर सकेंगे। एक साल में, दो साल में वे ही अच्छे कार्यकर्ता वन जायेंगे। आज ५ या ६ जगहों पर खेती की शिक्षा का प्रवन्ध हम कर रहे हैं। हरएक गाँव में दसवाँ हिस्सा सामुदायिक खेती के लिए रखा है। यह अन्त में जाकर डिमान्स्ट्रेशन फार्म के रूप में हरएक गाँव में खेत वनेगा। उसके लिए कार्यकर्ता चाहिए। उसी गाँव से कार्यकर्ता इस काम के लिए हमारे पास आयेगा और शिक्षा पाने के वाद अपने गाँव में जाकर खेती के सहारे वहाँ शिक्षण का काम वह अपने हाथ में ले लेगा। यह जो वितरण की शिक्षा है, वह उन्हें आज मिले या भले दो साल के वाद मिले; लेकिन उनके जीवन के जो सारे पहलू हैं, उद्योग है, खेती का उद्योग है, उसकी शिक्षा, यह जो कार्यकर्ता गाँव से हमारे इन छह केन्द्रों में आयगा, उसकी तालीम एक साल पूरा हो जाने के वाद शुरू होगी। अगले साल ४० जगहों में काम कर सकेंगे, क्योंकि उन छह केन्द्रों में चालीस लोग लेनेवाले हैं, जिनकी शिक्षा होगी। और फिर चालीस केन्द्रों में तालीम शुरू होगी। अगले साल हम यह ४०० केन्द्रों में डिमान्स्ट्रेशन चला सकेंगे, ऐसी आशा है।

दूसरा सवाल है कि बड़े पैमाने पर यदि वहाँ रास्ते बनाना हो, छोटी-छोटी नहर आदि बनाने का, इरीगेशन प्रोजेक्ट का काम हाथ में लेना हो, तो उसके लिए इञ्जीनियर या ओवरसीयर जैसे आदमी की बहुत आवश्यकता रहेगी। आज दो इञ्जीनियर हैं हमारे पास, तो उन्हीं लोगों में से ६–८ लड़के हमने ले लिये और गत तीन महीनों से वे इञ्जीनियर के साथ काम करते हैं। तीन महीने के बाद अब ऐसी परिस्थिति आयी है कि वह खुद जा करके सर्वे कर लेते हैं। गुजरात यूनिवर्सिटी से १४ इञ्जीनियर भी वहाँ आये हैं। उन्होंने भी सर्वे का काम हाथ में लिया है। करीब-करीब पाँच हजार एकड़ का सर्वे वे लोग करेंगे। उसमें से अगले साल की याने '५६-'५७ साल की योजना तैयार होगी। और अगस्त से हमारे सर्वे और इञ्जीनियरिंग का स्कूल शुरू होगा। वहाँ के स्थानिक तथा बाहर के लड़के भी वहाँ लिये जायेंगे। और इञ्जीनियरिंग का कोर्स वैसे तो बहुत बड़ा होता है। लेकिन वर्षा के मौसम में उनका क्लास रूम का कार्यक्रम रहेगा। ६–८ महीने वह प्रत्यक्ष काम में, इरीगेशन में, फारेस्ट कन्जरवेशन में, जमीन तोड़ने में, बंडिंग लेवेलिंग में इस तरह का काम करते रहेंगे और फिर पानी के मौसम में शिक्षा के लिए अगले साल आयेंगे। तीन साल उनका कोर्स भी चलता रहेगा। तीन साल में काम भी करते रहेंगे, और ऐसे ५० से ७५ लोग हम देने का सोच रहे हैं, जिनका अभ्यासक्रम १ अगस्त से शुरू होनेवाला है। खेती के लिए जो लिये जायँगे, उनका अभ्यासक्रम १ जुलाई से शुरू होनेवाला है और ग्रामोद्योगों की तालीम देने के खयाल से वहाँ यह योजना बनायी गयी है। जिस गाँव में पहले घानी बनाना हो, उसी गाँववाले लोग आते हैं, आयेंगे। एक महीना, दो महीना घानी के ऊपर काम करेंगे, घानी अपने गाँव में बनायेंगे और वहाँ जाकर चलायेंगे। अभी जब ये मकान बनाये गये, जिनको मैंने गांधीघर कहा, तब आज तक उनको अनुभव नहीं था ईंटें बनाने का, फिर भी ग्राम-सभा की तरफ से ही ईंटें बनायी गयीं। एक अड़ोस-पड़ोस का मिस्त्री खोजा, उसको हमने कह दिया कि लोगों के साथ जाकर दो-चार रोज काम करना है, उनको सिखाना है, भट्ठी लगाना है। तो वह भट्ठी भी लगाने लगे। वे नहीं बना सकते थे, ऐसी उनकी धारणा थी। लेकिन गांधीघर जिले में, गाँव-गाँव में बनाने का काम किया। ईंटें बनाने का काम भी हुआ। आज हमने तीन इंजीनियरिंग रिसर्च

के प्रोजेक्ट हाथ में लिये हैं। वहाँ राज या मेशन काम करता है। तो एक मेशन हमने बाहर से लाया है। और गाँव के पाँच आदिवासी उसके साथ काम करने लग गये हैं। एक योजना हमारी पूरी हो जाती है, तो एक के बदले पाँच मेशन हमारे तैयार हो जाते हैं। अगले साल काम यदि देना हो, तो आज की अपेक्षा पाँचगुना हम काम कर सकेंगे। इस तरह से आदमी की कमी नहीं रहेगी, इस नतीजे पर तीन-चार महीने के अनुभव से मैं आया हूँ। बहुत अन्दाज में मैं था पहले। और हम-जैसों को न राज का काम आता है, न बढ़ईगिरी का काम आता है और न कुछ काम आता है। बोलना आता है और कुछ नहीं आता। फिर हमने सोचा कि न इस क्षेत्र में कारीगर-वर्ग है, न कारीगर-वर्ग बाहर से लाकर काम हो सकता है। कोरापुट जिला उड़ीसा में एक ऐसा माना गया है कि जो शिक्षा के लिए काले पानी जैसा माना गया है। वहाँ कोई अधिकारी नहीं आता था। यदि आता था, तो वहाँ उसको दंड के रूप में भेजा जाता था। ऐसे इलाके में बाहर से लोग भी कैसे आयें? लेकिन अभी तीन या चार महीनों के अनुभवों के बाद हम यह कह सकते हैं कि बाहर के लोगों की कोई आवश्यकता नहीं है। वहाँ स्थानिक लोग तैयार हो सकते हैं और कोई आवश्यकता नहीं है कि उनको लिखना-पढ़ना आना ही चाहिए। यह नया दर्शन है। हम तो समझते रहे कि लिखना-पढ़ना तो थोड़ा आना ही चाहिए, यदि दूकान चलाना हो, यदि हमारा कुछ-न-कुछ काम करते रहना हो। लेकिन अभी जो अनुभव आया, उस पर से दीखता है कि हाथ से अगर कारीगरी आती है, तो वह अच्छा कारीगर बन जाता है, अच्छा कर्मी भी बन जाता है। आज जो भूदान में और बँटवारे में काम कर रहे हैं, उनमें कितने पढ़े-लिखे लोग काम कर रहे हैं? इस तरह स्थानिक लोगों में से ही, आदिवासियों में से ही अच्छे-अच्छे लड़के, जो गाँव की लीडरी कर सकते हैं, ऐसे लड़के और गाँव में हम चले जाते हैं तो हमारे इण्टरप्रेटर का भी काम करते हैं। वह पढ़ा हुआ लड़का नहीं है। फिर भी हमारी भाषा गाँववालों को समझाने का काम उसको करना पड़ता है। क्योंकि कभी शहर में वह चार-छह महीने रहा है और वह टूटी-फूटी उड़िया भाषा बोलता है। आदिवासियों की भाषा अलग है और हमलोगों की भाषा अलग है। आदिवासियों में जितनी जातियाँ हैं, उनकी अलग-अलग भाषाएँ हैं।

आज तीस-चालीस लोग हमारे वहाँ द्विभाषी का काम करते हैं, जिस परिस्थिति में वहाँ का काम आज हो रहा है। लेकिन छोटे-छोटे गाँव, गाँव में सबका सहकार, गाँव के सारे लोग प्रामाणिक और एक दफे बैठ जाते हैं और उनके दिमाग में वह चीज बैठ जाती है या तो वह मंजूर कर लेते हैं, और वह काम कर डालते हैं। जल्दी वह मंजूर नहीं करेंगे। जब उनके साथ हम बातचीत करते हैं और जब वह हाँ-हाँ करने लगें, तो समझ जाना चाहिए कि वह कुछ करनेवाले नहीं हैं। जब वह शान्ति से सुनते हैं और हाँ-हाँ नहीं करते, तब हम समझ जाते हैं कि हाँ, कुछ सोचने की दिशा में उनका मगज काम कर रहा है। बाद में वह बतला देते हैं कि ठीक है, आपने जो कहा है, वह हमने पूरा समझ लिया है। अभी हम आपस में बैठेंगे, फिर शाम को आपको बतला देंगे। कभी पहले आपको नहीं बतलाये, तो हम मानते हैं कि यह जो अलग करके एक साथ विचार करने लगते हैं, तो उनकी तालीम का जरिया खुल जाता है। खुद वह विचार करें और विचार के बाद यह तय करें कि खुद उनको करना है या नहीं करना है। यदि करना होता है, ऐसा उनके जरिये तय होता है, तो जरूर उनकी ताकत बढ़ती है और एक-एक काम वह हाथ में लेते रहेंगे, तो आगे बढ़ते रहेंगे, इसमें शक नहीं। इसलिए समान बँटवारा होने के कारण एक गाँव में आबहवा पैदा हुई है, उत्साह बढ़ गया है। उनमें विश्वास पैदा हुआ है, जाग्रति आयी है, वह सोचने लगे हैं। और आज तक हम कहते थे, एक तो सुनते थे और छोड़ देते थे। उस पर वह विचार भी करने लगे हैं। और यही हमारी वहाँ काम करने की पूंजी है। पैसा आता है और आता भी रहेगा; लेकिन वहाँ की जो पूंजी २० हजार परिवार हैं, उनका मानस यदि हम उस दिशा में नहीं मोड़ सकेंगे, तो आगे हम बहुत कुछ नहीं कर सकेंगे।

मैंने अपेक्षा रखी है कि पाँच साल में गाँव-गाँव में, आज वहाँ पाठशाला नहीं है और सरकार की तरफ से भी छह हजार गाँवों में कोरापुट जिले में सिर्फ दो सौ या चार सौ जगहों पर पाठशालाएँ हैं—तो बिलकुल कोरी पटिया है। लिखना है तो, अब जो भी वहाँ जायगा और लिखने के लिए उसके दिमाग में कुछ होगा, तो लिख सकेगा। अब गाँव-गाँव में पाठशाला बनेगी, यदि दसवाँ हिस्सा जमीन हमारी खेती

के काम में आयेगी, अच्छा खेत तैयार होगा, तो उस खेत के साथ हमारी पाठशाला चलेगी। दो-चार साल के बाद पाँच-छह हजार लड़के जिस खेत के साथ मिली हुई पाठशाला में पढ़ते रहेंगे, उनमें धीरे-धीरे यूनिवर्सिटी तक की तालीम वह पा सकेंगे। भले ही उनकी भाषा में उनकी किताब हो या न हो।

आज हमने एक किताब तैयार करायी है। उड़िया भाषा में उनकी लिपि सीखने के लिए अपने कार्यकर्ताओं के लिए हमने एक गाइड बनाया है। अभी हमारे कार्यकर्ता पहले उनकी भाषा सीखेंगे, फिर उनकी भाषा में किताब लिखने का काम शुरू होगा, फिर उनकी शिक्षा का माध्यम लेकर शिक्षा शुरू होगी। आपका बहुत समय मैंने लिया, लेकिन और भी ज्यादा मैं कह सकता था, लेकिन एक घंटा हुआ और अभी मैं ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। लेकिन मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूँ। और उनकी सच्चाई और श्रद्धा के कारण उन्हें बहुत विश्वास पैदा हुआ है कि यद्यपि वे आदिवासी हैं, पिछड़े हुए हैं, उनमें काम करने की ताकत नहीं है, फिर भी चार-पाँच साल में वे बहुत आगे बढ़ जायेंगे, उनकी हालत भी सुधरेगी। माली हालत सुधरेगी। इतना ही नहीं, लेकिन नैतिक व दूसरी-दूसरी दिशाओं में भी वह आगे बढ़ सकेंगे। परमेश्वर कृपा करे और उस दिशा में ले जाने की शक्ति हमको और आपको दे।

इसके बाद कांग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेबरभाई का भाषण हुआ।

श्री उच्छंगराय ढेबर :

राष्ट्रपतिजी, पू० विनोबाजी, साथियो, बहनो और भाइयो !

आप सुन रहे थे और मैं भी सुन रहा था—अण्णा साहब की बात, कोरपुट के प्रयोग के बारे में। भूदान का काम जिस तरह चल रहा है, उसे उतने आन्तरिक रूप से नहीं जानता हूँ। लेकिन सारे हिन्दुस्तान में घूमता हूँ और देखता हूँ, वहाँ के साथी लोगों से मिलने का मौका मिलता है। इस आन्दोलन का बाहर जो प्रभाव है, उस बारे में कुछ कहूँगा।

दुनिया के प्रत्याघात

किसी चीज की प्रवृत्ति में शुरू-शुरू में कठिनाई होती है। भूदान का आन्दोलन एक जबर्दस्त आन्दोलन है। समाज में एक व्यवस्था चल रही थी।

एक हवा थी, वह एक रास्ते पर चल रहा था। यह कोई छोटा समाज नहीं था। कई करोड़ों का यह समाज रहा है। कोई एक-दो साल से भी यह नहीं चल रहा था। हमेशा से, सदियों से इस रास्ते पर चल रहा था और जिस रास्ते पर जा रहा था, उस रास्ते को शास्त्रकारों का और हुकूमत का कुछ सहारा भी था। जिस तरह एक आदमी जब दूसरे आदमी को काटता है, कत्ल करता है, तब हम उसे खून कहते हैं और उसको सजा मिलती है। लेकिन एक समाज जब दूसरे समाज पर हमला करता है, तो हम उसे खून नहीं कहते हैं, युद्ध कहते हैं। इस तरह हिन्दुस्तान में कहो, सारी दुनिया में कहो, जहाँ समाज-रचना और अर्थ-रचना का सवाल था, कितने ही इस प्रकार के मूल्य माने गये थे।

सारी अर्थ-रचना एक सिद्धान्त पर कायम की गयी थी कि जहाँ तक एक आदमी कानून की मर्यादा में रहकर मुनाफा करता हो—फिर वह कितना भी मुनाफा करता हो, उसको मुनाफे की छूट है। अंग्रेजों का साम्राज्य नहीं था, पैसे का साम्राज्य था और इस पैसे के साम्राज्य के नीचे हम सब दबे थे। भूदान का आन्दोलन इन्हीं तमाम मूल्यों के बदलने का एक आन्दोलन है। चूंकि बड़ी मछली छोटी मछली को खाती थी, तो यह बड़ी मछली और छोटी मछली को समझाने का आन्दोलन है। बापू जब स्वराज्य की लड़ाई लड़ते थे, तब हिन्दुस्तान की अर्थ-रचना की बात कहते थे कि मैं ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त हिन्दुस्तान में लाना चाहता हूँ। बापू का जो स्वप्न था, उस स्वप्न को अमल करने का यह आन्दोलन है। साढ़े चार साल में आप सबने जितनी प्रगति की है, वह देखकर मेरे हृदय में उत्साह बढ़ता है। कांग्रेस ने दो-चार दिन पहले एक किताब निकाली है। भूदान के प्रत्याघात सारी दुनिया में कितने अच्छे हुए हैं, वहाँ तफसील से दिये गये हैं। आप जब पढ़ेंगे इस किताब को, तो आपको पता चलेगा कि दुनिया में एक राष्ट्र नहीं, एक देश नहीं, एक मुल्क नहीं, जहाँ इस प्रवृत्ति का असर न पहुँचा हो। क्यों? इसीलिए कि जहाँ तक दुनिया के, संसार के लोग हैं, वह आज तड़प रहे हैं, उस प्रकार की समाज-रचना के लिए, जहाँ इन्साफ हो, जहाँ सेवा-भावना हो, जहाँ प्रेम हो। बड़े लोगों की बुद्धि तेज होती है, लेकिन इस प्रकार की बुद्धि में हमेशा एक जोखिम रहती है। वह तर्क-प्रधान बुद्धि बन जाती है, लेकिन जन-साधारण की बुद्धि एक सरल बुद्धि होती

है। सरलता से लोग देखते हैं, इसलिए दो युद्धों का उनको परिचय है, अनुभव है। आर्थिक, सामाजिक बाजू तो ठीक है, लेकिन दुनिया का जो नैतिक अधःपतन हुआ है, वह अपनी आँखों से देख रहे हैं। और जनता का जो व्यवहार है, वह न कानून से चलता है, न पुलिस से चलता है, पर नीतिमयता से चलता है। पिता और पुत्र के बीच का सम्बन्ध, पति और पत्नी के बीच का सम्बन्ध, समाज के एक अंग और दूसरे अंग के बीच का सम्बन्ध, यह कोई कानून से नहीं चल सकता। समाज की हस्ती के लिए जिन मूल्यों की आवश्यकता है, पिछले दूसरे महायुद्ध में एक प्रकार का धक्का उन्हें पहुँचा है। तो आज हिन्दुस्तान का समाज कहो, दूसरे देशों का समाज कहो, सब चाहते हैं कि इस प्रकार का मार्ग निकले जिसमें मानवजाति, मानव की हैसियत से रह सके।

मानवता की ओर मानव की दौड़

विनोबा जी ने जो सेवा की है, वह हिन्दुस्तान की जनता की ही नहीं, सारी दुनिया की की है और उन्होंने जो उपाय दिखाया है, जो इलाज दिखाया है, वह इलाज सिर्फ १९५६ साल के लिए नहीं है, २०, २१, २२ वीं सदी के लिए भी है। मानवजाति के लिए आज दूसरा कोई चारा नहीं। जिस रास्ते वह आज जा रही है, उस रास्ते पर चलती ही रहे, तो विनाश के रास्ते ही जायगी। आम जनता का काम करने का तरीका अलग होता है। बड़े-बड़े लोग जब अखबारों में बहस करते हैं, तब छोटे-छोटे लोग अपने ढंग से अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। आज से एक साल पहले हमने देखा कि पाकिस्तान में एक बड़ी बहस चल रही थी। बड़े-बड़े लोग पाकिस्तान की कान्स्टीटयूशनल असेम्बली में सोचते थे कि किस प्रकार का विधान तैयार करें। वहाँ चुनाव आया, जनता ने एक फैसला कर लिया। जिस शख्स ने पाकिस्तान को पाकिस्तान दिलाया, उस शख्स की पार्टी को एक दिन हरा दिया गया। ढाई साल से इंग्लैंड और अमेरिका कुछ दूसरी चीज सीलोन के बारे में सोच रहे थे। कोई मिलिटरी पैक्ट की बात कर रहा था, कोई अन्य चीज की। एक दिन जनता ने फैसला कर लिया कि हमारा इस चर्चा के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। अमेरिका की कुल तैयारी अमेरिका के पास रही, इंग्लैंड की तैयारी इंग्लैंड के पास रही; वहाँ भंडार-

नायक आ गये। आज सारे संसार में जो जाग्रति फैल रही है, वह न एक राष्ट्रनेता के कब्जे में रहनेवाली है, न जनता के। जनता सिद्धान्त की ओर जा रही है। चाहे वह हिन्दुस्तान की जनता हो, चाहे दूसरे देशों की। मानव-जाति को जीना है, मानवजाति को आगे बढ़ना है, मानवजाति को मानवजाति की हस्ती बढ़ानी है, मानवजाति को मानवीय तरीकों से रहना है। तो यह भूदान का आन्दोलन हिन्दुस्तान के लिए ही नहीं है। यह हिन्दुस्तान में ही सीमित नहीं रहनेवाला है। एक व्यापक आन्दोलन बननेवाला है। मैं इस दृष्टि से इस आन्दोलन की ओर देख रहा हूँ।

भूदान का लक्ष्य क्या हो ?

इस आन्दोलन को इस दृष्टि से जब मैं देखता हूँ, तो आपके सामने दो-तीन चीजें रखने की इच्छा होती है। हम जब सोचते हैं, भूदान की समस्याओं के बारे में, तो कभी-कभी हम मामूली प्रयोगों के लिए सोचते हैं। मैं समझता हूँ कि वहाँ तक विनोबाजी समझते हैं और हमको समझाना चाहते हैं कि जो कोरापुट का प्रयोग है, और जो दूसरी जगह चल रहा है, वह एक दृष्टान्त है कि भूदान-क्रान्ति किस तरह चलनेवाली है, आदमी को आदमी किस तरह से बनानेवाली है। भूदान कहो, सम्पत्ति-दान कहो, ग्राम-निर्माण कहो, हमारी क्रान्ति के हथियार हैं, शस्त्र हैं। जितनी कुशलता से इन शस्त्रों का हम उपयोग करेंगे, उतनी हमारी क्रान्ति आगे बढ़नेवाली है। तो सफलता की शर्त क्या हो सकती है। कल जयप्रकाशजी ने दो चीजें कहीं। एक अन्तःशुद्धि की। हम हम सबको उस रास्ते पर जाना है, जिस रास्ते पर बापू हमको ले चले थे। लेकिन इसमें एक जोखिम भी मैं देखता हूँ। जो कुछ भी हम करें, वह स्वाभाविकता से करें। एक हवाई जहाज जब उड़ता है, तब छोटे-छोटे कल-पुर्जे के लिए खयाल रखना होता है। हमारी छोटी-से-छोटी भावना कितनी शुद्ध है, कितनी अशुद्ध है, इसकी हमको जाँच करनी है। एक दूसरी बात। कोई दूसरा क्या करता है, यह हमको नहीं देखना है। मेरा कर्तव्य क्या है, अगर मैं सही ढंग से चलूंगा, मैं कोशिश करूँगा, तो त्रिकोण का एक कोण ठीक हो जायगा और सारा जो हमारा प्रयोग है, ठीक बन जायगा। एक-एक कार्यकर्ता को यह खयाल रखना है कि

विनोबाजी की सारी तपश्चर्या के लिए हम सभी जिम्मेदार हैं। इस तरह से हमको सोचना है। विनोबाजी को हम जमीन ला देंगे, तो वे खुश होंगे, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन विनोबाजी को इससे भी ज्यादा खुशी होगी, जब उनको हम विश्वास दिला देंगे कि जिस ढंग से वे करना चाहते हैं, हम कर रहे हैं। एक दूसरी चीज हमको करनी है। वह चीज यह है कि दिन-प्रतिदिन हमें खुद आगे बढ़ते रहना है। भूदान के मुताबिक हमको जीवन बनाना है। जो अनुबंध का कार्य नयी तालीम में आता है, उसी तरह भूदान का अनुबंध अपने जीवन के साथ लाना है। लेने का युग बदलकर देने का युग दुनिया में शुरू करना है। तो हमको देना सीखना है। हर मिनट, हर क्षण समाज को देने का सोचना है। जिस क्षण हम समाज को नहीं देते हैं, उस क्षण हम समाज के पास से कुछ लेते हैं। एक बैलेन्स शीट हमको बनानी है—हर रोज की, कि आज हमने समाज के पास से कितना लिया और कितना दिया। कार्यकर्ताओं की संख्या की जरूरत है, लेकिन साथ-साथ कार्यकर्ताओं के गुण की भी जरूरत है। मेरा जो कुछ खयाल है, पिछले दो-तीन साल में जितने कार्यकर्ता विनोबाजी को मिले हैं, उतने किसी दूसरी संस्था को राष्ट्र में नहीं मिले हैं। चूँकि यहाँ तो न कोई पद मिलनेवाला है, न कोई ओहदा मिलनेवाला है, फिर विनोबाजी को कार्यकर्ता क्यों मिलते हैं? यहाँ इतनी संख्या में आप क्यों आये हैं और विनोबाजी के पास से क्या लेना है? वे आपको पुस्तकें देंगे, कुछ उपदेश देंगे और आपकी जो सम्पत्ति है, वह छीन लेंगे। फिर भी आपको इतने कार्यकर्ता मिलते हैं, तो इसीलिए मिलते हैं कि विश्व में वायुमंडल क्रान्ति के अनुकूल है, हिन्दुस्तान का वायुमंडल अनुकूल है और बड़े-बड़े, छोटे-छोटे, आदमी भी अनुकूल हैं भूदान के लिए। लेकिन ये कार्यकर्ता मिलने के बाद हमको देखना है कि हमारा जो प्रयोग है, वह मामूली प्रयोग नहीं है। सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रयोग है और किसी भी वैज्ञानिक लेबोरेटरी में सोशयालाजी वह सीख सकता है, वैसा प्रयोग है। तो मुझे विश्वास है कि हम सब कार्यकर्ता विनोबाजी को विश्वास दिलायेंगे कि जिस दृष्टि से वह हमसे काम लेने की इच्छा रखते हैं, वह हमारी कोशिश रहेगी। इतना आपके सामने रखकर मैं बड़े साथियों के सामने दो-तीन चीजें

रखना चाहता हूँ। क्योंकि हमको आम जनता को सामने रखकर काम करना है। आम जनता की शक्ति का भी हमको खयाल करना होगा और आम जनता की मर्यादा का भी खयाल करना होगा।

संरक्षण का प्रश्न

कितनी भी छिपी शक्ति हो आत्म-संरक्षण की, राष्ट्र के संरक्षण की, लेकिन जब तक उसको बाहर न लायें, तब तक हम नहीं कह सकते कि जनता आज अपना संरक्षण कर सकेगी। हिन्दुस्तान को किसी स्वार्थी दृष्टि से नहीं बचाना है; लेकिन हिन्दुस्तान की जनता के प्रति हमारा कर्तव्य है कि उसको हम बचायें। मैं सात साल तक चीफ मिनिस्टर रहा। आज भी मैं नहीं कह सकता हूँ कि रिवाल्वर और राइफल का प्रभाव है। मैं इसकी ओर देखता भी नहीं हूँ, लेकिन जब जनता का सवाल आता है, तो हमें सोचना पड़ता है, जब राष्ट्र का सवाल आता है, तब हमको सोचना पड़ता है। आजादी की रक्षा करना और जनता के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार की रक्षा करना राष्ट्र का धर्म है। हमको आदर्श की ओर भी देखना है और समाज की जो हालत है, उसकी ओर भी देखना है। तो भूदान-क्रान्ति के सिलसिले में हमको यह सोचना है कि शक्ति हम कैसे बढ़ा सकेंगे, अपनी रक्षा करने की और देश की रक्षा करने की। मैं लश्कर बढ़ाने की, घटाने की बात नहीं करता हूँ। मैं, किस तरह जनता में अहिंसात्मक शक्ति पैदा करना, जिससे जनता खुद की रक्षा कर सके और राष्ट्र की आजादी की रक्षा कर सके, इसकी ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। तो दूसरा सवाल हमारे सामने यही है कि हिन्दुस्तान की अर्थ-रचना हो। समाज को बदलने में कुछ समय जानेवाला है। इतने समय में दुनिया में टेक्नॉलाजिकल प्रोग्रेस भी आगे बढ़ रहा है। तो हमारे लिए सोचना जरूरी हो जाता है, क्योंकि हमको दुनिया में रहना है। तो किसी तरह से आर्थिक इन्तजाम समाज का करें, जिससे हम कमजोर न रहें। एक तीसरा सवाल है कि हमारे देश में लोग अपने दिमागी आदर्शों के बड़े-बड़े सपने रखते हैं। लेकिन विचार और आचार में इतना अन्तर रहता है और आज नहीं, हमेशा हिन्दुस्तान में रहा है, यह जो हमारा दोष है, कमजोरी है, इसको निकालना है। आज भूदान-आन्दोलन की ओर, भूदान-प्रवृत्ति की ओर

जनता श्रद्धा के साथ देख रही है। जनता की जो संस्कृति है, उस संस्कृति के अनुकूल यह आन्दोलन है। समझने में आसान है और आचार में भी आसान है। फिर भी जनता दो-तीन बातों की ओर देखती है, तो कभी-कभी जनता द्विविधा में पड़ जाती है। आज जो लोग युद्ध में आगे बढ़े हैं, युद्ध की सामग्री में आगे बढ़े हैं, वह लोग भी समझते हैं कि युद्ध बेकार चीज है। लेकिन जब पाकिस्तान को शस्त्र मिलते हैं अमेरिका की ओर से, तब भूदान में पड़े लोगों को छोड़कर बाकी के लोग यह सोचने लग जाते हैं कि हम कमजोर क्यों रह जाते हैं, पंडितजी क्यों नहीं लश्कर बढ़ाते हैं ? इस तरह जब पाकिस्तान आर्थिक समृद्धि बढ़ाता है, पिछले साल में उन्होंने काफी काम किया है, पैदाइश ठीक बढ़ी है, तब हिन्दुस्तान की जनता भी सोचने लग जाती है कि अमेरिका कल पाकिस्तान को इतना तैयार कर देगा तो हमारा क्या होगा ? तो इस तरह जब आचार की बात आती है, तब हम कार्यकर्ताओं की ओर देखते हैं। तो कार्यकर्ता कितनी ही बातें करें, लेकिन अपना जो जीवन का रवैया था, वह बदल नहीं सकते हैं । चूँकि विनोबाजी के अन्दर विश्वास है, इसीलिए हमसे काम लेते हैं, बाकी जनता के जीवन में और हमारे जीवन के बीच में काफी अन्तर है।

कांग्रेस का आश्वासन

तो इन तीन सवालों का उत्तर हमें जनता को देना है। और व्यावहारिकता, वैज्ञानिक ढंग से देना है। कोई हवा में नहीं देना है। मुझे विश्वास है कि हम आगे के समय में दो-तीन सवालों पर सोचने की कोशिश करेंगे। मैं आप सबको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ, कांग्रेस की ओर से और पंडितजी की ओर से भी, कि इस भूदान आन्दोलन की ओर हम उतनी ही दिलचस्पी रखते हैं, जितनी आप सब लोग रखते हैं। जो काम विनोबाजी भारतवर्ष के लिए और भारतवर्ष के द्वारा विश्व के लिए कर रहे हैं, एक दूसरे ढंग से वही काम पंडितजी कर रहे हैं विश्व-शान्ति का दुनिया के लिए। आपने देखा होगा कि तीन दिन के पहले उन्होंने लोकसभा में एक बयान दिया अलजीरिया के लिए। अलजीरिया की शान्ति के लिए जो आदमी दिलचस्पी रखता हो, उस आदमी के बारे में हम क्या

कह सकते हैं। दुनिया में किसी जगह पर बड़ा संघर्ष होता है, तो पंडितजी हिल जाते हैं। मानव-दया से उनका हृदय भरा है, तब भूदान की ओर वे क्योंकर दुर्लक्ष्य कर सकते हैं, जब कि जिस प्रवृत्ति से इतना फायदा हो रहा है। एक दृष्टि से विश्व-शान्ति का काम भूदान का काम है और मैं कह सकता हूँ, दावे के साथ कि जितनी चिंता, जितनी फिकर विनोबाजी कर रहे हैं इस भूदान की, उतनी ही पंडितजी कर रहे हैं विश्व-शान्ति की। हमारे बीच में आज राष्ट्रपति पधारे हैं। दो दिन से, तीन दिन से ३६ करोड़ जनता आपके सामने बैठी है। क्यों बैठी है भाई? इसीलिए कि वह समझती है कि हिन्दुस्तान की जनता के उत्थान का, एक नयी क्रान्ति का काम यहाँ हो रहा है। अगर मैं थोड़ा-सा बीच में नहीं आया होता, तो आज वे भूदान में दाखिल हो गये होते। लेकिन मैं बीच में इसीलिए आया कि एक दिन जो हमारे राष्ट्रपति हैं, जिनके हृदय में बापू की क्रान्ति के लिए और बापू के हर काम के लिए इतनी इज्जत, इतना आदर, इतना प्रेम है, वे वहाँ भी बैठे हैं, तो इस काम को इज्जत मिलती है और शान बढ़ती है काम की। हमारे देश में बापू के तीन परम शिष्य हैं। एक राष्ट्रपति के स्थान पर बैठकर काम कर रहे हैं, देश में एक संस्कार का प्रभाव देने का। एक प्राइम मिनिस्टर की हैसियत से विश्व-शान्ति का कार्य कर रहे हैं और एक हमारे बाबा हैं, जो हमारा नव-संस्करण कर रहे हैं। जिस मुल्क में इस प्रकार की तीन शक्तियाँ हों, उस मुल्क को फिक्र रखने की जरूरत नहीं है। भारत की जनता का भाग्य बड़ा है। हमेशा उसकी विजय रहेगी।

इसके बाद सर्व-सेवा-संघ के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने सर्व-सेवा-संघ द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव सम्मेलन को पढ़ सुनाया :

सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव

"दुनिया आज अहिंसा की दिशा में प्रगति कर रही है। विज्ञान ने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी है कि दुनिया को अहिंसा को स्वीकार किये बिना चारा नहीं है। लेकिन जब कि एक तरफ विश्वशांति के लिए सभी उत्सुक दीखते हैं, तब दूसरी ओर से सक्रिय अहिंसा में विश्वास ठोस रूप से पैदा होना बाकी है। बड़ी हिंसा पर से श्रद्धा उठ गयी है, लेकिन समाज में छोटी-छोटी हिंसा पर अब भी श्रद्धा दीख रही है । इसीलिए इन दिनों बार-बार फुटकर हिंसा के प्रयोग होते दीख रहे हैं। बिलकुल छोटे कारणों से जनता के कई वर्ग हिंसा के मार्ग अख्तियार करते हैं और उनको रोकने के लिए सरकार भी अक्सर हिंसा का आधार लेती है। यह जाहिर है कि हमें यदि अहिंसक समाज प्रस्थापित करना होगा, तो छोटी-बड़ी दोनों प्रकार की हिंसा को रोकना होगा। इसके लिए कार्यकर्ताओं को सजग रहना चाहिए, हमारी रोजमर्रा की समस्याओं का अध्ययन करना चाहिए तथा इसकी कोशिश करनी चाहिए कि अपने इर्द-गिर्द हिंसा का कोई प्रसंग उत्पन्न न हो। ऐसे प्रसंग हो जाने पर उनको रोकने के लिए अपने प्राण समर्पण करने तक की तैयारी रखनी चाहिए।

"परन्तु अहिंसा की प्रतिष्ठापना के लिए स्थायी उपाय समाज के आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रवेश करने का है। ऐसी विधायक अहिंसा की योजना गांधीजी की कल्पना के स्वराज्य में थी।

"भूदान-यज्ञ ने गांधीजी की कल्पना के स्वराज्य के लिए रास्ता खोल दिया है। पाँच साल के हमारे अनुभव ने सत्य, अहिंसा पर अधिष्ठित शोषणहीन और शासन-मुक्त समाज की ओर अग्रसर होने के लिए जो कदम उठाये जा सकते हैं, उसके कुछ उत्तम नमूने पेश किये हैं और यह सिद्ध किया है कि यदि जनता इस कार्यक्रम को उठा ले, तो १९५७ तक अहिंसक क्रांति हो सकती है।

"बिहार में २४ लाख एकड़ भूमि-प्राप्ति से यह सिद्ध हुआ कि अहिंसा से एक प्रान्त की भूमि-समस्या काफी हद तक हल हो सकती है। उड़ीसा के संख्या-बद्ध ग्रामदान ने जमीन की मालकियत की जड़ें हिला दी हैं। कुछ स्थानों पर

ग्रामजनों द्वारा स्वयं-प्रेरणा से किये गये भूमि-वितरण ने हमें बँटवारे की कुंजी दे दी है। मध्यप्रदेश में सघन कार्यक्रमों ने यह नमूना पेश किया है कि सामान्य कार्यकर्ता भी सामूहिक प्रयत्न से भूमि-प्राप्ति, वितरण आदि के कार्यक्रम को सफलता से पूरा कर सकते हैं।

"अब हमारा ध्यान समग्र नव-निर्माण द्वारा गांधीजी की कल्पना के ग्रामराज के नमूने पेश करने की ओर है। इस वर्ष की भूदान-आन्दोलन की मुख्य घटना, उड़ीसा के ग्रामदानों ने इसकी उचित भूमिका तैयार कर दी है। हमारे नये समाज में व्यक्ति और समाज, दोनों का परिवर्तन होगा। उसमें व्यक्ति अपनी सारी शक्ति समाज की सेवा में समर्पण करेगा और समाज-रचना ऐसी होगी कि जिससे व्यक्ति को पूर्ण विकास का अवसर मिले। इस समाज का अधिष्ठान जनता की सत्याग्रह-शक्ति होगी तथा इसकी जड़ में आर्थिक स्वावलंबन, अहिंसक संरक्षण, मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के उद्देश्य से उत्पादक उद्योगों का संयोजन, ग्रामों की न्याय-व्यवस्था तथा समाज को निरंतर अहिंसा की ओर ले जानेवाला शिक्षण यानी नयी तालीम होगा।

"अब जबकि इस प्रकार की अहिंसक समाज-रचना के लिए अनुकूल भूमिका पैदा हो गयी है, हमें अपनी शक्ति एक ओर से ग्रामराज-निर्माण में तथा दूसरी ओर से सर्वोदय के इस संदेश को भारत के गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचाने में लगानी चाहिए। इसलिए भूदान के प्रचार-कार्य में खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम आदि सारे रचनात्मक कार्यों के प्रचार का समावेश होना चाहिए। उसी प्रकार देश में रचनात्मक काम करनेवाली भिन्न-भिन्न संस्थाओं तथा व्यक्तियों को अपनी सारी शक्ति भूदान-यज्ञ द्वारा उत्पन्न होनेवाले देश के नव-निर्माण के काम में लगानी चाहिए। हम आशा करते हैं कि हमारी यह अपील सर्वोदय-प्रेमियों को हृदयग्राह्य होगी।

"यह स्पष्ट है कि सिर्फ कार्यकर्ताओं के संगठन द्वारा और संस्था द्वारा कोई क्रांति लोकव्यापी नहीं हो सकती। जनता जब अपने आप इस प्रेममयी क्रांति-शक्ति को उठा लेगी, तभी देशभर में भूमि का उचित वितरण हो सकता है तथा अहिंसक समाज-रचना की व्यापक बुनियाद डाली जा सकती है। जनता

यदि स्वयं इस काम को उठा ले, तो देशभर में एक ही दिन भूमि का वितरण हो सकता है। इस प्रकार नये अहिंसक समाज के लिए बहुत बड़ा कदम उठाया जा सकता है। अब यह कोई सिद्ध करने की बात नहीं रही है कि भारत की जनता अहिंसा के लिए अनुकूल है। हमें अपने काम को ऐसा बनाना चाहिए कि वह जनगण-हृदय को स्पर्श करें और समाज के सारे स्तर अपने भीतर पैठी हुई मालिकी और मिल्कियत की भावना को खतम कर अपना सर्वस्व समाज को समर्पण करें। सर्व-सेवा-संघ की भूमिका हमेशा लोकनिष्ठ रही है, इसलिए कोटि-कोटि जनता से आग्रह के साथ वह निवेदन करता है कि वे सर्वोदय के स्वप्न को साकार करनेवाले इस भूदान-कार्यक्रम को अपनाकर देश में अहिंसक समाज-रचना की स्थापना द्वारा विश्वशांति की सच्ची राह दिखायें।"

प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करते हुए श्री धीरेन्द्र भाई ने कहा :

इस प्रस्ताव के तीन हिस्से हैं : (१) समस्या के निराकरण का उपाय, (२) विश्वशांति के आन्दोलन की दिशा और उस आन्दोलन की प्रगति और (३) सर्व-सेवा-संघ और जनता को क्या करना है, हमारा आखिरी कदम क्या हो सकता है? दुनिया की सारी समस्याओं का समाधान अहिंसा से ही करना है। इस वैज्ञानिक युग में यह सिद्ध हो गया है कि हिंसा से समाधान नहीं हो सकता। फिर भी हम यह देखते हैं कि युद्ध के नियोजन में राष्ट्र की आधी आमदनी खर्च कर डालते हैं। संसार में युद्ध कोई नहीं चाहता। दुनियाभर को शान्ति की खोज है, लेकिन नियोजन युद्ध का है। युद्ध न करने का संकल्प करके युद्ध के नियोजन में सारी शक्ति लगा रहे हैं। ऐसा क्यों? लोग न तो पागल हैं, न बेवकूफ ही। अब लोगों को यकीन हो गया है कि हिंसा में ताकत नहीं है। लेकिन उसकी जगह कोई दूसरी ताकत उन्हें मिल नहीं रही है। अभी यह भरोसा नहीं हुआ है कि हिंसा से अधिक ताकत अहिंसा में है। शून्य की स्थिति तो नहीं रह सकती। हिंसा को अगर छोड़ना है, तो उसकी जगह दूसरी ताकत हासिल होनी चाहिए। आज हिंसा पर विश्वास नहीं, अहिंसा पर श्रद्धा नहीं। इस तरह अधर में लटक रहे हैं। अतः युद्ध को छोड़ने की हिम्मत नहीं करते। यह हिम्मत दिलाने की जरूरत है। वह कौन दिलाये? निःसंदेह वही, जो दुनिया में अहिंसक समाज का निर्माण करने

का दावा करता है। अतएव भारत की ओर नेतृत्व के लिए दुनिया ताकती है। भारत की यह जिम्मेवारी है कि वह खुद वड़े-वड़े शस्त्र छोड़ दे। भारत की सरकार दुनिया को सलाह दे कि वह शस्त्रास्त्र छोड़ दे। भारत सरकार को ऐसी हिम्मत दिलाने की शक्ति यहाँ की जनता में होनी चाहिए। लेकिन वह तो छोटी-छोटी हिंसाओं में उलझ जाती है। खड़गपुर में क्या हुआ? समस्या क्या थी? रेल विभाग से कुछ माँगें थीं। उनको पूरी करने के लिए हिंसा का तरीका अपनाया गया। फिर वाहर अहिंसा कैसे चलेगी? हम वाहर के मामले में तो सत्याग्रह की वात करते हैं, मगर घर में हिंसा करते हैं। विदेशों के साथ अहिंसा और स्वदेश में हिंसा साथ-साथ कैसे चलेगी? इस दृष्टि से विचार ही नहीं, संगठन भी करना चाहिए। अन्यथा जहाँ क्षुद्र हिंसा का प्रकोप वढ़ रहा हो, वहाँ अहिंसा के उपाय का प्रयोग कैसे हो सकता है? आप लोग इसका विचार करें।

प्रस्ताव के दूसरे हिस्से में कहा गया है कि सन् '५७ तक क्रांति पूरी करनी है। समय थोड़ा है, लेकिन माँग भी छोटी-सी है। भूमिहीनों को भूमि दीजिये, इस आवाहन से आकर्षण पैदा हुआ। छठे हिस्से के दान से आन्दोलन शुरू हुआ और अव स्वामित्व-विसर्जन की घोषणा तक पहुँचे हैं। विहार ने २५ लाख एकड़ भूमि इकट्ठी करके यह सावित किया कि अहिंसा के मार्ग से यह काम हो सकता है। उत्कल के ग्रामदान ने यह प्रमाणित किया कि स्वामित्व-विसर्जन भी हो सकता है। अव अगला कदम उठाने की जरूरत है। वह कदम है, अहिंसक ग्रामराज्य की स्थापना। सर्वोदय-समाज की वुनियाद ग्रामराज्य है। अहिंसक समाज शासनमुक्त ही होता है। लेकिन शासन के निराकरण से पहले शासन के संविभाजन की जरूरत है। शासन के संविभाग के लिए ग्रामराज्य की स्थापना आवश्यक है। इसलिए भूदान-कार्यकर्ता अव ग्राम-निर्माण के कार्य में लगने की तैयारी करें। यह ग्रामराज्य लोक-शक्ति से कायम हो।

लोग पूछते हैं कि आज जगह-जगह ग्रामपंचायतें तो हैं ही, अव यह ग्रामराज्य की वात क्या है? पंचायती राज्य में ग्रामराज्य का कोरा खाका होता है, यह ग्रामराज्य राष्ट्रीय राज्य का एक हिस्सा है। वह वास्तविक नहीं है। राज्य वास्तव में उसका होता है, जो यह निर्णय कर सके कि किसकी कितनी जिम्मेवारी

होगी। यह निर्णय करना अगर राष्ट्र के हाथ में हो, तो दूसरी सारी इकाइयाँ राष्ट्रीय राज्य का भाग हो जाती हैं। अगर ग्राम यह निर्णय कर सके कि पंचायत, जिला-समिति, प्रादेशिक राज्य और मध्यवर्ती राज्य का परस्पर संबंध क्या हो, तो वह वास्तविक ग्रामराज्य होगा।

इस तरह हमारी जिम्मेवारी बढ़ गयी है। हमें एक ऐसे अहिंसक समाज के निर्माण का आयोजन करना है, जिसमें ग्राम सार्वभौम होगा और ऊपर की इकाइयाँ उस पर अवलंबित रहेंगी। इसका आधार जनशक्ति होगी, जो फौज और पुलिस की ताकत से भिन्न होती है। आजादी की लड़ाई में हमने अहिंसक साधनों का प्रयोग किया, लेकिन अब हमें राज्य-शक्ति की जगह अहिंसक जनशक्ति की बुनियाद पर नये समाज की रचना करना है। आशा है, भारत की जनता इस आखिरी पराक्रम के लिए जो आहुति देनी है, उसके लिए तैयार रहेगी।

इसके बाद राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी का भाषण हुआ।

राजेन्द्र बाबू :

पू० विनोबाजी, अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

मैं कई वर्षों से आपके वार्षिक सम्मेलन में आया करता हूँ और कुछ देर के लिए शरीक हुआ करता हूँ। इस वर्ष और वर्षों से कुछ अधिक समय दे सका हूँ, इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता है। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि पिछले दो दिनों में यहाँ भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत-कुछ सुन सका हूँ और जान सका हूँ। मैं भूदान, सम्पत्ति-दान, श्रम-दान, बुद्धि-दान, दान ही दान की बात सुनता आ रहा हूँ। आप क्षमा करेंगे। मैं कुछ देने नहीं आया हूँ। कुछ लेने आया हूँ। मैं आशा करता हूँ कि कुछ थोड़ा-सा सम्बल यहाँ से ले जाऊँगा, जिससे कुछ दिनों तक काम कर सकूँगा। पहले से भी मेरा विचार था और दो दिनों में जो कुछ भी सुना, उससे यह विचार और भी दृढ़ हो गया है। वह विचार यह है कि यह आन्दोलन एक अत्यन्त क्रान्तिकारी आन्दोलन है। बहुत क्रान्तियाँ संसार में देखी हैं, मगर यह क्रान्ति एक विचित्र क्रान्ति होनेवाली है। इस क्रान्ति का फल जितना क्रान्तिकारी है, इसका तरीका भी उतना ही क्रान्तिकारी है।

आज तक दुनिया में हम अक्सर एक ही वात सुनते आये हैं कि किस तरह से यह चीज हमारी हो जाय, किस तरह से वह चीज हमें मिल जाय। व्यक्ति यह सोचता है कि कैसे वह अधिक धनी हो जाय, कैसे अधिक सम्पन्न हो जाय। राष्ट्र और देश सोचते आये हैं कि किस प्रकार से वह राष्ट्र या देश अधिक सम्पन्न हो जाय और अगर दूसरे तरीके से न हो सके, तो दूसरे देश को अपने हाथ में लेकर भी अधिक सम्पन्न होना चाहिए। इस आन्दोलन में आप लेने की वात नहीं, देने की वात करते हो। आपने भूमिदान प्राप्त किया, आपको ग्राम-दान मिले। अव आप सम्पत्ति-दान और श्रमदान पर लगे हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि लोगों से स्वेच्छा से आप सव-कुछ दिलवाना चाहते हैं। आप किसी की मर्जी के विरुद्ध उससे कुछ लेना नहीं चाहते। मैं समझता हूँ और आशा करता हूँ कि कानून के जरिये से भी आप किसी से कुछ लेना नहीं चाहते। आपको लेने की जरूरत भी नहीं है। जो अनुभव आपको हुआ है, यह ऐसा विचित्र और ऐसा अनुप्राणित करने वाला अनुभव हुआ है कि उसके वल पर आप सव-कुछ माँग सकते हैं। इसलिए मैं चाहूँगा कि आपका यह सारा काम उसी तरह से विना सरकार या शासन की सहायता से चलता रहे।

भू-वितरण और सरकारी प्रयत्न

अभी तक भारतवर्ष में भी सरकार ने जो कुछ काम इस तरह से किया है, उसमें वह लोगों से उतनी जमीन नहीं ले पायी है, जितनी जमीन आपको लोगों ने स्वेच्छा से दी है। इसलिए केवल भारत के सामने ही नहीं, संसार के सामने एक वहुत वड़ा महत्त्व का प्रश्न आज उपस्थित है। हम सव चाहते हैं कि हमारे जीवन का स्तर ऊँचा हो। भारत ऐसे देश में, जहाँ इतनी गरीवी फैली हुई है, जहाँ सव लोगों को भरपेट खाने को नहीं मिलता हो, न सवको कपड़े मिलते हैं, न सवको रहने के लिए स्थान है, इस प्रकार की चालना स्वाभाविक है। इसलिए यदि हमारी सरकार का ध्यान इस ओर गया और उसने इस वात पर जोर दिया कि लोगों के जीवन के स्तर को ऊँचा, सभी आवश्यकताओं को पूरा करके वढ़ाया जाय, तो कोई आश्चर्य की वात नहीं है। यह उतना ही आवश्यक था, जितना अनिवार्य था।

एक खतरा

पर इसमें जो एक खतरा है, उस पर ध्यान रखना चाहिए। जरूरी चीजों को पूरा कर देना एक बात है और उस जरूरत पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं रखना दूसरी बात है। उस जरूरत को बड़े ठिकाने तक बढ़ाते जाना और ऐसा कहना कि हम उसको पूरा कर सकेंगे, यह भी एक बहुत बड़ी बात है, जो हमारे सामने दूसरे देश हैं, जिनका इस माने में जीवन का स्तर हमसे कहीं ऊँचा है, हम वहाँ तक आज शायद पहुँचना चाहते हैं। पर वह देश और ऊपर उठना चाहते हैं और मुमकिन है कि जिस समय तक हम वहाँ पहुँचें, वह और आगे बढ़ जायँ। इस तरह से इसका कोई अन्त नहीं हो सकता। हमको यह आज सोच लेना है कि जीवन के स्तर को हम कहाँ तक ऊँचा करना चाहते हैं, उसकी क्या मर्यादा रखना चाहते हैं, इसका कुछ-न-कुछ आज ही विचार करके हम निर्धारित कर लें।

यह आग कैसे बुझे ?

अगर सच पूछिये तो जैसे-जैसे हमारी जरूरतें बढ़ती जायँगी और उनकी पूर्ति होती जायगी, वह जरूरतें और बढ़ती जायँगी। यह आग की भूख घी से हम नहीं बुझा सकते। इसके लिए हमें कहीं-न-कहीं पानी ढूँढ़ना पड़ेगा और जो आपका भूदान का आन्दोलन है, वह हमको पानी दे सकता है। मैं इसीलिए इस आन्दोलन को इतना महत्त्व देता हूँ। आज हम इस तरह से एक रास्ते पर बहते चले जा रहे हैं, संसार में आज से सौ,डेढ़ सौ, दो सौ वर्ष पहले भाप का ईजाद हुआ, उसके बाद जल आया, अब अणुबम के जमाने में अणु-शक्ति भी आ रही है। जो देश आज अपने को उन्नत करना चाहता है, वह उस समय को वापस जाना नहीं चाहता है, जब कि जल और भाप नहीं थे। अगर हो सका, तो वह तो अणुशक्ति को ही अपने हाथ में करना चाहेगा और जिस अनुपात में भाप और जल, अणुशक्ति बढ़ेगी,उसी अनुपात में हमारी इच्छाएँ भी बढ़ती जायँगी। और बिना उस शक्ति के उपयोग के हमारी इच्छा शायद पूरी न हो सकेगी। यदि हम उस इच्छा की पूर्ति कर सके और किसी प्रकार का झगड़ा और फिसाद न पैदा हुआ, तो अच्छा ही है। पर मालूम नहीं कि

ऐसा हो सकेगा या नहीं। इसलिए हमको इस चीज के लिए तैयार रहना चाहिए कि कहाँ तक और कैसे इस झगड़े को मिटा सकते हैं। इस समय जो सारे संसार में झगड़े देखने में आते हैं, वह उन जरूरतों के स्तर के सम्बन्ध में ही हैं। जिसके पास कम साधन हैं, वह अधिक साधन प्राप्त करना चाहता है, और जब दो देशों या राष्ट्रों में आपस में इस प्रकार से होता है, तो वह भयंकर रूप धारण कर लेता है। इस अग्नि को जहाँ तक हो सके, आरम्भ में ही काबू में करने का प्रयत्न होना चाहिए। और वह अपरिग्रह के सिद्धान्त को स्वीकार करने से हो सकता है। भूमिदान, सम्पत्ति-दान, जो भी दान आप चाहते हों, सबका जड़ में अपरिग्रह है। इस अपरिग्रह पर जोर दिया जाय और सारे संसार के सामने यह आदर्श रखा जाय तो सबसे बड़ा काम हमारा होगा और सबसे बड़ी सेवा मानव-जाति की होगी। दूसरे देशों के भी विचारशील लोग इस प्रकार से आज सोच रहे हैं। उससे भी स्पष्ट होता है कि भूमिदान में उन्होंने कितना रस लिया है। इसमें आश्चर्य नहीं होता कि विदेश के लोगों ने भी, जो आन्दोलन यहाँ चल रहा है, उसकी प्रवृत्ति को बड़े चाव से देखा है और उस पर विचार किया है।

क्रांतिकारी आन्दोलन

मैं आशा करता हूँ कि आपका काम ठीक तरह से चलता जायगा और दिन-प्रतिदिन अधिक प्रगति करता जायगा। जिससे केवल इसी देश में नहीं, बल्कि विदेशों में भी लोग अधिक चाव से समझें। अपरिग्रह केवल अकेले नहीं आ सकेगा। उसके साथ-साथ दूसरे भी नियम हमको चाहिए और संयम चाहिए। और उसी चीज पर कल आपके सामने बड़े जोरों से ध्यान दिलाया गया था। यह एक ऐसा आन्दोलन है, जो मनुष्य के, मानव के सारे जीवन को उलट-पुलट करनेवाला है। मैं इतनी ही आशा कर सकता हूँ कि जो कुछ आप कर रहे हैं, इसका असर सारे देश पर दिन-प्रतिदिन होता जायगा। यदि आपके कार्यक्रम को गवर्नमेंट स्वीकार करके अपना कार्यक्रम न बना ले, तो उससे न तो आपको असंतोष होना चाहिए और न घबड़ाना चाहिए। बड़े-बड़े काम संसार में सरकारों द्वारा नहीं होते हैं, गैरसरकारी लोगों और संस्थाओं द्वारा होते हैं। भगवान् बुद्ध राज छोड़कर ही संसार को अपनी शिक्षा

दे सके। न तो क्राइस्ट राजा थे और न पैगम्बर मुहम्मद। हमारे देश में और हमारी संस्कृति में जो कुछ भी आज हमें मिलता है, वह राजाओं का दिया हुआ नहीं, वह साधू, ऋषियों का दिया हुआ है। इसलिए आप उसी काम को आज आगे बढ़ा रहे हैं, जिसको हमारे ऋषियों-मुनियों ने किया था और उसी आशा से, जिस तरह उनकी कृति आज भी हजारों क्रान्तियों के बाद भी कायम है, आपकी भी कायम रहेगी। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप अपने काम को निःसंकोच करते जायँ, इसका फल होगा और देश के लिए और संसार के लिए बहुत सुखद फल होगा। मैं यही लेकर यहाँ से जाऊँगा।

[श्री राजेन्द्र बाबू के भाषण के बाद सर्व-सेवा-संघ के मंत्री, श्री सिद्धराज ढड्ढा ने विश्व-शान्ति-संघ की अखिल भारतीय शान्ति-समिति का संदेश पढ़कर सुनाया।

तत्पश्चात् सम्मेलन के अध्यक्ष श्री अप्पासाहब पटवर्धन ने अपना अंतिम भाषण किया।]

श्री अप्पासाहब पटवर्धन :

भाइयो और बहनो,

समारोप का भाषण मुझको करना है, ऐसा फरमाया गया है। वैसे तो ऐसे जलसे में, सर्वोदय-समाज के सम्मेलन में, अध्यक्ष की कोई जरूरत नहीं रहती है, न मार्ग-दर्शन के लिए, न सभा-संचालन के लिए। हम तो सत्ता-निरपेक्ष समाज की स्थापना करना चाहते हैं, तो ऐसी सभा में संचालन की बात आसान होती है। मार्ग-दर्शन के वास्ते हमारे दूसरे बुजुर्ग लोग तो हैं ही। ऐसे अध्यक्ष का पहले से एक रवैया पड़ गया है कि सम्मेलन के वास्ते एक अध्यक्ष चाहिए। तो मुझको अध्यक्ष किया गया और मैंने यह स्वीकार किया।

हमारी धार्मिक विधियों में हर किस्म की विधि हो, तो भी पहले गणपति-पूजन ही करना पड़ता है। तो गणपति की अध्यक्षता में कहो, उपस्थिति में कहो, सब विधि बनती है। इस गणपति की प्राण-प्रतिष्ठा तो हुई, लेकिन उसके विसर्जन का काम उसी पर ही सौंपा गया है।

मैंने अपने पहले भाषण में कहा था कि पिछले साल हमको आदेश मिला काम

के बारे में और मैं चाहता था कि '५७ के आखिर तक लगातार काम करता रहूँगा। लेकिन तीन दिनों की चर्चा-भाषणों के बाद, इस जलसे के बाद, मैं यह भी महसूस करता हूँ कि ऐसे सम्मेलनों के कार्यकर्ताओं के वास्ते जरूरत रहती भी है। यह भूदान-यज्ञ का काम एक आरोहण है, ऐसा बाबा बराबर कहा ही करते हैं। यह भूदान-यज्ञ का हिमालय चढ़ते-चढ़ते हम थक भी जाते हैं। आगे का भी इतना पहाड़ चढ़ जाने का है, वह देखकर हमारे कलेजे दब भी जाते हैं। ऐसे मौके पर कुछ ठहरकर सिंहावलोकन करने की, यह देखने की कि हम कितना चढ़ आये हैं और कुछ आराम करने की आवश्यकता होती है। यह भूदान-यज्ञ का गौरीशंकर तो बहुत ऊँचा है और चढ़ते-चढ़ते हमारा दम निकलनेवाला है। लेकिन जैसे एक तेनसिंह शेरपा हमारे में से ही निकला, जो गौरीशंकर चढ़ गया, वैसे दूसरा भी एक नायक, नैतिक आवाहन करने वाला नायक मिल गया है और हमको अगले साल-डेढ़ साल में जो आरोहण का बाकी हिस्सा शेष है, उसको चढ़ जाना है। मित्रों से और साथियों से मैं इतना ही इशारा करता हूँ कि हम खूब चढ़ आये हैं, थोड़ा ही चढ़ना बाकी है। हम थोड़ा उत्साह ले लें और बाकी का चढ़ाव पूरा करने का दृढ़ संकल्प करें।

इस भाषण के अनन्तर सभामंडप में ही नित्य की सायं-प्रार्थना हुई और विनोबाजी ने सम्मेलन का उपसंहारात्मक प्रवचन दिया।

श्री विनोबा :

अब हममें से बहुत-से लोग एक वर्ष तक एक-दूसरे से मिलेंगे नहीं। साल भर में एक दफा हमको मिलने का प्रसंग मिलता है। हम लोग अक्सर काम में लगे होते हैं, इसलिए काम छोड़कर यहाँ आने की इच्छा भी कुछ कम रहती है। लेकिन अभी अप्पासाहब ने जो कहा, वह आप लोगों ने सुना है। उन्होंने कहा कि यहाँ पर आने से और यहाँ की बातें सुनने से कुछ लाभ हुआ है। हमको बहुत खुशी है कि इस प्रकार का अनुभव हमको यहाँ होता है। मैंने भी इस सम्मेलन का कुछ निरीक्षण किया। दो-चार सम्मेलनों में लगातार हम देखते रहे हैं। मुझे ऐसा भास हुआ कि इस साल सम्मेलन में जो चर्चाएँ हुई, उनमें कुछ सात्त्विकता का अंश था। इस वर्ष यहाँ सत्त्व-गुण का अंश अधिक देखा।

हो सकता है कि यह मेरा भास ही हो, लेकिन अगर यह भास सही है, तो यह लक्षण अच्छा है। इससे बल बढ़ेगा। जितना सत्त्व-गुण बढ़ेगा, उतना हमारा बल बढ़ेगा।

सत्त्व और शक्ति

बहुत लोगों का खयाल है कि बल कुछ दूसरी वस्तु है। सत्त्व-गुण से बल बढ़ता है, ऐसा वे निश्चित रूप से मानते नहीं। वे समझते हैं कि बल के लिए किसी दूसरे देवता की आराधना करनी होती है। सत्त्वगुण से शान्ति प्राप्त होती है, ऐसा लोग अक्सर मानते हैं। परंतु सत्त्व-गुण में ताकत होती है, ऐसा विश्वास अभी बैठा नहीं है, इसलिए शक्ति की स्वतंत्र देवता मानी गयी है और उसके हाथ में सब प्रकार के शस्त्रास्त्र होते हैं। उस देवता की उपासना लोग अंतिम श्रद्धा रखकर करते हैं। शांति की उपासना लोग करना चाहते हैं, परंतु अंतिम श्रद्धा शांति में नहीं होती। वह शक्ति में ही होती है, इसलिए सतत यह भास होता है कि अगर शक्ति हमारे में न हो, तो हमारा बचाव कैसे होगा? आत्म-समाधान के लिए, सामाजिक समता के लिए, मानसिक शांति के लिए, सत्त्व-गुण की देवता मान्य है। यह भी मान्य है कि अगर रचनात्मक काम करना है, देश का विकास करना है, तो भी सत्त्व-गुण का उपयोग है, शांति की जरूरत है। परंतु अभी तक यह मान्य नहीं है कि रक्षण के लिए सत्त्वगुण समर्थ है। रक्षण के लिए दूसरी देवता की अराधना, दूसरी देवता की उपासना करनी होगी, ऐसा लोगों को लगता है।

शक्ति मूढ़ देवता है

वह जो (शक्तिरूपी) हमारी परम देवता थी, जिस पर हमने अपने बचाव का आधार रखा, उसीने अब तीव्र रूप धारण किया हैं, इन दिनों। इसलिए एक प्रकार का डर पैदा हुआ है। आज भी माता-पिता बच्चे को प्रेम से समझाते हैं। लेकिन अगर वह नहीं समझता है, तो क्या करते हैं? उसको एक तमाचा मारते हैं, याने आखिर माता-पिता का विश्वास प्रेम के बजाय मारने पर है, जो माता-पिता प्रेम के समुद्र होते हैं, बच्चों के हित के सिवाय कुछ भी नहीं चाहते, अर्थात् बच्चों के लिए उनके मन में जरा भी द्वेष नहीं है—वे भी, अगर

वच्चे समझाने से नहीं मानते हैं, तो उनको दंडन करना, ताड़न करना, यही अंतिम सैंक्शन, अंतिम देवता समझते हैं। हमारे मन का निश्चय अभी तक नहीं हुआ है कि वह शक्ति-देवता हम लोगों के लिए तारक नहीं होगी, क्योंकि उसमें वुद्धि नहीं है। ऐसा अनुभव नहीं है कि जहाँ शक्ति होती है, वहाँ वुद्धि भी होती हो। शक्ति मूढ़ देवता है। जिस किसीके हाथ में शस्त्रास्त्र आते हैं, वह शक्तिमान है। यह जरूरी नहीं है कि उसका सत्पक्ष हो। जो देवता मूढ़ है, उसको देवता मानना ही गलत है, उस पर विश्वास रखना भी गलत है, उस पर अंतिम विश्वास रखना तो और भी गलत है।

साम की अपेक्षा दण्ड में अधिक विश्वास

यह वात सर्वमान्य है कि जहाँ परस्पर में झगड़ा होता है, मतभेद होता है, वहाँ वातचीत से जितना हो सकता है, उतना करना चाहिए। सामपूर्वक ही कार्य करना चाहिए। परंतु कार्य सामपूर्वक नहीं हुआ, तो हम अपनी साम-वुद्धि का अधिक संशोधन करेंगे और अधिक उज्ज्वल साम उपस्थित करेंगे, ऐसा वे नहीं सोचते; वल्कि जव साम से काम नहीं होता, तो दण्ड का प्रयोग करना पड़ता है। लेकिन दण्ड का भी उपयोग न हुआ, तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना करते हैं। और उससे भी काम न हुआ तो? तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना खड़ी करते हैं। यों करते-करते अणु-अस्त्रों तक हम पहुँच गये, परंतु यह ध्यान में नहीं आया कि यह दण्ड-शक्ति विश्वसनीय शक्ति नहीं है; वल्कि यह दगा देनेवाली शक्ति है। यह किसी पक्ष का समाधान करनेवाली शक्ति नहीं है। कोई मसला हल करनेवाली शक्ति नहीं है। इसका भान अभी तक हमको नहीं हुआ। दण्ड-शक्ति ने अति उग्र-रूप धारण किया, इस वास्ते कुछ डर है और उस वजह से मन कुछ डावाँडोल है, परंतु चित्त में जो विश्वास है, दण्ड में, पूरा है, वह विश्वास उठा नहीं। वह कुछ थोड़ा-सा डिगा है। परन्तु अभी तक दंड त्याज्य नहीं हुआ।

स्त्री में शक्ति का अभाव

कई दफा सोचा जाता है और मैं भी वहुत दफा कहता हूँ कि पुरुषों ने समाज का काम वहुत विगाड़ा। अगर उसमें स्त्रियाँ दाखिल होंगी, तो शायद

मामला कुछ सुधरेगा। अभी यह विचार इसलिए मन में आया, वैसे तो हमेशा ही आता है, लेकिन आज इसलिए आया कि इस सम्मेलन में स्त्रियाँ काफी आयी हैं। मुझे लगता है कि यह अच्छा लक्षण है। कई दफा मैंने कहा है कि स्त्री-शक्ति अगर सामने आयेगी, तो तारण होगा। लेकिन आज स्त्रियों की हालत क्या है? और उनका विश्वास क्या है? वह अपने को रक्ष्य समझती हैं और पुरुषों पर रक्षण की जिम्मेवारी है, ऐसा मानती हैं। अमेरिका की स्त्रियाँ क्या कहती होंगी? ये सारे अणुबंम चलते हैं, तो क्या उनको अच्छा लगता होगा? वे अपने पतियों से कहती होंगी कि यह ठीक नहीं हुआ, तो पति देवता उन्हें क्या समझाते होंगे? समझाते यही होंगे कि देख, अगर यह न किया जाय, तो तेरे बाल-बच्चों की रक्षा नहीं होगी। तो स्त्रियाँ क्या कहती होंगी? कहती होंगी कि अगर ऐसा है, तो बड़ा उपकार है कि यह सारे अस्त्र मिले। क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों ने भयभीत अवस्था में रखा है और स्त्रियों का यह गुण माना गया है कि वे भयभीत हैं। अगर कोई स्त्री बहादुर दीखी, तो कहते हैं कि इसमें पुरुष का गुण है। स्त्री का स्वाभाविक गुण, याने भीरुता। अब इस हालत में स्त्रियाँ पुरुषों की मदद में आकर भी क्या करेंगी? वह बंदूक उठायेगा, तो वे उसमें बारूद भरेंगी। दूसरे देशों में स्त्रियों की पल्टनें भी बनती हैं और युद्ध में सब प्रकार की मदद करने के लिए स्त्रियाँ तैयार होती हैं। इसमें स्त्री-पुरुष भेद भी तो मदद नहीं दे रहा है?

करुणा परम निर्भय है

यह भी माना गया कि स्त्री मातृ-देवता होने के कारण अधिक दयालु, अधिक शांतिमय, अधिक करुणामय, अधिक वात्सल्यमय होनी चाहिए—होती है। परंतु जिस मनुष्य में देह और आत्मा के पृथक्करण का भान नहीं है, उसमें करुणा हो ही नहीं सकती। कुछ दया का गुण दीख पड़ता है, लेकिन वह करुणा संज्ञा की पात्र नहीं है। करुणा तो बड़ा बहादुर गुण है। उसमें महान् सामर्थ्य है, उसमें डर नहीं है। वह परम निर्भय है। दया का जो भाव आता है, वह दुर्बलता के साथ आता है। गौतम बुद्ध को जो दर्शन हुआ, करुणा का, वह तीव्र तपस्या के अंत में निर्भयता प्राप्त होने पर हुआ। वृत्रासुर से दुनिया

को वहुत पीड़ा होती थी। इंद्र के सारे औजार नाकामयाव हो गये थे। इंद्र ने कहा कि यह सत्त्व-गुण से ही मरेगा। सत्त्व-गुण की मूर्ति उस जमाने में दधीचि मुनि थे। इंद्र दधीचि मुनि के पास पहुँच गये। वोले, "जव हम तुम्हारी अस्थियों का शस्त्र वनायेंगे, तव इसे जीत सकेंगे।" उस करुणामय ऋषि ने सोचा कि मेरे पास और है ही क्या? सिर्फ हड्डियाँ भर तो हैं, तो उन्हें दे दिया जाय। उसने अपनी देह का विसर्जन किया। उसकी अस्थियों का वज्र वनाया गया और उस वज्र से वृत्रासुर का मर्दन हुआ। दुनिया को भय-मुक्त करने के लिए अपना देह-विसर्जन करने की तैयारी उस शख्स की हुई, क्योंकि उसका हृदय करुणा से भरा हुआ था। जव तक देह और देह-संवंध में हम पड़े रहेंगे, तव तक करुणा की शक्ति प्रकट नहीं होगी, चाहे जीवन में दया थोड़ी-वहुत प्रकट हो जाय। यह वहुत सोचने की वात है।

पाकिस्तान की दयनीय दशा

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मसले की इन दिनों चर्चा चलती है। वह वेचारा इतना डावाँडोल देश दीखता है कि हमको तो उस पर दया ही आती है। न कोई व्यवस्था शक्ति वहाँ है, न कोई योजना वहाँ दीखती है, न परस्पर एकता है, न प्रजा के लिए समृद्धि की कोई तजवीज वनी है। वस, एक कश्मीर का झगड़ा है। उसे वार-वार खड़ा करके भारत के द्वेष के नाम पर प्रजा को कावू में रखते हैं। इस प्रकार उस देश में जो तरह-तरह के दुःख हैं, उन दुःखों की तरफ से लोगों का ध्यान ही खींच लिया। वाकी जो कुछ दीखता है, शक्ति का आभास, वह केवल अमेरिका की गुलामी है। इसके सिवा और कुछ नहीं है।

हिम्मत ही नहीं, हिकमत की भी वात

ऐसे देश से क्या डरना है? उसकी वेचारे की अत्यन्त दयनीय दशा है। वह शस्त्रास्त्र वढ़ा रहा है, उससे उसकी ताकत वढ़ेगी, ऐसा हम नहीं समझते। वल्कि हम ऐसा समझते हैं कि वह शस्त्रास्त्र वढ़ा रहा है, इस वास्ते उसकी कमजोरी वढ़ रही है। वह क्षीण हो रहा है। वह भारत पर क्या आक्रमण कर सकेगा? वह भारत पर तव आक्रमण कर सकेगा, जव अमेरिका उसको आक्रमण के लिए प्रेरित करेगा। अमेरिका उसको आक्रमण के लिए तव प्रेरित करेगा, जव एशिया

आदि सब राष्ट्रों से लड़ने को ठानेगा और विश्वयुद्ध शुरू करने का इरादा करेगा। इसलिए उस देश की कोई भीति रखने का कारण नहीं। हम तो यह समझते हैं कि उस राष्ट्र के साथ अगर हमको बलपूर्वक पेश आना है, तो हमें दूसरी ही बात करनी होगी। हमें उसकी भयभीतता से मुक्त करने के लिए उसमें कुछ विश्वास पैदा करना होगा। वहाँ के प्राइम मिनिस्टर क्या कहते हैं—"अमेरिका की मदद हम इसलिए लेते हैं कि बातचीत में कुछ ताकत आये। हमको आक्रमण नहीं करना है। बातचीत से ही मसला हल हो सकता है। लेकिन बातचीत में ताकत चाहिए, इसलिए यह शस्त्रास्त्र हम हासिल करते हैं।" हम भी मानते हैं कि आमने-सामने बातचीत करने से मसला हल करना है, तो उस बात-चीत के पीछे कुछ ताकत चाहिए। इसीलिए हमको भास होता है कि हम शस्त्र बिल्कुल कम कर दें, तो हमारी ताकत बढ़ जायगी। यह तब ध्यान में आयगा, जब छाती में धड़कन नहीं होगी और सामने वाले के लिए हमारे दिल में प्रेम होगा। परंतु उसके अभाव में हमको डर मालूम होता है और फिर अपने देश के बचाव की जिम्मेवारी महसूस होती है। देश के बचाव की जिम्मेवारी है, इसीलिए हम कहते हैं कि शस्त्र-त्याग होना चाहिए। बाबा के बचाव के लिए बाबा नहीं कह रहा है कि शस्त्र कम किये जायँ, परंतु देश के बचाव के लिए कह रहा है। यह हिम्मत की बात है, इतना ही नहीं, हिकमत की भी बात है। याने इसमें बुद्धिमानी भी है।

शांति के सन्तुलन की नीति

यह समझना होगा कि आजकल भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच बैलेन्स (संतुलन) रखने की जो कोशिश की जाती है, वह आज की विद्या नहीं है, सौ-दो-सौ साल से यही चल रहा है। यह "बैलेन्स ऑफ पावर" (शक्ति के संतुलन) का विचार राजनीति में और उसके दर्शन में सौ-दो-सौ साल से मान्य रहा है। इस "बैलेन्स आफ पावर" के लिए ही उस देश ने शस्त्रास्त्र बढ़ाये, तो हम भी बढ़ाते हैं, जिससे कि बैलेन्स रहे। (तराजू की डंडी बराबर रहे)। तराजू के इस पल्ले में पाँच सेर डाला, बैलेन्स नहीं रहा; तो उस पल्ले में पाँच सेर डाल दिया। अब इस पल्लेवाले ने और दो सेर ज्यादा डाला, तो डंडी इधर झुक गयी, तो

उसने और उधर दो सेर डाला। ऐसा होते-होते दोनों पल्लों में इतना वजन बढ़ा कि तराज़ू टूटने की नौवत आयी।

आज दुनिया में जो डर छाया हुआ है, उसका कारण यही है कि मन में भय है। एक पल्ले में भारी वजन पड़ा हुआ है, इसलिए दूसरे पल्ले में रखना ही पड़ता है। कुल मिलाकर सारा जीवन दुःखमय है। "वैलेन्स" कायम रखने के लिए वजन दोनों तरफ समान रूप से वढ़ाते चले गये। "वैलेन्स ऑफ पावर" पर से विश्वास अभी गया नहीं है। लेकिन वहुत ज्यादा भार हरएक पल्ले में हुआ है, इसकी हानि मालूम हो रही है। दोनों एक-दूसरे से कह रहे हैं कि "वैलेन्स" को कायम रखना चाहिए, लेकिन दोनों तरफ वजन वढ़ाकर वैलेन्स कायम रखने के वजाय दोनों वाजू वजन कम करके वैलेन्स कायम रखेंगे, तो अच्छा होगा। इसलिए अव शस्त्र दोनों तरफ से परस्पर-सम्मति से कम हो जायँ, तो ठीक होगा, ऐसी वात हो रही है। इसका मतलव यह हुआ कि दो मनुष्यों के वीच वात हो रही है। एक वुद्धिमान है, दूसरा मूरख। वुद्धिमान मूरख से कह रहा है कि जव तक तू मूरख वना रहेगा, तव तक मुझे भी मूरख रहना होगा। अरे तुझको मूरख रहना क्या पड़ेगा? तू मूरख तो है ही। नाहक वुद्धिमत्ता का आरोप तुझ पर हुआ था। वस्तुतः तुम वही हो, जो तुम होना चाहते हो।

शस्त्रास्त्र कम करने का मौका

इस वक्त हमारा देश निश्चय के साथ हिम्मत रखकर, परिस्थिति को समझकर अपने शस्त्रास्त्र विश्वासपूर्वक कम कर दे, तो हम समझते हैं कि इससे हमारी नैतिक ताकत वढ़ेगी। लोग पूछते हैं कि क्या इस वात के लिए आम लोग तैयार होंगे? यह वहुत सोचने का विषय है। अमेरिका की मदद पाकिस्तान को मिल रही है। यह कोई नयी घटना नहीं है। दो-तीन साल से इसका आरंभ हुआ है। जहाँ उनको मदद मिलना शुरू हुआ, उसी वक्त पंडित नेहरू ने अगर एक कॉल (आवाहन) दिया होता कि "हमें शस्त्रास्त्र जोरों से वढ़ाने चाहिए, इसलिए मेरे प्यारे भाइयो, सेना में दाखिल हो जाओ," तो सारे लोग उनके उस कॉल को मान्य करते या नहीं? पार्लमेंट वहुत भारी मत से उनके पक्ष में अपना मत देती या नहीं? अहिंसा पर, शान्ति पर विश्वास रखनेवाले पं० नेहरू जव

शस्त्र बढ़ाने की बात कह रहे हैं, तब हमें जरूर शस्त्र बढ़ाने चाहिए, ऐसा लोग कहते कि नहीं? परंतु पं० नेहरू ने देश को संयम में रखा, इसलिए लोगों ने कुछ धीरज रखा। हम कबूल करते हैं कि इस मामले में जनता की शक्ति का विचार करना पड़ता है। जनता में हिम्मत होती है, तो राज्यकर्ताओं में भी हिम्मत आती है। लेकिन इसकी दूसरी बाजू यह है कि सरकार और नेताओं में ताकत हो, तो जनता में भी ताकत आ जाती है। याने दोनों बाजू से एक-दूसरे पर असर होता है। हम कहते हैं कि जनता को हम सब मिलकर अगर उसका हित समझा सकें और शस्त्रास्त्र कम करने की हिम्मत, ताकत बढ़ाने के लिए कर सकें, तो उसके लिए आज मौका है। यह हमारी अल्प मति है।

राजाजी का कथन

आज की सरकार जिस ढंग से सोचती है, उसका हम विरोध नहीं कर रहे हैं। उनकी जिम्मेवारी है। इसलिए उनको हमारी अपेक्षा ज्यादा बातें मालूम हैं, ऐसा भी मानने को हम तैयार हैं और अपने माननीय नेताओं पर श्रद्धा रखना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। विशेष करके जिस नेता के मन में शान्ति की प्यास है, वह भी जब यह कहता है कि शस्त्र-शक्ति की जरूरत है, तब उस बात में वजन है, यह मानने के लिए हम तैयार हैं। लेकिन यहाँ तो हम अपने उन भाइयों के साथ प्रकट चिन्तन कर रहे हैं, जो कि सर्वोदय-विचार को मानते हैं। यह प्रकट-चिन्तन हम इसलिए कर रहे हैं कि सर्वोदय-विचार को माननेवालों में भी शस्त्रास्त्र बढ़ाने की आवश्यकता है, ऐसा विचार रखनेवाले कुछ लोग आज हैं। उस दिन राजाजी ने बिलकुल कठोरता से कह दिया कि अगर यहाँ कोई शख्स पाकिस्तान से डरता है, तो उसका सर्वोदय-समाज में स्थान नहीं है। तो हमने अपने मन में सोचा कि यह तो सतहत्तर साल का बूढ़ा शख्स है। कहाँ से उसकी वाणी में यह शक्ति आयी? यह शक्ति शरीर की नहीं है, आत्मा की है। उसी आत्मा के बल से हम निर्भय हो सकते हैं।

हमारी परोपदेश कुशलता

हम बार-बार कहते हैं कि रशिया और अमेरिका, दोनों एक दूसरे का खयाल न करें और एकपक्षीय निःशस्त्रता को स्वीकार करें, तब हमारी जिम्मेवारी

स्पष्ट है। हम जानते हैं कि एकपक्षीय निःशस्त्रता का विचार हमारी सरकार ने नहीं पेश किया है। लेकिन यह विचार हम लोगों में चलता है। "पर उपदेश कुशल वहुतेरे"—वहुत-से लोग परोपदेश में कुशल होते हैं। अगर इस विचार का अमल हम स्वयम् करते हैं, तो उसका एक नैतिक असर दुनिया पर होगा। आज भी भारत की आवाज़ दुनिया में वुलन्द है। परंतु यह नज़दीक का मसला, जव तक हल नहीं होता है और उसके लिए हम निर्भय नहीं वनते हैं, तव तक उस आवाज में वह ताकत नहीं आयगी, जिससे कि दुनिया और हमारा अपना देश हमेशा के लिए वच सके। भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है कि "संतों की रक्षा के लिए मैं अवतार लेता हूँ।" इसका अर्थ कुछ लोग यह करते हैं कि गीता कहती है कि सज्जनता की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए, शस्त्र उठाना चाहिए। हम कहते हैं कि हमारे सामने दो ही विकल्प हैं, दो ही रास्ते हैं—या तो हम दुष्ट हों, या तो हम साधु हों। अवतार तो हम हो नहीं सकते। इनमें से हमारी कौन-सी कोटि है, उसका हम निर्णय करें। अगर हम साधु हैं, तो साधुत्व ही हमारा रक्षण करेगा। यह इस भगवत्-वचन का वास्तविक अर्थ है। उसी साधुत्व को ईश्वर की विभूति कहते हैं। हमने तो लिख रखा है—"सत्यमेव जयते।" हमने यह कहाँ लिख रखा है कि सत्य शस्त्र-शक्ति विजयते ? हमने तो लिखा है, "सत्यम् एव जयते", केवल सत्य की ही जय होती है। क्योंकि सत्य के वचाव के लिए सत्य के सिवा और किसी चीज़ की जरूरत नहीं। परन्तु यह सारी चर्चा व्यर्थ हो जाती है, इसलिए कि सामनेवाला कहता है कि आपकी सारी वातें हमको मान्य हैं। जिसको हमारी वातें मान्य नहीं हैं, उसके साथ चर्चा हो सकती है। लेकिन यह तो कहता है कि 'सारी' वातें मंजूर हैं। परन्तु आज की परिस्थिति में देश की रक्षा के वास्ते कुछ तो करना पड़ेगा। चित्त की यह जो दशा है, वह जव तक नहीं मिटती, तव तक दुनिया का निस्तार नहीं।

'राज्य' नहीं, 'प्राज्य' चाहिए

सर्वोदय-समाज को इस वात का निश्चय करना पड़ेगा। हम वार-वार कहते हैं कि जो अहिंसा में विश्वास रखते हैं, उनको लोक-नीति की स्थापना में ताक़त लगानी चाहिए। याने राजनीति की समाप्ति करने की कोशिश में हमको

लगना चाहिए। अभी तक तो बहुत प्रयत्न किये गये कि राजनीति को "स्पिरिच्यु-अलाइज़" किया जाय। गोखले ने इस शब्द का प्रयोग किया, गांधीजी ने उस शब्द को उठा लिया। लोग समझते हैं कि गांधीजी ने ही प्रथम बार राज-नीति को, राज-कारण को, पॉलिटिक्स को, "स्पिरिच्युअलाइज़" करने की, नीतिमय बनाने की कोशिश की। गांधीजी ने यह कोशिश ज़रूर की। लेकिन उन्होंने इतिहास में पहली दफ़ा यह कोशिश की, ऐसा नहीं है। यही कोशिश मुहम्मद पैगंबर ने की। लेकिन उन्हें यश नहीं मिला। 'राज' और 'नीति', ये दो शब्द एक-दूसरे को काटते हैं। 'नीति' को 'राज' शब्द काटता है और 'राज' को 'नीति' शब्द काटता है। नीति आती है, तो राज्य-व्यवस्था आप ही खंडित हो जाती है। राज्य-व्यवस्था आती है, तो नीति खतम होती है। इसके आगे राज्य नहीं चाहिए, इसके आगे प्राज्य चाहिए। हम नहीं जानते, कितने दिन में यह हो सकेगा। परंतु करने लायक कोई काम अगर हमारे लिए है, तो यही है। "मेरे तो मुख राम नाम, दूसरा न कोई"—मेरे मुँह से राम-नाम के सिवा और कुछ नहीं निकलेगा, ऐसा निश्चय सर्वोदय-समाज को करना चाहिए। लेकिन गांधीजी के बहुत से साथी मोहग्रस्त हैं। वे समझे हुए हैं कि हर हालत में राज्य चलाने की ज़िम्मेदारी हमारी है ही। हम भी कबूल करते हैं कि अगर हमने स्वराज्य हासिल किया और राज्य चलाने की जिम्मेदारी नहीं उठाते, तो स्वराज्य हासिल किया ही क्यों? हमने जरूर वह हासिल किया, लेकिन इसलिए कि वह सत्ता हम अपने हाथ में लें और उस सत्ता का विलयन करने का आरंभ, हाथ में लेने के दूसरे क्षण से ही कर दें। वह चीज़ हमें चाहे सधे पचास साल में; लेकिन उसका आरंभ आज से ही करना चाहिए।

कम्युनिज्म में राज्य नकद और विलयन उधार

भाइयो, इस विचार की छान-बीन हम जितनी करें, थोड़ी ही है। कम्युनिस्ट लोग भी मानते हैं कि राज्य क्षीण होना चाहिए। पर वे मानते हैं कि आज की स्थिति में राज्य अधिक से अधिक मज़बूत होना चाहिए। उसके आधार पर उसके प्रतिकूल जो शक्तियाँ हैं, उनके क्षीण होने पर राज्य के क्षय का आरंभ होगा। इसलिए कम्युनिज्म में राज्य-शक्ति मज़बूत करना, यह है 'नकद' और

राज्य-शक्ति का विलयन होना, यह है 'उधार'। वह उधार कव हासिल होगा, इसका कोई हिसाव नहीं। आज की हालत में मजबूत से मज़बूत ताक़त चाहिए, यही इसका निष्कर्ष है।

गांधीजी के नाम से विवाद न करें

कौन जाने कल क्या होगा? गांधीवाले क्या कहते हैं?—गांधीजी के नाम पर वे कहते हैं, इसलिए उन्हें गांधीवाले नाम से संवोधित किया। वे कहते हैं कि राज्यसत्ता हर हालत में किसी-न-किसी अंश में जरूर रहेगी—कम रहेगी, विभाजित रहेगी, पुण्यकारक रहेगी—लेकिन रहेगी जरूर, यह उनकी श्रद्धा है। वहुतों की यह श्रद्धा है, वहुत से सज्जनों को श्रद्धा है कि आखिर में यह राज्य-सत्ता किसी-न-किसी रूप में कायम रहेगी। हमको लगता है कि यह गांधी-विचार नहीं है। परन्तु हम इस तरह वार-वार नहीं वोलते, याने गांधीजी के नाम से नहीं वोलते; क्योंकि गांधीजी के नाम से वोलना शुरू करेंगे, तो उनकी जो पोथियाँ और वचन हैं, वे सारे हमको देखने पड़ेंगे और वाद-विवाद शुरू होगा। फिर भगवान् वुद्ध के शिष्यों का जो हाल हुआ, उससे वदतर हाल हमारा होगा। एक शिष्य ने कहा कि वुद्ध भगवान् ने यह वताया, दूसरे ने कहा वह वताया। चार ही दिशाएँ थीं, इसलिए उनके चार ही पक्ष हुए और उनकी भी आपस-आपस में लड़ाई चली! हम समझते हैं कि हम अगर गांधीजी के नाम पर यह वाद-विवाद करेंगे, तो हमारे चार नहीं, चालीस पक्ष वनेंगे!

शस्त्रों के लिए गांधीजी का आधार क्यों?

यह भी कहा जाता है कि कश्मीर पर जव सेना भेजी गयी, तो गांधीजी के आशीर्वाद से भेजी गयी थी। हम कहते हैं कि गांधीजी का ही नाम क्यों लेते हो? गांधीजी ने जिसको सिर पर रखा, उस गीता का ही नाम लीजिये न! गीता आज भी उपस्थित है। गीता का आधार दीजिये। वस, हो गया। लोग कहते हैं न, कि गीता में युद्ध के लिए संपूर्ण वचाव है! हम कितना भी क्यों न कहें, यह वाद अभी तक मिटा नहीं है। तो, हम कवूल करते हैं कि गीता का आधार भी आपके पास है। फिर वही आधार क्यों नहीं लेते हो? तव वे कहते हैं कि वह आधार हम इसलिए नहीं लेते कि गीता 'आउट ऑफ डेट' (वीते हुए जमाने

की) है। तो हम कहना चाहते हैं कि गांधीजी ने जो सम्मति दी थी, वह भी 'आउट ऑफ डेट' है। उसको अब आठ साल हो गये। गांधीजी ने १९१८ में 'रिक्रूट भरती' के लिए कितनी कोशिश की, यह हमने अपनी आँखों से देखा। घूम-घूम करके आखिर बीमार पड़ गये, परन्तु गुजरात में रिक्रूट नहीं मिले। तब फिर उन्होंने जैन-धर्म को, वल्लभ-संप्रदाय को दोष देना शुरू किया। कहने लगे कि इन लोगों ने बिलकुल निर्वीर्य अहिंसा सिखायी है। यह सन् १९१८ की कहानी है।

गांधीजी नित्य जागरूक और विकासशील रहे

१९३९ की दूसरी लड़ाई में उन्होंने क्या रुख अख्तियार किया? "हम सरकार के साथ सहयोग नहीं कर सकते, युद्ध में हमें सहयोग नहीं देना चाहिए।" उनके अनुयायियों ने नहीं माना, तो अनुयायी और गुरु महाराज अलग हो गये। अनुयायी तैयार हो गये थे, सरकार के साथ कुछ शर्तों पर सहयोग करने के लिए। जब सामनेवाली सरकार ने उन शर्तों को नहीं माना, तो गुरु महाराज और शिष्य फिर एक हो गये। यह तो हमने अपनी आँखों के सामने देखा है। उस हालत में गांधीजी का नाम लेकर क्या करेंगे? (विनोद की भाषा में तो यही कहना होगा कि) वह शख्स बिल्कुल दगाबाज था। एक शब्द पर कभी वह कायम नहीं रहता था। किसी को कोई भरोसा नहीं था कि आज गांधीजी ने ऐसा रुख लिया है, तो कल क्या लेंगे! क्योंकि वे विकासशील मनुष्य थे। उन्हें खयाल हमेशा सत्य की खोज का होता था, न कि अपनी बात पर अड़े रहने का। उन्हें सत्य का नित्य नया दर्शन होता था, इसलिए वे पुरानी बात का आग्रह नहीं रखते थे। उन्होंने लिख रखा है कि उनके ग्रंथों का अध्ययन किस तरह करना चाहिए। उन्होंने लिखा 'कि हमारे पुराने और नये, सब वचन एक ही अनुभूति में से निकले हैं और उनमें वस्तुतः सुसंगति है। परंतु अगर किसीको विसंगति दीख पड़ी, तो पहले के वाक्य गलत समझो और बाद के सही समझो। इस तरह से जो मनुष्य प्रतिक्षण जागरूक था और जिसमें परिस्थिति से लाभ उठाकर ऊँचे-ऊँचे चढ़ने की शक्ति थी, उस नित्य विकासशील साधक के शब्दों का आधार हम खोजते हैं।

हमारी असली कमजोरी

हमारी जो कठिनाई वास्तव में है, उसको हम आपके सामने पेश कर रहे हैं। शस्त्र-त्याग के रास्ते में हमारी जो वास्तविक कठिनाई है, उसकी तरफ आपका ध्यान दिलाना है। मुश्किल यह है कि हमारे देश के अन्तर्गत व्यवहार में, हमारे आन्दोलनों में, प्रजा में, जो काम करते हैं, उनमें हम सौमनस्य स्थापित नहीं कर सके। अहिंसा स्थापित नहीं कर सके। यह हमारी बहुत बड़ी और असली कमजोरी है। हमने बार-बार कहा कि हमको पाकिस्तान का जरा भी डर नहीं है। लेकिन हम कबूल करना चाहते हैं कि हमारे दाहिने हाथ को बायें हाथ का डर मालूम हो रहा है और बायें को दाहिने का।

समस्या-मोचिनी, क्षोभरहित शक्ति

एक भाई ने कहा कि बाबा सबसे शस्त्र-त्याग की बात तो कहता है, लेकिन फिर भी सरकारी पक्ष के लिए थोड़ी-बहुत गुंजाइश रखता है। वह इसलिए गुंजाइश रखता है कि बाबा को अन्तर्गत बात मालूम है और हमने उसका थोड़ा इशारा अपने व्याख्यानों में किया है। हम लोगों में से, हिन्दुस्तान की प्रजा में से, हिंसा का विश्वास मिटा नहीं है! इसलिए हम कमजोर हैं। इसीलिए पूरी तरह से शस्त्र-त्याग करना हमारे लिए संभव नहीं है। अगर बाबा को यह विश्वास होता, आप लोगों को यह विश्वास होता और ऐसी परिस्थिति स्पष्ट दिखायी देती कि हिन्दुस्तान में सौमनस्य है और जब कोई भी सार्वजनिक कार्य किया जाता है, चाहे कोई आन्दोलन भी क्यों न किया जाता हो, तो भी उसमें किसी प्रकार का क्षोभ नहीं निर्माण होता, तब बाबा निःसंदेह होकर कहता कि शस्त्र-त्याग करो। इसलिए हमको बार-बार इस बात का मंथन करना चाहिए कि हम देश में नयी शक्ति कैसे उपस्थित करें, जो कल्याणकारी हो, जो समस्याएँ हल करने में समर्थ हो और किसी तरह का क्षोभ न होने दे। समस्याओं को हल करनेवाली समस्या-मोचिनी क्षोभ-रहित शक्ति की आवश्यकता है और भूदान-यज्ञ में यह हमारी खोज हो रही है।

हमारी बुद्धि उपाधिरहित बने

आप सब लोगों को इस खोज में लगना है। इसलिए हम एक बात बार-बार

कहा करते हैं, कि अपनी बुद्धि को किसी भी प्रकार की उपाधि से मत बाँधो। मैं ब्राह्मण हूँ, यह उपाधि गलत है, मैं फलानी भाषावाला हूँ, फलाने धर्म का हूँ, मेरा फलाना संप्रदाय है, मेरा फलाना राजनैतिक पक्ष है, यह उपाधि गलत है। ये सारी उपाधियाँ तोड़े बिना अहिंसा की शक्ति के विकास के लिए हमारी बुद्धि काम नहीं देगी। जैसे सूर्यनारायण आता है, तो किसी प्रकार के भेद उसके सामने टिकते नहीं। सबकी समान रूप से वह सेवा करता है। सूर्यवत् उदासीन हुए बिना हम अहिंसा की खोज नहीं कर सकते। सबसे समान भाव से निर्लिप्त होना चाहिए। सबके अभिमुख हम हों। सबके सम्मुख हम हों। सबसे प्यार करें, लेकिन सब उपाधियों से अलग रहें। स्नेह-संबंध करना चाहिए, ऐसा लोग कहते हैं। मैं इसका यह उत्तर देता हूँ कि स्नेह बढ़ना चाहिए, संबंध की जरूरत नहीं।

सबके लिए अनासक्त मैत्री

मुझे बड़ी खुशी हुई कि यही विचार आज हमने बिल्कुल ऐसी ही भाषा में "कुरल" में देखा। उसमें कहा है कि अगर मैत्री-भाव का विकास करना चाहते हो, तो करो। मैत्री का विकास करना चाहते हैं, तो 'पुनर्चि' की जरूरत नहीं है, 'उनर्चि' की जरूरत है। प्रेम-भावना होनी चाहिए। एक भाई ने हमसे पूछा कि प्रेम-भावना बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए ? तो मैंने कहा कि अनासक्त होना चाहिए। चंद लोगों के साथ, चंद संस्थाओं के साथ, चंद संप्रदायों के साथ, अगर हमारी आसक्ति जुड़ी होगी, तो हम सबके साथ समान भाव से बरत नहीं सकेंगे। मान लीजिये वर्तुल का घेरा है, जिसे परिधि कहते हैं। परिधि में अनेक विन्दु हैं। उन विन्दुओं में से मैं एक बिन्दु बनूँ, तो परिधि में जितने विन्दु हैं, उन सबसे समान दूरी पर मैं नहीं रह सकता। एक बिन्दु मेरे नजदीक है और दूसरा दूर है। अगर मैं चाहता हूँ कि सब विन्दुओं से समान फासले पर रहूँ, तो मुझे बिन्दु मध्य-विन्दु बनना चाहिए, न कि परिधि का विन्दु। इसीका नाम है निष्पक्ष वृत्ति। हम पक्ष में पड़ करके, मत में पड़ करके, संप्रदाय में पड़ करके उपाधि उठाकर किसीके नजदीक रहेंगे और किसीसे दूर रहेंगे। हम अहिंसा-शक्ति विकसित करना चाहते हों, तो हमें उपाधिरहित होना ही पड़ेगा।

मेरी स्थिति

कुछ लोग कहते हैं कि तुम ये सारी बातें कहते तो हो, लेकिन अगर तुमको उठा करके उस कुर्सी पर बिठा दिया जाय राज्य चलाने के लिए, तो तुम भी वैसा ही बोलोगे, जैसा वे बोलते हैं। मैं कहता हूँ कि मैं अपनी अक्ल के साथ उस कुर्सी पर बैठूँगा ही क्यों ? जिस तरह मेरी बुद्धि आज काम करती है, उस तरह जब तक वह काम करेगी, उस कुर्सी पर बैठने का मेरे लिए सवाल ही नहीं है। जब मेरी आज की बुद्धि बदल गयी होगी, तब जैसा वे बोलते हैं, वैसा ही मैं भी बोलूँगा।

हमें डर पाकिस्तान से नहीं, जनता की हिंसा से

असली सवाल यह कि जनता को किस दिशा में हम ले जायँ। लोगों की तरफ से कुछ दंगा होता है, तो हमारा दिल व्याकुल हो उठता है। हमको बहुत तीव्र वेदना होती है। दूसरे लोग डरते हैं "वर्ल्ड वार" से, जागतिक युद्ध से। हम तो 'जागतिक युद्ध' को कहते हैं कि "तू आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा।" मैं तो उसको बुलाता हूँ, उसे 'डिवाइन' 'दैवी' कहता हूँ। जागतिक युद्ध मनुष्य लाता नहीं है। उसे परमेश्वर लाता है। परमेश्वर जब संहार चाहता है, तब वह जागतिक युद्ध लाता है। भगवान् कृष्ण का अवतार किसलिए हुआ था ? तो भू-भार अवतरण के लिए। भूमि को जो भार हुआ था, उसके अवतरण के लिए उसने कौरवों का संहार कराया, पांडवों का संहार कराया। उसके बाद भगवान् गांधारी से मिलने के लिए गये, तो गांधारी ने कहा, "तूने ही यह सारा संहार कराया है।" यों तो स्वभाव से वह साध्वी शान्त थी, लेकिन उस वक्त बहुत क्षुब्ध हो गयी, क्योंकि उसके पुत्रों का संहार हो चुका था। तो बोली "तू क्या समझता है ? तूने कौरवों का संहार कराया, पांडवों का संहार कराया, तो क्या तेरे यादव बचे रहेंगे ? उनका भी संहार जरूर होगा।" भगवान् हँसे ! इतना ही उसमें लिखा है, और कह दिया कि 'तुम जो सोचती हो, वह जरूर होगा।' इसलिए जब भगवान् संहार चाहता है, तब वह जागतिक युद्ध पैदा करता है। उसकी हमें जरा भी चिन्ता नहीं है। लेकिन बंबई के दंगे, उत्कल की घटनाएँ, हृदय को बहुत दुःखी बनाती हैं। ये सारी चीजें आज हिन्दुस्तान में नहीं होतीं, तो बाबा बिल्कुल छप्पर पर खड़ा होकर जाहिर

करता कि हिन्दुस्तान का प्रथम कर्तव्य है कि वह शस्त्रों का परित्याग आज ही करे। हमारे शस्त्र-त्याग के मार्ग में पाकिस्तान बाधक नहीं है। यह जो '४२ के आन्दोलन में हमने एक मूर्खता सीख ली है और जिसका अभ्यास अब भी हम कर रहे हैं, वह हमारा मुख्य डर है।

उद्धार न तो पुरुष करेगा, न स्त्री

अपने समाज का, सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि हम हिन्दुस्तान में सार्वभौम प्रेम पैदा करें और सब प्रकार से निरुपाधिक वृत्ति लोगों में निर्माण करें। आज महादेवी ने मुझसे कहा कि यहाँ बहुत-से व्याख्यान हुए, लेकिन स्त्रियों के लिए कुछ नहीं कहा गया। यहाँ इतनी स्त्रियाँ आयी हैं, इसलिए उनके लिए भी कुछ कहिये। बार-बार यह विश्वास भी बतलाया जाता है कि पुरुषों से ज्यादा अहिंसा स्त्रियों के दिल में होती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि अहिंसा का विकास न तो वे करेंगे, जो पुरुष हैं और न वे करेंगी, जो स्त्रियाँ हैं। लेकिन वे करेंगे, जो पुरुष और स्त्री, दोनों से भिन्न आत्मस्वरूप हैं।

देह और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान जरूरी

जब तक हम शरीर का यह आवरण लिये हुए हैं और इसमें फँसे हुए हैं, तब तक अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। आप कहेंगे कि आपने बहुत कठिन बात बतायी। हम कहना चाहते हैं कि हमने कोई कठिन बात नहीं बतायी, जो सत्य वस्तु है, वही कही है। हमारा विश्वास है कि एक बच्चे को भी देह-भिन्न आत्मा का भान कराया जा सकता है।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि नयी तालीम की व्याख्या करो। कई प्रकार की व्याख्याएँ की जाती हैं। कहा जाता है कि उद्योग के जरिये जो तालीम दी जाती है, उसे नयी तालीम कहते हैं। जिस तालीम के द्वारा शरीर और आत्मा के पृथक्करण की भावना बच्चों में पैदा होगी और मैं देह नहीं हूँ, बल्कि देह से भिन्न आत्मा हूँ, इस तरह का प्रत्यय बच्चों में पैदा होगा, वह सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तालीम है। उसे चाहे नयी तालीम कहिये, चाहे पुरानी।

सूतांजलि को वढ़ावा दें

इस साल हमने जो काम किये और उनसे हमारा जो उत्साह वढ़ा, उसके विषय में एक निवेदन करना है और वह यह है कि इस साल सूतांजलि कुछ ठीक हासिल हुई है। कोई छह लाख से ज्यादा गुण्डियाँ इकट्ठी हुई हैं। पाँच साल से इसके लिए काम हो रहा है। इस साल नाम लेने लायक काम हुआ, लेकिन यह वहुत कम है। कम-से-कम सौ मनुष्यों के पीछे एक मनुष्य की एक गुण्डी के हिसाव से काम होता, तो छत्तीस लाख गुण्डियाँ होतीं। यह विल्कुल ही छोटी चीज है, लेकिन जितनी छोटी है, उतनी ही शक्तिशाली है। हरएक मनुष्य को इसमें शरीर-परिश्रम की, अहिंसा की, प्रेम की और त्याग की दीक्षा मिलती है। इतनी सारी विविध दीक्षाएँ एक छोटी-सी गुण्डी से सिद्ध होती हैं। सर्वोदय के लिए कितने वोट हैं, इसका अन्दाजा हमको उससे लगता है। इसलिए हम कहते हैं कि इस चीज को खूव वढ़ावा देना चाहिए।

एक दफा हमारे पास अपनी सरकार द्वारा प्रकाशित गांधीजी के चित्रों का वहुत वड़ा अल्वम आया था। वड़े-वड़े सुन्दर चित्र उसमें थे। परन्तु जव हम सूत की गुण्डी देखते हैं, तो उसमें गांधीजी का जितना अनूठा रूप दीख पड़ता है, उतना हमने और कहीं नहीं देखा है। इसलिए मेरा कहना है कि आप सव लोग यह काम करिये और केवल श्रम-दान पर यह आन्दोलन चल सकता है, यह सिद्ध करिये। श्रम-दान का सर्वोत्तम और सर्वसुलभ प्रकार यह सूत्रांजलि है।

शाम के ७-१५ वजे सम्मेलन का अधिवेशन विधिवत् समाप्त हुआ।

परिशिष्ट : १

मध्यप्रदेश, विंध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा

अहिंसक क्रान्ति और संघटन

[विनोवा]

आप सब लोग जानते हैं कि आज जिसे 'संघटन' कहते हैं, उस पर मेरा वहुत विश्वास नहीं है। उसमें मुझे विश्वास हो, ऐसी कोई बात मैं नहीं देखता हूँ। कुल इतिहास का प्रवाह मैं देखता हूँ। देश और दुनिया का हाल देखते हुए मेरा मानसिक निर्णय यह है कि संघटन के जरिये अहिंसात्मक क्रान्ति हो नहीं सकती। संघटन का सीमित उपयोग उसमें हो सकता है। अगर संघटन से बल मिलता हो, तो हिंसक कार्य को ज्यादा मिलता है, जिसे हम "Benevolent Despotism" याने लोक-हितकारी सत्ता कहते हैं।

यह भी हो सकता है कि प्रजा का कल्याण करनेवाली सत्ता हो, जिसमें प्रजा के मत की कोई कीमत नहीं है। उसमें ऐसा नहीं दिखायी देता कि लोगों की वुद्धि का विकास हुआ है और न विकास करने की वात सोची ही जा रही है। उस सत्ता में वहुत अच्छे लोग हो सकते हैं, परन्तु वे लोगों की सुख की योजना करते हैं। उनकी वुद्धि के विकास की तरफ ध्यान नहीं जाता है। यह हो सकता है कि जैसे विलकुल छोटे-छोटे चार साल के वच्चे के वारे में माता-पिता समझते हैं कि वच्चा अपना हित नहीं समझता है, इसलिए वे उसके हित की चिंता करते हैं, उस प्रकार का संगठन कल्याणकारी और विशिष्ट केंद्रित अथवा हिंसात्मक हो सकता है। परंतु जिसे हम जनशक्ति या अहिंसक शक्ति या विकेन्द्रित शक्ति कह सकते हैं, वह संघटनों से नहीं हो सकती है—यद्यपि संघटन से उसमें हमें सीमित सहायता मिल सकती है।

खुशी की वात है कि ऐसा कुछ प्रयोग नागपुर की तरफ हो रहा है। उसे मैं उत्तेजन देना चाहता हूँ। हमारे इस काम में नेतृत्व नहीं है, प्रभुत्व भी नहीं है।

'प्रभुत्व' शब्द का अर्थ तेलगु में 'सरकार' होता है। हमारे काम में तो सेवकत्व है, परन्तु वह सेवकत्व गणशक्ति बन सकता है। एक-एक गणसमुदाय समाज-सेवा के लिए निकल पड़े। इस तरह के कुछ शिविर भी रखने चाहिए। यह गणसेवकत्व बहुत मदद देगा।

शारीरिक अपेक्षा न रखें

मध्यप्रदेश में मेरे दो-तीन साल जेल में बीते हैं और बहुत कार्यकर्ता मेरे परिचित हैं। इसके अलावा वर्धा में वर्षों तक काम किया है। इसलिए वहाँ के लोगों को मेरे लिए अपेक्षा हो सकती है। मुझे भी वहाँ के लोगों के लिए अपेक्षा है। उसमें एक अपेक्षा कायम रखनी चाहिए और दूसरी तोड़नी चाहिए। आपसे जो अपेक्षा मैं करता हूँ, वह कायम रखनी चाहिए और आप मुझसे जो अपेक्षा करते हैं, वह तोड़नी चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि बाबा को अगले साल सेवाग्राम आना चाहिए। एक टोली सारा हिन्दुस्तान घूम रही है और सन् '५७ में सेवाग्राम पहुँचनेवाली है। उसकी उस भावना की हम कदर करते हैं, परंतु ऐसी कोई कैद अपने मन में हमने नहीं रखी है। आंध्र में एक व्याख्यान में हमने कहा था कि अगर हम यहाँ पर मर जायँ, तो हमारी अस्थियाँ, भस्म, लाश उस स्थान को छोड़कर और कहीं नहीं ले जाना चाहिए। हमारे मरे हुए शरीर पर उसी स्थान का हक है—जैसे, जहाँ पर हम जन्म लेते हैं, उस स्थान का हक हम पर रहता है। तुलसी-रामायण में ऐसा वर्णन है कि वनवास पूरा करके रामचन्द्र अयोध्या जा रहे थे, अपनी जन्मभूमि की ओर जा रहे थे। रामचन्द्र बहुत व्यापक थे, परन्तु कवि लिखता है कि यद्यपि वे इस दुनिया के स्वामी थे, फिर भी वे अयोध्यापति थे। उसी तरह अपने काम का विस्तार करना चाहिए। इसीलिए हमने कहा था कि जिस स्थान पर हम मरेंगे, वही स्थान हमारी मृत्युभूमि होगी और उस स्थान से हमारी न लाश हिलनी चाहिए, न हड्डी हिलनी चाहिए। उस पर वहाँ की भूमि का हक है। यह सारा शरीर जलते ही मृत्तिका-रूप होता है, इसलिए उसका कोई अंश पानी में बहाना गलत है। भूमि में ही उसे विसर्जित करना चाहिए और भूमि भी वही होनी चाहिए, जहाँ मृत्यु होती है। हमारे मन में ऐसा तनिक भी भाव नहीं है कि जहाँ हमारे आत्मीय जन हैं, वहाँ हमारा शरीर

भेजा जाय। इसलिए हमारा वर्धा या सेवाग्राम जाना होगा, यह वासना नहीं रखनी चाहिए। आपको जो हमसे अपेक्षा है, वह आप शारीरिक न रखें, मानसिक रखें और वह अपेक्षा आज से भी ज्यादा रखें।

आध्यात्मिक आन्दोलन

यह आन्दोलन कितना भी स्थूल दीखता हो, तो भी केवल आध्यात्मिक है। आपके पास ऐसी कोई ताकत नहीं है कि सामनेवाले का लोभ, आध्यात्मिक वृत्ति की मदद लिये बिना और हिंसा का आश्रय लिये बिना आप हटायें। हिंसा के आश्रय से लोभ का परिवर्तन डर में करेंगे, तो आप जमीन छीन सकते हैं। अब लोभ अधिक घातक है या डर अधिक घातक है, यह बात मानसशास्त्रज्ञ तय करें। वह हमारा रास्ता नहीं है। हम कहना चाहते हैं कि आध्यात्मिक वृत्ति के सिवा आपके पास और कोई शक्ति नहीं है। उसके आधार पर आप दानपत्र हासिल कर सकते हैं। आप यह तो नहीं कर सकते कि किसीको भी लूटेंगे या लोगों के नाम से हम ही हस्ताक्षर करेंगे, ऐसा तो नहीं होता। हम इतने-इतने दान-पत्र हासिल करेंगे, इस संकल्प का अर्थ यह नहीं है कि हम ही इस तरह किसीको लूटेंगे या किसीके नाम से हस्ताक्षर करेंगे। उस संकल्प का अर्थ इतना ही है कि कम-से-कम इतने मनुष्यों को अपनी आत्मा में स्थान दूँगा और उनकी आत्मा में मैं स्थान पाऊँगा। इसके सिवा और कोई अर्थ नहीं है।

टेढ़ी कल्पना न करें

यह समझ लीजिये कि हमारे आन्दोलन का दारोमदार संख्या पर नहीं है, हृदय-शुद्धि पर है। मतलब, हमारा मन इतना सरल होना चाहिए कि टेढ़ी कल्पना हमारे मन में आनी ही नहीं चाहिए, बावजूद इसके कि अपनी आँख के सामने हम टेढ़ापन देख रहे हैं, तो भी हम मनुष्यों को टेढ़ा न मानें। अब चुनाव नजदीक आ रहा है, इसलिए कुल वातावरण संशयाकुल बन जायगा। गीता में व्यास भगवान् कहते हैं—कम-से-कम श्रद्धा तो होनी चाहिए। 'संशयात्मा विनश्यति'—संशयात्मा का विनाश होगा। राजकरण में "संशयात्मा विनश्यति" नहीं है। वे समझते हैं कि संशयात्मा राजनीति में यशस्वी होता है। जो मनुष्य हरएक के साथ सावधानी से बरतेगा और टटोल-टटोलकर काम लेगा, वह

राजनीति में सफल होगा । यह राजनीति का सिद्धान्त है। भगवान् कृष्ण भी राजनीतिज्ञ थे। पर उनका अनुभव यही था कि—'संशयात्मा विनश्यति।' और इन छोटे-छोटे राजनीतिज्ञों का अनुभव यह है कि संशयात्मा बनने से मनुष्य सफल हो सकता है। बड़े व्यापारी अत्यन्त सत्यनिष्ठ होते हैं। विना सत्य के कोई काम नहीं करते। छोटे-छोटे व्यापारी असत्य से काम करते हैं। छोटे और बड़े में यह फर्क है। भगवान् कृष्ण का अनुभव जो था, उससे उल्टा अनुभव छोटे राजनीतिज्ञों का है। वे कहते हैं कि हमें फूँक-फूँककर कदम रखना चाहिए। ऐसों के बीच हमें काम करना है, लेकिन उनकी संशयवृत्ति की छूत हमें नहीं लगनी चाहिए । हमें "संशय-प्रूफ" और 'संशयनिर्भय' बनना चाहिए। इसे मराठी में "वेरड" कहते हैं। 'सूरदास खल काली कमरी चढ़त न दूजो रंग।' ऐसी काली कम्बल जिस पर दूसरा रंग न चढ़ सके, ऐसा खल का वर्णन किया है। वैसी हमारी स्थिति होनी चाहिए । याने उनका रंग हम पर नहीं चढ़ना चाहिए। यह कैसे होगा ? या तो हम बिलकुल मूरख बनेंगे, तो होगा या फिर पूरी अक्ल हममें हो, तब होगा। यह थोड़ी अकल का काम नहीं है। काम आसान है, मुश्किल नहीं है, पर अक्ल होनी चाहिए। यह बुनियादी चीज है। उसके दर्शन से बहुत से भेद मिट जायँगे।

सभी शुद्ध निर्मल-नारायण

सोने का एक टुकड़ा है। खरा सोना, बिलकुल परिशुद्ध सोना है । एक पाँच तोले का सीधा टुकड़ा और दूसरा पाँच तोले का गहना भी शुद्ध सोना है, परंतु उसका आकार टेढ़ा-मेढ़ा है । अब जो सुवर्ण की कीमत जानता है, वह दोनों को स्वीकार करेगा। वह यह देख लेगा कि ये दोनों समान जाति के हैं, दोनों का वजन पाँच तोला है और दोनों शुद्ध हैं । लेकिन छोटा लड़का देखेगा, तो टेढ़े को कबूल नहीं करेगा । जिसे सुवर्ण का परिपूर्ण ज्ञान है, वही पहचान सकता है। इसलिए हमें तरह-तरह के आकार के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए । अंदर का जो प्रकार है, उसे पहचानना चाहिए। सारा सुवर्ण है, आकार अलग-अलग हैं। यहीं देखिये, हमारे सामने बैठे हुए लोगों में किसीने टोपी लगायी है, किसी ने फेंटा बाँधा है, किसीने दाढ़ी रखी है। इस तरह भिन्न-भिन्न रूप होते हुए भी सब सर्वोदय-समाज के लोग हैं।

वाहर के रूप हम भिन्न-भिन्न देखते हैं, फिर भी हम समझते हैं कि यह मिथ्या है और सर्वोदय-समाज सत्य है । उसी तरह समझना चाहिए कि जिन-जिनसे हमारा संवंध आया, वे परिशुद्ध निर्मल-नारायण हैं। इस तत्त्व का ग्रहण एकदम नहीं होगा, परंतु वैसी इच्छा, अभ्यास करना चाहिए ; इसलिए वापू हमेशा स्थितप्रज्ञ के श्लोकों का जिक्र करते थे । वीमारों का आदर्श-सेवक कैसा होना चाहिए ? तो वे कहते थे कि स्थितप्रज्ञ के श्लोक पढ़ो । रसोई-घर में काम करनेवाला कैसा होना चाहिए ? वे कहते थे कि स्थितप्रज्ञ के श्लोक पढ़ो । ऐसा वे क्यों कहते थे ? इसीलिए कि हमारा स्तर भिन्न है, हमारे लोग तनख्वाह के लिए सेवा नहीं करेंगे, उनमें मातृभाव होना चाहिए ।

हृदय में प्रवेश

भूदान का हमारा आन्दोलन जमीन छीनने का होता और संपत्तिदान-आन्दोलन कर-वसूली का होता, तो यह दूसरी तरह का होता । लेकिन हमारा आन्दोलन लोगों के हृदय में प्रवेश करने का है, करुणा जगाने का है । इसलिए हमारी परीक्षा है । हम कहना चाहते हैं कि ऐसे भोले वनो, जैसे तुकाराम ने कहा है—"जाणोनि नेणते करी माझे मन" याने "जानते हुए भी नहीं जानता हो, ऐसा मेरा मन करो ।" यह टेढ़ा सोना है और दूसरा सीधा सोना है, यह जानते हुए भी नहीं जानता हो और उसमें जो प्रकार है,वह पहचानता हो, ऐसा होगा तो देखते-देखते काम फैलता ही जायगा ।

इसलिए संघटन पर मेरा कम भरोसा है । शंकराचार्य मलावार से निकले और हरिद्वार की तरफ गये, जहाँ मनुष्य के वलिदान की प्रथा थी । चंद दिनों में वह प्रथा वंद हो गयी । यह कौनसी कीमिया थी ? आखिर घूम-घूमकर वे कितने घूमे होंगे ? वत्तीस साल की उम्र में उन्होंने समाधि ली और वड़े-वड़े ग्रंथ लिखने के लिए कहीं वैठना हुआ होगा । उन दिनों वड़े-वड़े जंगलों में घूमना वहुत कठिन काम था । लेकिन उनके काम का जो परिणाम देखते हैं, वह घूमने से नहीं हुआ, वह उनकी हृदय-शुद्धि के कारण है । हम आपसे नम्रतापूर्वक कहते हैं कि आप हृदय की उदारता और शुद्धि देखिये । तव आप देखेंगे कि जो शख्स मिलेगा, वह आपका वनेगा और आप उसके हो जायँगे । संघटन का अल्प उपयोग कीजिये ।

आंदोलन का प्रवाह

नदी का पानी सतत वहता रहता है, इसलिए कभी भी हम जाते हैं, तो हमें पानी मिलता है। कभी चिन्ता नहीं रहती है। और जैसे नदी का पानी दूसरे-तीसरे काम में लेते हैं, फिर भी चिन्ता यह रहती है कि प्रवाह वहता रहना चाहिए, नहीं तो खतरा है ; वैसे अपने इस आन्दोलन का प्रवाह भूदान का है और वह वहता रहना चाहिए। वितरण का काम है, और भी कुछ काम है, परंतु आप इतना याद रखिये कि आपके दूसरे-तीसरे कामों का आकर्षण लोगों को क्यों हुआ ? वह भूदान के कारण हुआ है। एक जमाने में एक पत्र में मैं लिखता था। वहुत चिंतन-मननपूर्वक लिखता था। लेकिन आज मराठी और हिन्दी में जितने ग्राहक मिलते हैं, उतने उन दिनों नहीं थे। उन दिनों चार सौ—साढ़े चार सौ ग्राहक होते थे। अव आज वंग साहव ने एक पत्र निकाला है, उसके भी दो-तीन हजार ग्राहक हैं। यह फर्क क्यों ? क्योंकि लोकमानस की पकड़ इस काम ने ली है। हम उसीकी तलाश में थे।

मेवातों को जमीन देने का प्रश्न

वापू के जाने के वाद मेवातों में काम करने के लिए हम गये थे। वहाँ पंजाव में हरिजनों को जमीन देने की वात थी। सरकार तैयार नहीं थी। कहती थी कि उन लोगों को पाकिस्तान में जमीन नहीं थी, उन्हें जमीन कैसे दी जाय ? जिन्हें जमीन थी, उन्हें थोड़ी जमीन दी गयी, पर जिन्हें जमीन नहीं थी, उनका जिम्मा सरकार नहीं उठा सकती थी। कहती थी कि यहाँ जमीन के मालिक ढूंढ़ो। पाकिस्तान में उन लोगों के पास काम करते थे। यहाँ वे मालिक भी नहीं और जमीन भी नहीं ! हमने वहुत समझाया, तव तय हुआ कि इतनी-इतनी जमीन देंगे। वह शुक्रवार का दिन था, प्रार्थना के वाद हमने जाहिर किया कि इस तरह पंजाव की सरकार ने तय किया और हमने उसके लिए उसका अभिनंदन भी किया। परंतु वाद में सरकार मुकर गयी। तो हमें उस सरकार पर भी दया आयी, हरिजनों पर भी दया आयी और अपने आप पर भी दया आयी। सरकार पर इसलिए कि उसकी हालत इतनी डाँवाडोल है और उसके लिए दोप भी किसको दें। हरिजनों पर इसलिए आयी कि वे सत्याग्रह की वात करते थे और हम ही ने उन्हें रोक रखा था।

अपने आप पर इसलिए आयी कि हमने वचन तो हासिल किया था, लेकिन वचन देनेवाला उसे पूरा नहीं करता था, फिर भी हम कुछ नहीं कर सकते थे।

वहुत कठिन परिस्थिति थी। रामेश्वरीजी नेहरू ने हमसे पूछा कि क्या हरिजन सत्याग्रह करें ? लेकिन हम वैसी सलाह नहीं दे सकते थे। हमारे मन में आग थी। परंतु कुछ नहीं कर सकते थे। दूसरे यह बात भी थी कि अहिंसा के ग्रहण के लिए लोक-मानस तैयार होना चाहिए था। हम अहिंसा का उपदेश देते हैं, तो हिन्दुस्तान में कोई भी ऐसा शख्स नहीं मिलेगा, जो कि उसे न मानता हो। यहाँ के लोग ऊँचे-से-ऊँचे विचार के लिए तैयार हैं। ऐसा कहा जाता है कि जगदीशचंद्र बोस ने इसकी शोध की कि वनस्पति में भी जान होती है। लेकिन इसमें उन्होंने क्या खोज की ? हमें तो वह पहले से ही मालूम था। हिन्दुस्तान के लोग पूर्वजन्म, पुनर्जन्म मानते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, देह और आत्मा का पृथक्करण, आत्मा और परमात्मा का अद्वैत, सब कुछ जानते हैं, उन्हें क्या नहीं मालूम, सो ही हमें मालूम नहीं। इसलिए जब हम अहिंसा की बात करते हैं, तो वह हिन्दुस्तानियों के लिए नयी बात नहीं है। लोग कहते हैं कि आपकी अहिंसा की बात इस जमाने के लिए नहीं है। आपकी अहिंसा "अहिंसा परमोधर्मः" जैसी बात है, वह अच्छी है, सर्वश्रेष्ठ बात है, परंतु आज के जमाने के लिए लागू नहीं हो सकती। हम कहते हैं कि वह केवल सर्वश्रेष्ठ ही नहीं है, केवल परम धर्म ही नहीं, निकट धर्म भी है। और अहिंसा से काम बन सकता है—इस जमाने में भी बन सकता है। इसलिए अहिंसा का आज के जमाने में सबसे ज्यादा महत्त्व है, यह बात लोगों के ध्यान में आयेगी, तो हमारी बाकी की चीजें, खादी वगैरा भी लोग कबूल करेंगे।

हम इस बात की खोज में थे कि हमारी बात सुनने के लिए लोकमानस तैयार हो। खोजते-खोजते हम तेलंगाना में गये। अगर तलाश की वृत्ति न होती, तो भूदान-यज्ञ नहीं बनता। भाप से ढक्कन उड़ता है, यह सब देखते थे, लेकिन वैज्ञानिक ने उसमें से नयी खोज की, वैसे ही आज तक किसीने दान नहीं दिया, सो बात नहीं थी। मंदिर, मस्जिद और पाठशाला के लिए जमीन दान में मिली थी। परंतु अगर हमने उस पहले दान का इशारा नहीं समझ लिया होता और वैसे ही हम निकल जाते, तो वह कार्य क्षीण होता। परंतु हमारे मन में विश्वास था और

एक विचार चल रहा था। इसलिए पहला दान जब मिला, तब लगा कि यह ईश्वर का इशारा है, इसलिए इस काम को हाथ में लिया जाय, तो लोक-मानस में अहिंसा का विचार सुनने की तैयारी होगी। अहिंसा पर हमारी श्रद्धा है या नहीं, इसकी कसौटी होनेवाली थी। नहीं तो हमारे में यह हिम्मत नहीं थी, क्योंकि हम गणित जानते थे और हमने उसी दिन अपने मन में गणित कर लिया। पाँच करोड़ एकड़ जमीन की आवश्यकता थी। उसका उच्चारण बाद में किया, लेकिन उसका हिसाब उसी दिन कर लिया था और आप सबकी मदद से इतना काम करेंगे, ऐसा ही हमने माना था। हम हिसाब करेंगे और हम ही उस काम को पूरा करेंगे, ऐसा कोई अहंकार मन में रखने की हिम्मत हममें नहीं थी। अशक्त मनुष्य के लिए निरहंकार बनना आसान होता है। यह काम नहीं उठाता, तो अहिंसा पर मेरी श्रद्धा नहीं है, ऐसा सिद्ध होता और हिंसा पर श्रद्धा रखनी होती।

भूदान जारी रखें

मैं कहना यह चाहता था कि आपका मुख्य काम भूदान का है। आपके निर्माण-कार्य की तरफ लोग ध्यान देते हैं, आपका पत्र अच्छा चलता है। आपकी खादी की बात सरकार सुनती होगी, ग्रामोद्योग की बात भी सुनती होगी, उसके कई कारण होंगे; परंतु उसका मुख्य कारण यह है कि जनता आपका कार्यक्रम मानती है। जहाँ भूदान का काम बन्द होगा, वहाँ दूसरे काम सूख जायँगे। यह इशारा मैंने इसलिए किया कि पिछले साल मलाबारवालों ने निश्चय किया था कि इस साल भूमि का बँटवारा करेंगे और नयी भूमि प्राप्त नहीं करेंगे। उनका दूसरा निश्चय परिपूर्ण हुआ और उसमें वे सौ फीसदी यशस्वी हुए और पहले निश्चय में वे दस फीसदी भी सफल नहीं हुए। हमने कहा कि आप दूसरे निश्चय में ज्यादा यश पाते और पहले में कम यश पाते, तो अच्छा था। अनुभव से उनके ध्यान में यह बात आ गयी। उत्तरप्रदेश ने साढ़े तीन लाख एकड़ जमीन हमें दी थी और पाँच लाख का उनका पहला संकल्प था, वह भी पूरा किया। परन्तु बीच में दो साल कुछ काम नहीं हुआ। उत्तरप्रदेश नेताओं का देश है। गंगा-यमुना के पास कोई ताकत है, क्योंकि वहाँ बहुत नेता पैदा होते हैं और ऐसे नेता, जो पीछे मुड़कर देखते हैं, तो एक भी अनुयायी नहीं है; फिर भी वे नेता बने रहते हैं। उसके नजदीक

ही बिहार प्रदेश है, जहाँ लाखों एकड़ जमीन मिली और लाखों दानपत्र हासिल हुए हैं। आज भी वहाँ देखेंगे, तो चैतन्य प्रकट हुआ है। मानसिक क्रान्ति तो बिहार में हो गयी है, परन्तु उत्तरप्रदेश को उसका स्पर्श नहीं हुआ। "अस्पर्शयोग" हमें बहुत अच्छी तरह सधा है। यह बहुत कठिन बात है। गौड़पाद का वचन है कि "अत्यन्त दुर्लभ योग है—कुल दुनिया का स्पर्श न होना।" जो अत्यन्त कठिन योग है, वह हमें सध गया। अब बाबा राघवदास के ध्यान में आया है कि ऑफिस में बैठकर लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। योजना बनाने से कोई काम नहीं होता है। साक्षात् समरभूमि में जाकर लड़ना पड़ता है। इसलिए वे निकल पड़े हैं और विषमता के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी है। अब इन चन्द महीनों में चालीस हजार एकड़ जमीन उन्हें मिली है। हमें वहाँ पर काफी रद्दी जमीन मिली थी। लेकिन इस एक मनुष्य के प्रयत्न से इतनी अच्छी जमीन मिली है, यह छोटी बात नहीं है। हम कोटि-कोटि के आँकड़े बोलते हैं, इसलिए हमें पता नहीं चलता, परंतु यह बहुत बड़ी घटना है। बाबा राघवदास ने तीस साल सेवा का काम किया है, परंतु अब चालीस हजार एकड़ जमीन प्राप्त करके उन्होंने चालीस हजार लोगों के पोषण की व्यवस्था की है। इतनी बड़ी सेवा उनके हाथों से इसके पहले कभी नहीं हुई, ऐसा वे भी मानते हैं। इसलिए हम कहते हैं कि कुछ भी संकल्प करिये, लेकिन भूदान जारी रखिये।

लोग पूछेंगे कि बाबा ने पाँच करोड़ एकड़ का इतना बड़ा आँकड़ा पहले ही जाहिर करके एक भूत जगाया है। आँकड़ा बोलना आसान है। मराठी में कहावत है "झाँकली मूठ सव्वा लाखाची" याने 'बँधी हुई मुट्ठी सवा लाख की होती है।' इसलिए बाबा नहीं बोलता तो अच्छा होता, लेकिन अहिंसा का काम खतरा उठाये बिना नहीं होता है। दीखने में उल्टा दीखेगा कि पिछले साल हमने कहा था कि कुल काम छोड़ करके इस काम के लिए आइये। लेकिन इस साल हम कह रहे हैं कि भूदान के साथ ये कुल काम जोड़ो। जैसे छूत-अछूत भेद के निवारण का काम है, वह भी इसके साथ करना होगा। गंगा का पानी समुद्र की तरफ निकला, पर बीच में कोई गड्ढा आया, तो उसको भरे बिना वह नहीं जाता, नाले का पानी ऐसे ही वेग से समुद्र की तरफ जाता है, परन्तु गड्ढा मिलता है, तो उसमें समाप्त होता

है। उसीको वह समुद्र समझता है और मन में सार्थक समझता है। तो बीच के गड्ढे को समुद्र समझना नहीं है। भूदान का काम करते-करते दूसरे-तीसरे सेवा के जो काम हैं, वे करने चाहिए।

कार्यकर्ता छुट्टी लें

बीच-बीच में कार्यकर्ताओं को छुट्टी लेनी चाहिए। और रोज एक घंटा, साल भर में एक महीना या आधा महीना, अच्छे-से-अच्छे काम से भी निवृत्त होना चाहिए। इससे मानसिक शान्ति मिलती है, शक्ति मिलती है, निरीक्षण होता है और उसका असर काम पर भी होता है। यह जो मैंने सुझाया, वह आपके लिए है, मेरे लिए नहीं है। नहीं तो आप मुझे भी कहेंगे कि आपको भी निवृत्त होना चाहिए और फिर जैसे भस्मासुर का हुआ, वैसा ही हाल हो जायगा। यह शख्स काफी ध्यान कर चुका है। यह पूँजीवादी ध्यानी है। इस वास्ते नया ध्यान नहीं करेगा, तो चलेगा। और ध्यान की मुझे ऐसी आदत हो.गयी है कि चलते-चलते, काम करते-करते उससे अलग होना है, तो मैं हो सकता हूँ और ध्यान कर सकता हूँ। हम इस काम से और इस संसार से भी अलग हो सकते हैं। यह हमारा ध्यान निरन्तर चलता रहता है। परन्तु आप लोग अगर काम से अलग रहेंगे, तो आपको मानसिक आराम और बुद्धि को काफी पोषण मिलेगा। उस समय आप हमारे पास आ सकते हैं, उससे आपको भी लाभ मिलेगा और हमको भी लाभ मिलेगा।

चेतना का अभाव

प्रश्न : मध्यप्रदेश के काम में कौन-सी कमियाँ दिखाई देती हैं ?

उत्तर : खास मध्यप्रदेश के लिए नहीं, परन्तु सब प्रान्तों के लिए मैंने एक बात बतायी है। हमारी संस्थाएँ स्टेटिक (स्थितिशील) बनी हैं। डायनैमिक (गतिशील) नहीं रही हैं। उनमें चेतना नहीं दीखती। यंत्र अच्छा है, खराब नहीं है, यंत्र से सेवा हो सकती है। परंतु यंत्र चलाते हैं, तो आदी हो जाते हैं। हमारे गणित के प्रोफेसर थे। एक दिन हमने क्लास में उनसे एक सवाल पूछा। ऐसे सवाल के वे आदी नहीं थे। वे सोते-सोते सिखाते थे। बहुतों को लगता है कि लेटे-लेटे ही सोना होता है, लेकिन चलते-चलते और बैठे-बैठे भी आदमी सो सकता है। सिखाते-सिखाते भी सो सकता है और गणित एक ऐसा विषय है कि वह सिखाने

की आदत पड़ गयी, तो सिखाते-सिखाते मनुष्य सो सकता है। इसलिए हमा प्रो० ने ठाट से कहा कि आज इस सवाल के लिए मैं तैयार नहीं हूँ, कल उत्तर दूंगा। संस्था यांत्रिक बनती है। संस्था-स्थापन करने में कुशलता की जरूरत होती है, बाद में वह यंत्रवत् बनती है। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा कि एक आश्रम खतम होता है, तो दूसरे आश्रम में जाओ। उसमें एक शक्ति है, परन्तु यह संस्थाओं के ध्यान में नहीं आ रहा है, इसलिए उनका काम लोगों में नहीं फैलता है और फिर वे सरकार की मदद लेती हैं, इसलिए वहाँ तेज नहीं रहता है। घूमनेवाले कार्यकर्ता बीच-बीच में संस्थाओं में जाकर अपनी रिपोर्ट पेश करें। संस्थावाले भूदान के काम में हिस्सा लेते हैं, ऐसा हम तब समझेंगे, जब वे भूदानवालों से कहेंगे कि "हम अपनी कुल संस्थाएँ आपको सुपुर्द करते हैं। आप जो सलाह देंगे, उसके अनुसार काम करेंगे।" जब संस्थावाले समझेंगे कि उसमें उनका भी हित है, तब उनका काम अच्छा चलेगा।

भूदान तथा अन्य काम

प्रश्न : क्या भूदान के साथ दूसरे भी काम किये जायँ और सरकार के कामों में हम कहाँ तक मदद दें ?

उत्तर : उत्तर प्रदेश में जब हम घूमते थे, तब गोरखपुर में अकाल पड़ा था। बहुत लोग दुःखी हुए थे। लेकिन बाबा उस समय वह काम उठाता, तो लोगों को राहत मिलती और सरकार का भी बाबा पर विश्वास था। इसलिए लोग हमें सूचना करते थे, परन्तु बाबा ने वह काम उठाने से साफ इनकार कर दिया, बल्कि जरा कठोर शब्दों में कह दिया कि 'आपत्ति दूसरे लोग पैदा करें और उसे हटाने की जिम्मेवारी हम लें, ऐसा क्यों ?' उधर ग्रामोद्योग तोड़ने का सिलसिला जारी था, इसलिए आपत्तियाँ पैदा हो रही थीं। तात्पर्य, लोगों के पास ग्रामोद्योग नहीं थे, इसलिए वह दुःख निर्माण हुआ था। खरीदने की क्षमता लोगों में नहीं थी। 'अगर ग्रामोद्योग होते, तो यह हालत नहीं हुई होती,' यों कहकर हमने उसे छोड़ दिया। दूसरे कामों को जोड़ना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि इस काम को छोड़ना चाहिए। दूसरे कामों को इस तरह नहीं जोड़ना कि यह धागा टूटे। लोगों की मुश्किलें दूर करना हमारा काम नहीं है। उनका नसीब है और उनकी अक्ल है, जिनसे उन्होंने वोट देकर सरकार को चुना है। कुछ मिलाकरके वह हमारा काम

नहीं है। हम गाँव में जायँगे, उस गाँव में अगर छूत-अछूत के भेद की समस्या बहुत है, तो घर-घर जाकर भूदान हासिल करने के बजाय हम लोगों को छूत-अछूत भेद के निवारण के लिए कुछ बातें समझायेंगे और उसके साथ-साथ भूदान का विचार समझा देंगे। हम इसी तरह करते हैं। गाँव में जो समस्या रहती है, उसे ध्यान में लेकर बातें करते हैं। लेकिन भूदान का काम छोड़कर छूत-अछूत का भेद मिटाने में लगेंगे, तो भूदान खतम होगा। ऐसे समय पर जनता को शिक्षित करने का काम रहता है।

सत्ता और सम्पत्ति

प्रश्न : सर्वोदय-कार्यकर्ता को सत्ता के और संपत्ति के साथ संबंध रखना चाहिए या नहीं ?

उत्तर : सत्ता के साथ संबंध जोड़ने की हविस जिसे नहीं है, वह महात्मा विरला है। ऐसे लोग बहुत थोड़े देखने को मिलते हैं। दो साल पहले गया में एक व्याख्यान मैंने दिया था। उसमें बताया था कि सेवा-प्रधान लोग सेवा-वृत्ति से काम करते हुए किस तरह सत्ता के मार्ग में पहुँचते हैं ? सेवा करनेवालों को लगता है कि बिना व्यवस्था के सेवा नहीं हो सकती, इसलिए संघ या संस्था बनाते हैं। थोड़े दिन बाद व्यवस्था मेरे हाथ में रहे बिना काम नहीं होगा, ऐसा उन्हें लगता है, तो फिर सत्ता में वे आ जाते हैं। सत्तावालों की गति सेवा की तरफ होती है, ऐसा देखने को नहीं मिलता है। हिमालय से गंगा निकलती है, तो समुद्र की तरफ जाती है। लेकिन समुद्र से गंगा हिमालय की तरफ नहीं जाती। सेवावाला सत्ता में पहुँच जाता है। यहीं देखिये, आधा वर्धा खाली हो गया है। दिल्ली पहुँच चुका है, जहाँ हम संगठन करते हैं, वहाँ लोग अजरामर होकर तो नहीं आते ह। वे कमबख्त मरते हैं, तो ऐसी बेदरकारी से कि व्यवस्था न करके निकल जाते हैं। जहाँ निमंत्रण आता है, वहाँ से वे निकल जाते हैं। ऐसी हालत में सज्जनों के हाथ में भी सत्ता आती है, तो हम उसे खतरनाक समझते हैं, दुर्जनों के हाथ में आयेगी तब तो खतरनाक है ही ! रामदास के नाम पर भी पंथ बने हैं और लोगों में झगड़ा चलता है। नानक के लड़के और शिष्यों में उनकी मत्यु के बाद झगड़ा हुआ था। याने जैसे राजनैतिक पक्ष में जितने झगड़े होते हैं, उतने ही झगड़े इनमें होते हैं।

हम किसीको दोष नहीं देते हैं, परन्तु कबूल करते हैं कि सत्ता की तरफ जाने में लाभ नहीं है, चाहे सद्वासना से उसके अच्छे और प्रामाणिक प्रयोग भी क्यों न किये जायँ, परंतु अनुभव बताता है कि उससे लाभ नहीं है। संपत्ति हम इकट्ठा नहीं करते हैं, परन्तु हम संपत्तिदान में संपत्ति का हिस्सा लेते हैं। उतना संपत्ति के साथ संबंध आता है। भूदान का संपत्तिदान एक पहलू है।

सर्वोदयपुरम्, (कांचीपुरम्)
२२-४-'५६

परिशिष्ट : २

मध्यभारत और राजस्थान के कार्यकर्ताओं से चर्चा

भूदान : सात्त्विकता के पथ पर

[विनोबा]

हमें इस बात की बहुत खुशी हो रही है कि सर्वोदय-सम्मेलन में लोगों की रुचि दिन-ब-दिन बढ़ रही है। यद्यपि यहाँ जो लोग आते हैं, उनको न कोई सत्ता मिलनेवाली है, न और भी कोई प्रलोभन है। केवल स्नेह बढ़ाने के लिए, या केवल देश की सेवा किस तरह हो सकती है, उसकी चर्चा करने के लिए और कुछ आत्मा की उन्नति का साधन हासिल करने के लिए यहाँ आते हैं। इसके अलावा यहाँ आनेवालों का और कोई इरादा नहीं हो सकता।

दूरदर्शी और मूर्ख

किसी में बहुत ज्यादा रजोगुण हो, तो उसे कीर्ति की लालसा होती है, परंतु वह न सिर्फ क्षम्य है, बल्कि कुछ अंश में आदरणीय भी है। गीता में कहा है कि सत्कीर्ति को भी मान्यता दी जा सकती है, बशर्ते कि वह सत्कार्य पर आधार रखती हो। इस तरह गीता ने उसे मान्यता दी है, परंतु आध्यात्मिक खयाल से वह चीज कम पड़ती है। तो भी यहाँ पर किसी का अधिक-से अधिक दोष यही हो सकता

है और कोई नहीं हो सकता है। कुछ लोगों को कभी-कभी यह ख़तरा मालूम होता था, जो अब नहीं मालूम होता है। यहाँ पर एक जमात बन रही है, जो आज नहीं, तो कल सत्ता में आयेगी। खुशी की बात है कि वह आशंका दिन-ब-दिन कम हो रही है और लोग समझ गये हैं कि ये लोग इतने दूरदर्शी हैं और इतने मूर्ख भी हैं कि वे आज की सत्ता की कोई कीमत नहीं समझते हैं। वे हमको दूरदर्शी इस मानी में कहते हैं कि हम बहुत लंबा सोचते हैं, इसलिए आदरणीय हैं, और मूर्ख इसलिए कहते हैं कि फ़िलहाल किस तरह समाज की सेवा हो सकती है, इसका सम्यक् दर्शन इन्हें नहीं है, इसलिए सेवा के अनेक मौके ये लोग खोयेंगे, ऐसा वे समझते हैं। इस तरह हमें दूरदर्शी और मूर्ख, दोनों समझते हैं। परन्तु प्रतिस्पर्धी समझने की जो वृत्ति हो सकती थी, वह इन दिनों दिन-ब-दिन कम हो रही है। बावजूद इसके कि १९५७ नजदीक आ रहा है, तो भी लोग समझ गये हैं कि इस जमात में से कोई चुनाव के लिए खड़ा भी हो जाय, तो अपने व्यक्तिगत तौर पर खड़ा होगा। सर्वोदय-समाज या सर्व-सेवा-संघ की तरफ से उसे कोई उत्तेजन नहीं दिया जायगा, बल्कि यहाँ पर उसके लिए सब प्रकार की प्रतिकूलता खड़ी की जायगी। इसलिए दिन-ब-दिन अपना काम निर्दोष होता जा रहा है, यह खुशी की बात है।

पूर्वजों की कमाई तुच्छ नहीं

कुछ लोग यह भी पूछा करते हैं कि ये लोग अपने सम्मेलन कभी काशी, कभी गया, कभी पुरी, कभी कांचीपुरम् में करते हैं, तो यह ठीक लक्षण नहीं है। परंतु परसों आपने सुना कि राजाजी ने इसका क्या अर्थ लगाया। अपने पूर्वजों की जो कमाई है, उसीमें संतोष मानकर जो आगे नहीं बढ़ेगा, वह तो पूर्वजों के लिए आदरणीय व्यक्ति नहीं माना जायगा; परन्तु वह भी आदरणीय नहीं होगा, जो पूर्वजों की कमाई को तुच्छ समझता हो। यह एक ऐसी ऐंठ या उन्मत्तता होती है कि जिस स्थान में बहुत पुण्य का आचरण हुआ है, उस पुण्य-स्थान की उपेक्षा करें और उसे कुछ भी न समझें। एक भाई ने हमसे कहा कि मैं पन्द्रह दिन में एक दफा उपवास करने की जरूरत महसूस करता हूँ, लेकिन मैं द्वादशी के दिन उपवास करता हूँ, क्योंकि एकादशी के साथ बहुत साम्प्रदायिक भावनाएँ जुड़ी

हुई हैं, हमें स्वर्ग वगैरह कुछ नहीं चाहिए। मैंने उनसे कहा कि स्वर्ग न चाहनेवाले पर स्वर्ग लादा नहीं जाता है, परन्तु चाहनेवालों को भी मिलता है या नहीं मिलता है, इसमें सन्देह है। अगर आप पन्द्रह दिन में एक दिन उपवास की जरूरत ही नहीं महसूस करते होते, तो बात दूसरी थी; लेकिन आप वैसी जरूरत महसूस करते हैं, तो जिस एकादशी के दिन असंख्य लोगों ने बहुत सद्भावना से उपवास किया और कुछ समाधान हासिल किया, उस महान् बल को आप क्यों खोते हैं? वे लोग इस महान् संपत्ति की ओर ध्यान नहीं देते हैं और जो कुछ थोड़ी-सी बुराइयाँ हैं, उन्हींकी ओर ध्यान देते हैं। इसे भी मैं अच्छा समझता हूँ, क्योंकि इसमें विचार है, परन्तु वह एकांगी है।

पूर्वपुण्य का लाभ

मेरा झुकाव पूर्व-पुण्य का लाभ उठाने की तरफ होता है। इसलिए कि अपने में बल नहीं पाता हूँ। मुझमें कुछ गुण है और कुछ दोष है, परन्तु मुझमें एक बड़ा गुण यह है कि मुझमें अहंकार नहीं है। उसका कारण यही है कि मैं अपने को दुर्बल पाता हूँ। मैंने "गीता-प्रवचन" के सत्रहवें अध्याय के अन्त में यहाँ तक लिखा है कि हमारे सामने अगर यही "च्वाइस" है कि मनुष्य के लिए सिर्फ दो गतियाँ हो सकती हैं, या तो पुण्यवान् बनो और अहंकारी बनो, या तो आपके हाथ से पाप होते रहें, परन्तु आप निरहंकारी रहें। तो निरहंकारिता में मदद मिलती है। इसलिए मैं पापी होना ज्यादा पसन्द करूँगा, क्योंकि हम दुर्बल हैं, इसलिए सब प्रकार का बल, जहाँ कहीं से मिलता हो, इकट्ठा करने की कोशिश हम करते हैं। वह कोशिश पूरी सधती नहीं। अगर पूरी तरह से सधेगी, तो जिस तरह सब देवता और मानव हमें अनुकूल हो गये हैं, उसी तरह सब राक्षस भी अनुकूल हो जायँगे। परन्तु दिन-ब-दिन हमें सबकी सहानुभूति हासिल हो रही है।

सात्त्विकता की वृद्धि

हमने देखा कि सम्मेलनों में जो चर्चाएँ चलती हैं, उनमें सम्मेलन हर साल सात्त्विकता की तरफ बढ़ता जा रहा है। उस सात्त्विकता में कहीं कुछ खलल पहुँचता है, तो मैं ही पहुँचाता हूँ और वह जान-बूझकर करता हूँ; क्योंकि मैं ऐसी सात्त्विकता नहीं चाहता हूँ, जो कि तामसता के करीब हो और पहचान ही न हो सके कि

सात्विकता है या तामसता। सात्विकता कहकर हम तामसता को ही पकड़े रहें, यह मैं नहीं चाहता हूँ। इसलिए बीच-बीच में यहाँ पर कुछ रजोगुण का प्रभाव आया, तो मैं ही लाता हूँ।

एक भाई ने प्रस्ताव पेश किया था कि सर्वोदय-समाज को राजनैतिक पक्षों में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि उससे सबकी सहानुभूति हासिल करने में बाधा पहुँचती है। उसके उत्तर में मैंने कहा कि भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों में हमें नहीं पड़ना चाहिए। इसका एक कारण यह है, जो आपने दिया है, लेकिन इसका दूसरा कारण यह है कि हमारी भी एक प्रकार की राजनीति है और वह है—आज की राजनीति को तोड़ना। हम कोई रामकृष्ण-मिशन के जैसे नहीं हैं। हम सबकी सहानुभूति और सहयोग जरूर हासिल करना चाहते हैं, परन्तु रामकृष्ण-मिशन की कोई राजनीति नहीं होती है। हमारी राजनीति, जिसे मैं लोकनीति कहता हूँ, उसमें पुरानी राजनीति को तोड़ने की बात है।

राज्यसत्ता और धर्म-सत्ता

आज तक राजनीति को "स्पिरिच्युअल्लाइज़" करने के, उसे धर्म-रूप देने के प्रयोग किये गये। गांधीजी ने ऐसी ही कोशिश की। गोखले ने कहा था कि "पालि-टिक्स" को "स्पिरिच्युअलाइज़" करना चाहिए। गांधीजी ने यह कोशिश की कि राजनीति को स्वच्छ, निर्मल रूप, धर्म-रूप दिया जाय। अक्सर कहा जाता है कि उन्होंने पहली बार यह कोशिश की; लेकिन यह बात सही नहीं। मानव के इतिहास में यह कोशिश बार-बार हुई है और जितनी दफ़ा हुई है, उतनी दफ़ा अयशस्वी हुई है। हम यह नहीं कहते कि कई बार अयशस्वी हुई, इसलिए आज भी होगी। इतिहास का ऐसा कोई बोझ हम अपने ऊपर नहीं चाहते हैं। परन्तु हमने जितना देखा, उसपर से हमारे कुछ विचार बन गये हैं। हम मानते हैं कि बुद्ध-धर्म हिन्दुस्तान से रुख़सत हुआ, उसके कई कारण हैं। परन्तु एक बड़ा कारण यह है कि उसमें राजा लोग पड़े। कहा जाता है कि अशोक ने सर्व-धर्म-समभाव रखा। यह बात सही होगी, परन्तु आपको एक अनुभव बताता हूँ। हम जब नालन्दा गये थे, तो वहाँ पर हमने एक मूर्ति देखी। शिवलिंग की मूर्ति थी और उसके ऊपर पाँव रखकर एक बौद्ध भिक्षु खड़ा था। यह देखकर हमें बहुत दुःख हुआ और उस

दिन के व्याख्यान में हमने उसीके बारे में अपने विचार व्यक्त किये। बौद्धों के और शैवों के बीच अर्थात् बौद्ध-राज्यकर्ता और शैव-राज्यकर्ताओं के बीच जो कशम-कश चली, उसमें बौद्धराजा यशस्वी हुए, तब का वह चित्र होगा और जब शैव राजा यशस्वी हुए होंगे, तब उन्होंने दूसरे प्रकार के चित्र बनाये होंगे। राज्य-सत्ता को पावन रूप देने की कोशिश अशोक ने की और उसके साथ धर्म जोड़ दिया। तो धर्म भी गया और सत्ता भी टूट गयी। सत्ता तब टूटती है, जब उससे अधिक ताकत वाली सत्ता सामने खड़ी हो जाती है और सत्ता के पीछे धर्म है, इसलिए वह टूटती नहीं, सो बात नहीं; क्योंकि सत्ता तो हिंसा पर अधिष्ठित होती है। बौद्धों का यह सारा इतिहास है। नानक और मुहम्मद ने भी राज्य-सत्ता को धर्म-रूप देने की बहुत कोशिश की। फिर भी वह दूषित हुई। वैसा ही प्रयत्न यूरोप में कान्स्टेन्टाइन के बाद हुआ। लेकिन उसमें राज्य-सत्ता दूषित हुई और धर्म-सत्ता भ्रष्ट हुई। यह सारा इतिहास हमारे सामने है।

एकता और पदलोलुपता

गांधीजी के बाद हम लोगों ने राज्य-सत्ता हाथ में ली, जो 'गांधीवाले' कहलाते हैं। हम गांधीवाले आपस-आपस में जो सलाह-मशविरा करते हैं, उसका स्तर नाना फड़नवीस के जमाने के स्तर से ऊँचा नहीं है। अगर होता, तो बड़ी खुशी होती, परन्तु हमने भिन्न-भिन्न पार्टियों के कार्यकर्ताओं के बीच ही नहीं, एक ही पार्टी के कार्यकर्ताओं के बीच एक-दूसरे के लिए अविश्वास, हेतुओं के बारे में संशय आदि सब जो देखा, उस पर से हमें आभास होता है कि हमारा स्तर ऊँचा नहीं है। आजकल सुलह की जो बातें चलती हैं, जिन्हें राजनीति में 'समन्वय' कहा जा सकता है, वे ठीक वैसी ही होती हैं, जैसी नाना फड़नवीस करता था। जब अंग्रेजों ने पूना पर हमला किया, तो नाना ने पूना में चारों ओर घास रखकर उसे जलाने की तैयारी कर रखी, और उधर सिंधिया, होलकर से बात शुरू की कि मराठी सत्ता खतरे में है, तो आप सब मदद के लिए आइये। उन दोनों ने पूछा कि आप उसके बदले में हमें क्या देंगे? तो नाना ने कहा कि मालवे का हिस्सा आपको देंगे, फलाना खानदेश का हिस्सा आपको देंगे। यों करते-करते उसने सबका मिलाप किया। फिर सबकी सेनाएँ अंग्रेजों के साथ लड़ीं, अंग्रेज हारे और संकट टल

गया, लेकिन नाना ने अपने मन में निश्चय कर लिया और वैसा लिख भी रखा कि आखिर राज्य अंग्रेजों के ही हाथ में जायगा, क्योंकि जिस प्रकार से वह सारा हुआ था, वह प्रकार कोई अन्तःसमाधान का नहीं था। किसको क्या दिया जाय, इस तरह की बातचीत होने के बाद ही सारे एक हो गये थे। इसलिए नाना ने समझ लिया था कि यह एकता टिकनेवाली नहीं है।

महापुरुषों का असर

आज भी कठिन मसलों पर आपस-आपस में बातचीत की जाती है, तो उसी तरह की जाती है। परस्पर संशय आदि में हम उन लोगों से बहुत कम हैं, ऐसी बात नहीं है। फिर यह सवाल पूछा जायगा कि गांधीजी ने राजनीति को 'स्पिरिच्यु-अलाइज' करने की कोशिश की, तो क्या उसका कुछ भी असर नहीं हुआ ? लेकिन इस तरह से सोचना ठीक नहीं है, क्योंकि महापुरुषों का असर तात्कालिक राजनीति को देखकर नहीं पहचाना जा सकता। उनका असर लोकमानस पर होता है। भगवान् बुद्ध का असर आज हो रहा है। इसलिए हमें निराश न होना चाहिए। परन्तु बुद्ध भगवान् की बात बिलकुल ही भिन्न थी और गांधीवालों की भिन्न है। बुद्ध भगवान् के हाथ में राज्य-सत्ता थी। उसे छोड़कर वे जंगल गये थे। उन्होंने यह नहीं समझा कि सेवा के लिए सत्ता हाथ में रखनी चाहिए, उसका उपयोग करना चाहिए। इसलिए बौद्धों ने संन्यास की बात चलायी, पॉलिटिक्स को 'स्पिरिच्युअलाइज' करने की कोशिश उन्होंने नहीं की।

गुण-समुच्चय का कार्यक्रम

इस तरह दो बड़े प्रयोग बड़े-बड़े लोगों ने किये। शंकराचार्य, गौड़पाद, शुकदेव आदि का एक प्रयोग था। उन महापुरुषों ने निवृत्त होकर सीधे जनता में जाकर काम किया और गांधीजी, मुहम्मद पैगम्बर, नानक, रामदास आदि का दूसरा प्रयोग था। उन्होंने 'पॉलिटिक्स' को 'स्पिरिच्युअलाइज' करने की कोशिश की। दोनों अच्छे थे, दोनों सत्पुरुष थे। इसलिए अब हम सोच रहे हैं कि हमें क्या करना चाहिए ? हमें राजनीति को धर्म-रूप देने के बजाय राजनीति को खंडित करके लोक-नीति स्थापित करनी है। राजनीति कायम रहते हुए उसे धर्म-रूप देने की कोशिश नहीं करनी है। यह एक स्पष्ट और 'पाजिटिव' कार्यक्रम है।

निवृत्ति-मार्गी सत्पुरुषों ने जो किया, वह 'पाजिटिव' नहीं था। वे राजनीति के पचड़े में नहीं पड़े और उन्होंने अलग होकर शान्ति की शोध की। उनका भी दुनिया पर बड़ा उपकार है, क्योंकि उन्होंने शान्ति का मार्ग बताया। मार्क्स की परिभाषा में यही बात रखनी हो, तो हम कहेंगे कि राजनीति को धर्म-रूप दिया जाय, यह हुआ 'थीसिस'। राजनीति को धर्म-रूप देना संभव नहीं, इसलिए उसे छोड़कर दूसरा मार्ग अपनाना, यह हुआ 'एण्टीथीसिस'। और अब हम 'सिंथिसिस' करने जा रहे हैं। हम राजनीति का लोक-नीति में परिवर्तन करना चाहते हैं। इस तरह दोनों विचारों में जो गुण थे, उनको लेकर दोनों के दोषों को छोड़नेवाला 'सिंथिसिस' का कार्यक्रम हमने अपनाया है।

इसलिए हम राजनैतिक पक्षों के कार्यक्रम में दखल देना नहीं चाहते। सिर्फ इसलिए नहीं कि हमें सबकी सहानुभूति हासिल करनी है, इतने 'इनोसेंट' नहीं हैं, कुछ खतरनाक हैं, हम निर्दोष-निरपराध नहीं हैं, क्योंकि हमारा अपना एक मकसद है। राजनैतिक पक्षवालों से कहना चाहते हैं कि राजनीति को ही हम मिटानेवाले हैं। परन्तु इसलिए आप हम जैसे सज्जनों को ही अपने दुश्मन समझें, सिर्फ इसलिए कि उससे आपकी सत्ता के मार्ग में बाधा डाली जायगी, तो हम समझाना चाहते हैं कि आप दोस्त को ही दुश्मन समझेंगे। आप लोगों का विसर्जन सर्वोदय-समाज में होना आपके ही हित में है, और दुनिया के भी हित में है, इस बात को समझ लीजिये।

सत्याग्रही का सर्वोत्तम आदर्श

हमारी यही कोशिश है। इसलिए इस सात्त्विक सर्वोदय-समाज में जो कुछ रजोगुण का अंश आता है, वह मेरे ही कारण आता है। मैंने उसे रजोगुण कहा, परन्तु वास्तव में वह स्वच्छ-निर्मल सात्त्विकता है। सात्त्विकता में जो तमोगुण का अंश आता है, उसके कारण इस प्रकार कुछ रजोगुण का आभास होता है। मैंने अपने लोगों से कहा है कि तुम्हारा मार्ग शुकदेव का है। तुम्हें व्यासदेव का भी वि ोध करने का मौका आयगा। एक दफा बापू ने कहा था कि सत्याग्रही का सर्वोतम आदर्श प्रह्लाद का है। हिरण्यकश्यपु के सामने वह भगवान् का नाम लेकर निर्भयता से खड़ा रहा। हमने कहा कि प्रह्लाद आदर्श सत्याग्रही है, परन्तु

वह सर्वोत्तम आदर्श नहीं हो सकता। सत्याग्रही का सर्वोत्तम आदर्श तो शुकदेव हैं, क्योंकि प्रह्लाद को जिसका प्रतिकार करना पड़ा था, वह तो पहचाना हुआ दुर्जन था और शुकदेव को जिसका प्रतिकार करना पड़ा था, वे तो व्यास महर्षि थे। उनकी भी न मानकर शुकदेव जंगल के लिए निकल पड़े। व्यास बड़े ज्ञानी थे, परन्तु व्याकुल होकर पुत्र के पीछे-पीछे गये और पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो? शुकदेव ने उसका उत्तर नहीं दिया। कवि लिखता है कि शुकदेव की आवाज जंगल में द्विगुणित हुई और वृक्षों ने व्यास को उत्तर दिया कि मैं सर्व-भूतों के हृदय में बसे हुए की खोज में जा रहा हूँ। व्यास जैसे ज्ञानी को भी पुत्र के लिए आसक्ति हुई। उस आसक्ति को तोड़ने की जिसने हिम्मत की, वह सत्याग्रही का सर्वोत्तम आदर्श है।

सेना-वृद्धि में गांधीजी का नाम क्यों?

हमारे कई सज्जन भाई, जो बरसों तक गांधीजी के साथ रहे हैं, आज इस या उस कारण से 'मिलिटरी' का बचाव करते हैं। उस दिन राजाजी ने एक सख्त वाक्य कहा। उन्होंने कहा कि जिस शख्स के मन में पाकिस्तान के लिए डर होगा, उसके लिए सर्वोदय-समाज में स्थान नहीं है। कहने का तात्पर्य यह था कि पाकिस्तान के डर के कारण सेना की आवश्यकता है, इस तरह की बात जिसके मन में है, उसे सर्वोदय-समाज में स्थान नहीं है। यह उनकी अन्तर की आवाज थी। मैंने कई दफा कहा है कि पाकिस्तान बलवान् होना चाहता है, तो हमें भी बलवान् होना चाहिए। उसके साथ बातचीत करनी है, तो दुर्बल बनकर नहीं जा सकते हैं। हमें बलवान् होना चाहिए, इसलिए हमें अपनी फौज हटानी चाहिए, ताकि हम बलवान् बनें। गांधीजी के साथ काम किये हुए कुछ लोग 'एडमिनिस्ट्रेटर' बने हैं। उत्तम 'एडमिनिस्ट्रेटर' का यह लक्षण है कि जनता को आगे ले जाने के बजाय उसकी नाड़ी पहचानकर अच्छी व्यवस्था रखना। वे लोग कहते हैं कि देश का 'मारल' कायम रहे, इसलिए 'आर्मी' रखनी पड़ती है और जब लोगों की तरफ से पूछा जाता है, तो वे कहते हैं कि किसीको भी उत्तर देने के लिए हम तैयार हैं। अपनी सेना हमने बराबर तैयार रखी है। यह सारा गांधीवालों की तरफ से होता है और यह कहकर होता है कि अहिंसा के हित में यही उचित

हैं और उसके बचाव के लिए गांधीजी का आधार भी दिया जाता है। कहते हैं कि कश्मीर पर सेना भेजने के समय गांधीजी की सम्मति, आशीर्वाद उनको हासिल हुआ था। वे कहते हैं कि गांधीजी ऐसे निरे भगत नहीं थे। अपनी सेना कायम रखने का और बढ़ाने का जब वे सोचते हैं, तो उसके लिए गांधीजी का भी आधार देते हैं। यह एक दुष्ट-चक्र है। सामनेवाला सेना बढ़ाता है, इसलिए हम भी बढ़ाते हैं। अब हम कहते हैं कि हम सेना नहीं बढ़ायेंगे, क्योंकि हमारी सेना पहले से ही बढ़ी हुई है। हम कहते हैं कि गांधीजी की सम्मति लेने के बजाय उनसे भी बेहतर मनुष्य की सम्मति क्यों नहीं लेते हो? भगवान् कृष्ण की सम्मति आप ले सकते हैं। साक्षात् गीता-माता आपकी सेवा के लिए हाजिर है। आपका आधार कुछ कम नहीं है। गांधीजी ने १९१८ में लोगों से सेना में भरती होने के लिए कहा और वे ही गांधीजी १९४० में वह काम करने के लिए राजी नहीं थे। उसके लिए वे कांग्रेस से भी अलग होकर काम करते थे। आज गांधीजी होते, तो क्या करते, इसका अन्दाजा अगर हम लगा सकते, तो हम ही गांधीजी क्यों नहीं बनते? इसलिए हम कहते हैं कि गांधीजी का आधार लेकर जो गांधीवाले हिंसा का बचाव करते हैं, वे 'गीता-रहस्य' के अनुयायी हैं।

अहिंसा के प्रयोग

प्राचीनों ने भी अहिंसा के प्रयोग किये थे। हमने तो लिख रखा है कि उस जमाने का सबसे श्रेष्ठ अहिंसक पुरुष परशुराम था। परन्तु आज हम वही काम करें, तो हमारी गलती होगी। पुराने लोगों ने अहिंसा के लिए तलवार उठायी थी। परन्तु आज, जब कि हम अणु-अस्त्रों तक पहुँच गये हैं, तो गांधीजी का आठ साल पहले का आधार बहुत पुराना हो गया है, क्योंकि हम बहुत आगे बढ़े हुए हैं। सेना का बचाव करनेवालों के बारे में हम यह कह सकते हैं कि सत्ता में जाने के बाद उन्हें सत्य, अहिंसा का विचार करने के लिए फुरसत नहीं मिली होगी, उनके ऊपर राज्य चलाने की बड़ी भारी जिम्मेवारी थी और दो सौ साल से राज्य नहीं चलाया था, उसकी आदत भी नहीं थी। इसलिए सोचने का समय और ताकत भी न रह सकी। उनका अधिक-से-अधिक बचाव यही हो सकता है। परन्तु हमारा बचाव नहीं हो सकता, क्योंकि हम बाहर हैं। इसलिए हमें ठीक ढंग से सोचना चाहिए।

इसका मतलब यह नहीं कि हम गैरजिम्मेवारी से सोचें। हम आसमान में उड़ सकते हैं, परन्तु लोग कहते हैं कि जमीन पर काम कीजिये। मनुष्य के शरीर की यह विशेषता है कि वह जमीन पर सिर्फ अपने पाँवों से टिका हुआ है और अपना सिर ऊँचे आसमान में रखता है। जिस दिन पाँव के साथ उसका सिर भी जमीन पर आयेगा, उस दिन वह जानवर बन जायगा। इसलिए हमें आसमान में नहीं उड़ना चाहिए, परन्तु हमारा सिर आसमान में ही रहना चाहिए।

सेना हटाना जरूरी

इस तरह सोचें, तो लगता है कि आज हिन्दुस्तान को हिम्मत के साथ अपनी सेना हटानी चाहिए या कम-से-कम आधी करनी चाहिए। लेकिन यह काम हिम्मत के बिना नहीं होगा। हृदय में धड़कन हो, तो काम नहीं बनेगा। इस तरह हम हिम्मत करते हैं, तो वह कदम अक्लवाला भी साबित होगा, हिम्मतवाला तो होगा ही। उससे हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और दुनिया में जो शक्ति काम कर रही है, उसका नियंत्रण करने की शक्ति हिन्दुस्तान में आयेगी और उसके परिणामस्वरूप हम पर पाकिस्तान का हमला भी नहीं होगा।

लोकनीति की स्थापना कैसे ?

हमारा मुख्य कार्य राज्य-सत्ता चलाना नहीं, बल्कि राज्य-नीति को लोक-नीति में रूपांतरित करना है। इसलिए हम कहीं कुछ दखल देंगे, तो उसे वे उनके कार्य में दखल न मानें और यह सोचें कि हमारे लिए एक 'करेक्टिव' हो तो अच्छा है। 'डेमाक्रेसी' में यह माना गया है कि एक सत्ताधारी पक्ष चाहिए और दूसरा अच्छा बलवान् विरोधी पक्ष। विरोधी पक्ष का होना 'डेमाक्रेसी' के लिए जरूरी है। उसीसे 'डेमाक्रेसी' टिकती है, क्योंकि वह 'करेक्टिव' होता है। हम पूछना चाहते हैं कि आज के सत्ताधारी पक्ष के सामने ऐसा कौन-सा पक्ष खड़ा है, जो कि 'करेक्टिव' बन सके ? आप सारी हालत देख ही रहे हैं। जो सत्ताभिलाषी पक्ष है, वह 'करेक्टिव' नहीं हो सकता, वह उतना ही 'रोग' हो सकता है, जितना कि सत्ताधारी पक्ष होता, क्योंकि वह आगे सत्ता में आने की इच्छा रखता है। इसलिए जिस तरह वह विरोधी पक्ष के गुणों को चूस लेता है, उसी तरह दोषों को भी चूस लेता है। परिणाम यह होता है कि जो सत्ताभिलाषी पक्ष

बाहर रहते हैं, उनके विचार की भी वही सीमा बनती है, जो सत्ताधारी पक्ष की होती है। वे भी जाल में फँसे हुए होते हैं, इसलिए 'करेक्टिव' तो वही होगा, जो सब तरह से सत्ता से बाहर है, परन्तु राजनीति का चिंतन करता है। जो राजनीति का चिंतन नहीं करते हैं और केवल आध्यात्मिक चिंतन करते हैं, वे शान्ति के लिए कुछ काम करेंगे, परन्तु 'करेक्टिव' के लिए राजनैतिक चिंतन करनेवाला और अलग रहनेवाला पक्ष चाहिए। सर्वोदय-समाज केवल एक निर्दोष समाज ही नहीं है, वह गुणवान् है, 'करेक्टिव' है। आज जो राजनीति चलती है, वह जब तक चलती रहेगी, तब तक उसे शुद्ध करने में वह मदद करेगा और एक दिन राजनीति को तोड़कर लोकनीति की स्थापना करेगा।

इतिहास को महत्त्व न दें

राजस्थान के लिए मैं कुछ खास बातें कहना चाहता हूँ। राजस्थान का जो रोग है, उसका कारण है इतिहास। हमने बच्चों को नाहक इतिहास सिखाने की जिम्मेवारी उठायी है। जो मर चुके, वे अच्छी तरह पहुँच गये, अब अपने सिर पर उनका बोझ नाहक क्यों उठाते हो? इतिहास के कारण राजपूतों के खिलाफ मराठे, मराठों के खिलाफ सिख, जोधपुर के खिलाफ जयपुर आदि सब पचड़े खड़े हो जाते हैं। पुरानी सब स्मृतियाँ जाग उठती हैं। अभी राज्य पुनर्गठन आयोग के कारण झगड़े हुए और उसके परिणामस्वरूप जो बुराइयाँ हुईं, उनके पीछे यही इतिहास-पूजा या इतिहास-निष्ठा थी, जो बुतपरस्ती का ही एक प्रकार है, जो इन दिनों बहुत चल रहा है। हमारे पूर्वजों ने सब शाखाओं पर उत्तम-से-उत्तम ग्रंथ लिखे। यह आक्षेप कभी नहीं उठाया जाता है कि संस्कृत भाषा में किसी विषय पर ग्रन्थ नहीं है। परन्तु सिर्फ इतिहास के बारे में आरोप किया जाता है। जिनमें सब प्रकार की विकसित शक्ति थी, उन्होंने सिर्फ इतिहास के बारे में ही क्यों नहीं लिखा? क्या यह कोई आकस्मिक घटना थी या इसके पीछे कुछ विचार था? शंकर, रामानुज आदि किताब लिखते समय अपने बाप का नाम भी नहीं लेते थे। हम कहाँ जनमे, किताब कहाँ लिखी गयी आदि कुछ भी नहीं लिखते हैं और एकदम किताब का आरंभ कर देते हैं। कोई कहते हैं कि शंकराचार्य ईसामसीह के दो सौ साल पहले हो गये। और कोई कहते हैं कि ईसा के आठ सौ साल के बाद हुए। याने उनके

जन्म के विषय में जो मतभेद का क्षेत्र है, वह एक हजार साल का है। इतिहास के बारे में वे लोग इतने अन्धे कैसे रहे ? इसका कारण यह है कि हम इतिहास को, व्यक्तियों को ज्यादा महत्त्व नहीं देते हैं।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२९–५–'५६

परिशिष्ट : ३

दक्षिण भारत के कार्यकर्ताओं के साथ

सत्याग्रह-शास्त्र का संशोधन

[विनोबा]

कुछ लोग कहते हैं कि भूदान के तरीके से जो हो सकता था, वह हुआ, इसलिए अब कुछ आक्रमणकारी नया कार्यक्रम चाहिए। हम कहना चाहते हैं कि वैसा कार्यक्रम चल तो सकता है, परन्तु उससे जमीन नहीं मिलेगी। बिहार में यही अनुभव आया है कि उससे शक्ति नहीं पैदा होती है। इसलिए आक्रमणकारी काम का मौका आयेगा, तो वह काम बाबा प्रथम करेगा। जहाँ बाबा को यह लगेगा कि इस काम की सीमा आ गयी है और आक्रमणकारी कार्यक्रम की जरूरत है, तो बाबा स्वयं वह करेगा और आपको इशारा मिलेगा।

सत्याग्रह का सौम्यतर रूप

सत्याग्रह के बारे में काफी समझने की जरूरत है। गांधीजी ने अंग्रेजों से कहा, 'भारत छोड़ो' और उन्हें जाना पड़ा। परन्तु हम यहाँ के पूंजीपतियों को और जमींदारों को उस तरह 'भारत छोड़ो' नहीं कह सकते हैं। इसलिए अब जो सत्याग्रह चलेगा, उसका रूप गांधीजी के जमाने में जैसे 'निगेटिव' था, वैसा नहीं हो सकता है। अब तो 'पॉजिटिव' रूप की जरूरत है याने सौम्य से सौम्यतर की ओर बढ़ना है। जिस तरह जयप्रकाशजी ने कहा, हम सब अपनी छाती पर हाथ रखकर यह

पूछें कि क्या हमने पूरे प्राण से, अपनी पूरी ताकत लगाकर काम किया है या हमारा आधा समय आपस-आपस में लड़ने में गया है ? जब हम समझेंगे कि आज 'निगेटिव' सत्याग्रह नहीं चलेगा, तब हम सत्याग्रह के शास्त्र का संशोधन करेंगे। नहीं तो यह कहना पड़ेगा कि सत्याग्रह का शास्त्र गांधीजी के साथ खतम हुआ, अब पूर्ण विराम कहना होगा। गांधीजी ने सत्याग्रह के लिए जो प्रयोग किये, उनमें से कई प्रयोग अयशस्वी हुए, ऐसा वे खुद मानते थे। उन्होंने खुद कहा था कि राजकोट का उपवास गलत था, अहमदाबाद में मजदूरों के लिए जो उपवास किया, उसमें कुछ दबाव आया, इसलिए वह सदोष था। साम्प्रदायिक निर्णय बदलने के वास्ते उन्होंने जो काम किया, उसका बेजा दबाव रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर पड़ा। सत्याग्रह में इस तरह का दबाव किसी पर भी नहीं पड़ना चाहिए।

सत्याग्रह का एक पहलू

गांधीजी के जमाने का कार्य 'निगेटिव' था, इसलिए वह यशस्वी हुए। अंग्रेज यहाँ टिक ही नहीं सकते थे। उनको या तो यहाँ पर अच्छा राज्य चलाना था या छोड़कर जाना था। गांधीजी पहले राज्य-निष्ठ थे। उस वक्त उन्होंने स्वराज्य की माँग नहीं की थी, बल्कि अच्छे राज्य की माँग की थी। परन्तु आखिर गांधीजी ने अंग्रेजों को यहाँ से भगाने की बात की। अंग्रेज यहाँ से हट सकते थे, क्योंकि वे बाहर से आये हुए थे, परन्तु यहाँ के मुसलमान, ब्राह्मण, कारखानेदार, जमींदार आदि कोई भी हट नहीं सकते हैं। अगर वे अन्याय कर रहे हैं, तो उसका मतलब हुआ कि हम ही अन्याय कर रहे हैं और सब तरह से राष्ट्र का शुद्धीकरण करने की जरूरत है। इसलिए अब जो सत्याग्रह होंगे, वे बड़े नाजुक होंगे और सूक्ष्म बुद्धि से करने होंगे। हम सबको यहाँ पर एक साथ रहना है। इसलिए 'एण्ड आर मेण्ड' 'तुम या तो सुधरो या भारत छोड़ दो' ऐसा हम नहीं कह सकते। हम एक ही बात कह सकते हैं कि सुधरो। आपके सामने एक ही रास्ता है। सत्याग्रह का यह एक पहलू है, जिस पर हमें सोचना चाहिए।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)

२९-५-'५६

तमिलनाड के कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा

तमिलनाड के लिए चतुर्विध कार्यक्रम

[विनोबा]

हम लोगों में कहावत है कि 'अति परिचयात् अवज्ञा' जहाँ परिचय ज्यादा होता है, वहाँ कभी-कभी आसपास के लोगों का मूल्य हम कम समझने लगते हैं। वैसे तमिलनाड में कुछ हो रहा है, ऐसा दीखता है। यहाँ के बड़े-बड़े लोगों को, यहाँ के छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं के लिए, अतिपरिचय के कारण बहुत ऊँचा भाव नहीं देखता हूँ। उनमें वे दोष और न्यूनताएँ बहुत देखते हैं। दोष तो दुनियाभर में होते हैं। अगर दोष ही देखना हो, तो दूसरा धंधा ही नहीं करना होगा। परन्तु हमारा यहाँ के कार्यकर्ताओं से इतने दिनों में जितना परिचय हुआ है, उतने से उनके लिए हमारे मन में आदर बढ़ा है।

असहयोग से हानि

हम सुनते थे कि यहाँ भिन्न-भिन्न पक्ष बहुत हैं और उनके बीच में बहुत झगड़ा है। उनका जो होगा सो होगा, सो हम नहीं जानते, परन्तु भूदान के साथ उनमें से किसीका झगड़ा नहीं दीखता। कुछ लोग शिकायत करते हैं कि तमिलनाड में श्रद्धा बहुत कम है। हमें इससे उलटी बात दीखती है। हमने यहाँ इतनी श्रद्धा देखी कि हम घबड़ा गये और हम चाहते हैं कि इतनी अधिक श्रद्धा के बजाय कुछ थोड़ा अधिक विचार आ जाय। कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रदेश से हमने जो आशा रखी है, उसके लिए हमारे मन में बहुत उत्साह है। यहाँ हमारी यात्रा कैसी होगी, रुक-रुक चलेगी या सतत चलेगी, या बंद पड़ेगी अभी हम कुछ नहीं जानते। परन्तु यात्रा तो चलेगी, ऐसा लगता है; क्योंकि वह एक व्यसन हो गया है। इस वास्ते वह चलेगी, परन्तु हमारी यात्रा से लाभ उठाना आप सब लोगों का काम है, और इस वक्त इस काम के साथ सहयोग देने में जो हिचकिचायेंगे, वे देश का नुकसान

करेंगे; क्योंकि उसमें सर्वोदय के कुल कार्यकर्ताओं की शक्ति क्षीण होगी। उसमें से कोई नहीं बचेगा। कुछ कार्यकर्ता कस्तूरबा-केन्द्र के हैं और कुछ कार्यकर्ता खादी के हैं। और भी कई प्रकार के कार्यकर्ता हैं। उनकी सबकी प्रतिष्ठा बचेगी नहीं, अगर जिस काम के लिए लोग आशा रखते हैं, वह काम वे नहीं करेंगे। फिर उस बुनियादी काम के बिना उनके काम प्राणहीन बनेंगे। फिर या तो वे सरकार के अन्दर शामिल होंगे, सरकार के अंदर शामिल होना बुरा तो नहीं है; परन्तु वे क्रान्तिकारी नहीं रहेंगे।

गलत ढंग से काम जल्दी नहीं होगा

यह समझना चाहिए कि जो सरकार होती है, वह लोगों को बहुत ज्यादा आगे नहीं ले जाती, बहुत थोड़ा आगे ले जाती है। वह थोड़ी कोशिश करती है—अगर अच्छी सरकार हो तो। गलत सरकार रहेगी, तो वह लोगों को उल्टी दिशा में ले जायगी। मामूली सरकार (Statusquo) कायम रखने की कोशिश करती है और अच्छी सरकार किंचित् आगे ले जाती है। मान लीजिये, सरकार चाहेगी कि शादी की उम्र ज्यादा होनी चाहिए। आज १३ साल की उम्र में ही शादी होती है। सरकार चाहेगी तो बहुत हुआ, तो १३ के १५ साल करेगी, क्योंकि सरकार जो करती है, उसका अमल कुल देश के लिए होता है। उसके पीछे दंडशक्ति होती है। अच्छी सरकार ज्यादा दंड नहीं करना चाहती। इसलिए जो सुधार होता है, वह बहुत थोड़ा होता है। यह अच्छी सरकार का लक्षण है। परन्तु क्रान्ति थोड़े सुधार से नहीं होती। जनता को जोरों से खींचकर आज की हालत से आगे ले जाना होता है। उसमें कूदने की बात आती है। धीरे-धीरे चलने से काम नहीं होता। इस बारे में बुद्ध भगवान् ने बहुत अच्छी नसीहत दी है। उन्होंने कहा है कि पुण्य-कार्य अगर हम आहिस्ता-आहिस्ता करते हैं, तो पाप जोरों से बढ़ता है। इसलिए अगर हम चाहते हैं कि पाप जोरों से न बढ़े, तो पुण्य-कार्य मन्दगति से नहीं चलना चाहिए। शीघ्रगति से चलाना चाहिए। इस विज्ञान के युग में यह बात बहुत महत्त्व रखती है। आहिस्ता-आहिस्ता हम सुधार करेंगे, तो उसमें आसक्ति आती है। कब, कहाँ से बिजली गिरेगी, इसका कोई अंदाज इस जमाने में किसीको नहीं

है। इसलिए मंद-मंद सुधार करनेवाले लोग इस जमाने में टिक नहीं सकते। मतलब यह नहीं कि सुधार करने की हवस में गलत काम कर दें, बल्कि समझने की जरूरत है कि गलत ढंग से कभी जल्दी काम होता [illegible], पर कार्य होता ही नहीं।

व्यापक कार्य के लिए व्यापक दृष्टि चाहिए

इसलिए हमने कहा कि हम यहाँ व्यापक कार्य करना चाहते हैं। एकांगी कार्य नहीं करना चाहते। हमने कहा कि हम चतुर्विध कार्य करना चाहते हैं, जिसमें ग्रामोदय का काम होगा, ग्रामोद्योग के जरिये वह होगा। दूसरी बात—जमीन का बँटवारा होगा। तीसरी बात—नयी तालीम शुरू करनी होगी और चौथी बात—जातीय-संप्रदाय-भेद का निर्मूलन करना होगा। हम यहाँ तक कहते हैं कि हम भारतीय हैं, यह अभिमान बहुत ज्यादा दिन टिकनेवाला नहीं है। वह भी संकुचित साबित होगा। याने हम मानव हैं, इसी वृत्ति पर हमें स्थिर होना होगा। फिलहाल हम भारतीय हैं, यह चलेगा। परन्तु इससे कोई कम चीज नहीं चलेगी। कम चीज हटानी चाहिए। इतनी व्यापक दृष्टि रखकर हम काम करना चाहते हैं। उसमें हमें यहाँ के कुल रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सहयोग मिलना चाहिए।

कुछ लोग अलग खादी का काम करते होंगे, उन्हें वह एकांगी काम के बदले में चतुर्विध काम की दृष्टि देंगे, तो इस काम को वे व्यापक बना सकेंगे। इसी तरह से जो हरिजन-सेवा करते हैं, उन्हें भी चतुर्विध दृष्टि रखनी चाहिए।

प्रचार-शक्ति की कमी

कल हमारे पास एक चिट्ठी आयी, उसमें उस भाई ने हमें लिखा है कि हरिजनों को आप मत भूलिये। उनको बसने के लिए भी कम जमीन है। इतनी गंभीर सूचना कितनी देरी से हमारे पास आती है। मतलब, सारी प्रचार-शक्ति कितनी धीरे-धीरे काम करती है, यह स्पष्ट होता है। हरिजनों को भूमि मिलनी चाहिए और भूदान में उन्हें एक-तिहाई जमीन दी जायगी। उनका हक है, यह कई बार हम कह चुके हैं। लेकिन हम अपनी प्रचार-शक्ति की कमी महसूस करते हैं। वहाँ

यह भी महसूस करते हैं कि चिट्ठी लिखनेवाला शख्स कितना अज्ञानी है और एकांगी है।

सबकी सेवा को ग्रहण करना है

एक बात हम स्पष्ट करना चाहते हैं। वह हमने बार-बार कही है। भिन्न-भिन्न पंथ, भिन्न-भिन्न जाति के भेद पहले से ही इस देश में मौजूद हैं, उसमें भिन्न-भिन्न पक्षों ने और भेद बढ़ाये हैं। उन्हें समाज-विमुख होने की बात हम नहीं कह रहे हैं। समाज-सम्मुख होने की बात इसमें है। अगर हम अन्याय न करते हों, तो लोकशाही की भाषा में जो विचार होता है, उन्होंने समान फासले का सिद्धान्त बनाया। हमें मध्यबिन्दु में रहना चाहिए और परिधि के जितने बिन्दु हैं, उनसे समान फासले पर रहकर सम्मुख होना चाहिए। अभी एक भाई हमसे चर्चा कर रहे थे कि रचनात्मक कार्यकर्ता विमुख हो रहे हैं। अगर होते होंगे, तो यह हमारी योजना नहीं है, हमारी योजना के विरुद्ध ही है। हमारी योजना में अपने विचार को न छोड़ते हुए, सबकी सेवा के लिए सन्मुख बनकर समुद्र—जैसे सबका ग्रहण कर सकते हैं। समुद्र में गंगा नदी भी जाती है और नाला भी जाता है। समुद्र दोनों को ग्रहण करता है, उसी तरह हम भी सब मनुष्यों को ग्रहण करें। लेकिन समुद्र क्या करता है ? उसके पास एक कीमिया है, रसायन है। जितना भी पानी आता है, उसको वह अपना रूप देता है। गंगा का पानी समुद्र में जाता है तो गंगाजल नहीं रहता, समुद्र बनता है। गंदे नाले का पानी समुद्र में जाता है, तो नाला नहीं रहता, समुद्र बनता है। इस तरह से जो भी हमारे सामने उपस्थित होंगे, उन्हें अपना रूप देना चाहते हैं, याने उन्हें आत्मसात् करना चाहते हैं, उन पर पूरा प्रेम करना चाहते हैं।

बुनियादी कामों में शक्ति लगायें

एक भाई के पास जमीन थी। वे दूसरा उद्योग भी करते थे। वे हमें जमीन देने के लिए आये थे। थोड़ी जमीन देने लगे। मैंने कहा, "मैं जिस पर प्रेम करता हूँ, उस पर पूरा ही प्रेम करता हूँ, क्योंकि वह मेरा मित्र है।" वे भाई समझ गये, उन्होंने अपनी पूरी जमीन दी। इस तरह से इन भिन्न-भिन्न संप्रदायों को हम अपना

रूप देना चाहते हैं। अपने में उन्हें समा लेना चाहते हैं। यह काम संकुचित नहीं है, वल्कि वहुत व्यापक है। काम करते हुए कार्यकर्ताओं की यह मनःस्थिति होनी चाहिए। आपके इस प्रांत में शुरू में जगन्नाथन् ने काम किया, अव मध्य में कुछ दूसरे-तीसरे कार्यकर्ता लगे हैं। समाप्ति में कुल जनता यह काम कर रही है। ऐसा दृश्य दीखना चाहिए। इस रास्ते जिस गाँव में जायेंगे, वहाँ के मसले ध्यान में रखकर काम करना चाहिए। कुछ मसले वुनियादी स्वरूप के होंगे। कुछ छोटे-मोटे प्रश्न होंगे, उनमें पड़ेंगे तो हमारा कार्य क्षीण होगा। परंतु वुनियादी सवाल हाथ में लेंगे, जैसे, उस गाँव में ग्रामोद्योग नहीं होंगे, तो लोगों को समझायेंगे। जिस गाँव में जमीन का वँटवारा हो चुका है, ग्रामोद्योग है, फिर वहाँ नयी तालीम की वात करेंगे। जिस-जिस गाँव में रचनात्मक कार्यकर्ता जायगा, वहाँ जिन-जिन वुनियादी चीजों का अभाव होगा, वहाँ वे काम करने में हमारी शक्ति लगायेंगे। जो भी इस काम को मदद देना चाहेंगे, उनका हम स्वागत करते हैं। तमिलनाड में यह व्यापक कार्य हमें करना है। इसके लिए सवका सहयोग हम चाहते हैं। इसके लिए वहुत अनुकूल हवा हम यहाँ देखते हैं।

विश्वास से ही काम वनेगा

मनुष्य में कुछ दोप होते हैं, परन्तु कोई भी परिपूर्ण दोपी नहीं होता है। हम दोपों की तरफ ध्यान न दें, गुणों की तरफ ध्यान दें। जो गुण हैं, उनका उपयोग करना है; यह वृत्ति रखेंगे, तो सामूहिक तौर पर काम कर सकेंगे। जितना जिसने किया, उतना हम उसका उच्चारण करेंगे। फलाने ने संपत्तिदान दिया, परन्तु भूमिदान देता नहीं है, इस तरह विचार करना गलत है। एक वात याद रखिये, हमारे लिए न देनेवाला कोई नहीं है। जो हैं, वे देनेवाले हैं। उनमें कुछ हैं आज के दाता, कुछ हैं कल के दाता और कुछ हैं परसों के दाता। जो कल नहीं देगा, वह परसों देगा याने वह देनेवाला है। हम मन में ऐसा हिसाव रखते हैं कि आज पाँच लाख दाताओं ने जमीन दी है, तो वे आज के दाता हैं, वचे हुए भावी दाता हैं। तात्पर्य, विश्वास से ही यह काम वनेगा। जैसे माता के पास पूर्ण विश्वास से और पूर्ण श्रद्धा से वच्चा पहुँचता है, वैसे हम जनता के पास पहुँचते

हैं, फिर जो चाहिए वह मिलता ही है। माँ अगर नहीं दे सकती है, तो बच्चे से भी माँ को अधिक दुःख होता है, वैसी हमारी स्थिति है।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)

२९-५-५६

परिशिष्ट : ५

उत्तरप्रदेश और पंजाब के कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा

निमित्तमात्रं भव

[विनोबा]

लोग यह मानते हैं कि यह शख्स हिन्दुस्तान का काम पूरा कर देगा। अभी भी ऐसी भावना होती है, जिसे हम विभूति-पूजा कहते हैं, वह भावना हिन्दुस्तान में मौजूद है, दुनिया में भी मौजूद है। परन्तु हम जानते हैं कि विभूति-पूजा की कल्पना हिन्दुस्तान में दूसरे देशों से कम ही है। यह हमारा हिन्दुस्तान का दर्शन है। आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में किसीका नाम नहीं चला। ईसा के नाम पर ईसाई-धर्म चला याने क्राईस्ट को पूर्ण पुरुष, परम आदर्श माना है। सारा ईसाई-धर्म एक व्यक्ति के इर्द-गिर्द खड़ा किया है। इसलाम में भी आप देखेंगे कि यद्यपि मुहम्मद ने यह बार-बार कहा है कि मैं तो केवल इन्सान हूँ, आपमें और मुझमें कोई फर्क नहीं है, तो भी 'अल्ला का रसूल मुहम्मद है', ऐसा कहते हैं और वह आखिरी रसूल है, इस वास्ते सब इसलाम मुहम्मद के व्यक्तित्व के आसपास है। यही बात बौद्धों के बारे में कही जाती है। कहा जाता है कि बुद्ध ने यह दावा नहीं किया कि मैं ईश्वर का अवतार हूँ, ईश्वर का पैगाम लाया हूँ। ऐसी कोई भाषा गौतम नहीं बोले, यह उनकी विशेषता मानी जाती है। 'जो कुछ मैं कह रहा हूँ,

वह आप वुद्धि की कसौटी पर कस लीजिये और सही मालूम होता हो, तो मान्य कीजिये। सही नहीं मालूम होता होगा, तो मान्य न कीजिये' ऐसा गौतम बुद्ध कहते हैं। गौतम बुद्ध के अनुयायियों ने कुल बुद्ध-धर्म उनके व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द में रख लिया। यह जो मूर्ति-पूजा निकली है, वह बौद्धों ने निकाली है। आपको मालूम है कि बुद्ध 'बुद्-पूजा' कहते हैं। मूर्ति के लिए 'बुद्' (बुत्) शब्द निकाला है, वह बुद्ध पर से ही लिया है। यहाँ तक कि बुद्ध भगवान् के दाँतों की भी पूजा होती है। अब वास्तव में वे दाँत पुराने हैं या नये बनाये हैं, यह मैं नहीं जानता। पर दाँतों की भी पूजा होती है। याने व्यक्ति के इर्द-गिर्द एक चीज खड़ी की है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दू-धर्म ही ऐसा धर्म है कि जिसमें यद्यपि कई महान् व्यक्ति हो गये और उन व्यक्तियों के लिए गुरुभावना रखनेवाले लोग भी हुए, वैसी गुरुभावना रखने का अधिकार भी है, तो भी किसी व्यक्ति की कुछ नहीं चली। न कृष्ण की चली, न कपिल की चली है। न शंकर-रामानुज की चली, न व्यास की चली है—इस अर्थ में कि कुल हिन्दू-धर्म उनके इर्दगिर्द खड़ा किया हो, ऐसा नहीं। यद्यपि राम का चरित्र गाया जाता है, कृष्ण का चरित्र गाया जाता है और ईश्वर की कल्पना से गाया जाता है, मानव-कल्पना से नहीं गाया जाता और कृष्ण ने गीताबोध दिया है, फिर भी करोड़ों हिन्दू ऐसे होंगे, जिनके घर में 'गीता' नहीं। गीता ही रखनी चाहिए, यह लाजिमी नहीं है। रामायण भी पढ़ सकते हैं। 'कुरल' भी पढ़ सकते हैं और दोनों नहीं, तो कबीरदास के दोहे भी पढ़ सकते हैं।

पवनार में कुरान शरीफ

हम जहाँ रहते हैं वर्धा में, वहाँ से पाँच मील दूर पवनार नाम का गाँव है। वहाँ हमारा परंधाम-आश्रम है। उस गाँव की बस्ती तीन हजार होगी। छह सौ घर हैं। उन छह सौ घरों में कोई चालीस घर मुसलमानों के हैं। उस गाँव में कुरान की जितनी प्रतियाँ हैं, उतनी हिंदू-धर्म के किसी भी ग्रन्थ की नहीं हैं। इसलाम का धर्म मुहम्मद के इर्द-गिर्द खड़ा किया है और जो पढ़ सकता है, उसके पास कुरान होती है। जो नहीं पढ़ सकता, उसके पास भी पूजा के लिए कुरान रहती है। शादी वगैरह होती है, तो दूसरी कोई चीज दें या न दें, कुरान देना

ही चाहिए। याने यही समझ लीजिये कि हर प्रौढ़-व्यक्ति के पास कुरान की एक प्रति रहती है। आरम्भ के कुछ पन्ने पढ़ लेते हैं, बाकी कुल कोरा ही रहता है! कभी-कभी तो अर्थ भी नहीं समझते, फिर भी कुरान रखते हैं। हमने दूसरी ऐसी कोई किताब नहीं देखी, जिस पर इतनी श्रद्धा वे रखते हैं। हिंदुओं के यहाँ दस-बारह धर्मग्रन्थों की प्रतियाँ रहती हैं। मराठी जानता है, तो ज्ञानेश्वरी रखता है। नहीं तो तुलसी-रामायण रखता है। कोई गीता रखता है। किसीके पास रामायण होती है। कोई तुकाराम की गाथा रखता है। इसी तरह एक ही किताब हर घर में नहीं है। इसलिए कुरान की प्रतियाँ सबसे ज्यादा उस गाँव में देखने को मिलती हैं। बहुत लोगों को लगता है कि इससे एकता बढ़ती है और उससे कुछ लाभ भी है। संगठन माननेवालों को ये लाभ आवश्यक भी मालूम होते हैं। मेरी समझ में आध्यात्मिक चिंतन में और सामाजिक उन्नति में यह बात बहुत मदद करनेवाली नहीं है। सावधानी से इन शब्दों का इस्तेमाल कर रहा हूँ। थोड़ी मदद उससे मिलती है, ज्यादा मदद नहीं मिलती।

बाबा कहाँ-कहाँ जायगा ?

मैं कहना चाहता हूँ कि सामाजिक कार्य किसी भी व्यक्ति के इर्द-गिर्द खड़ा होना ही नहीं चाहिए। अगर यह भास हो जाय कि यह आंदोलन बाबा करेगा; वही उसको पूरा करेगा; तो उसका अर्थ यह होगा कि हम बुनियादी चीज ही नहीं समझे। इस भ्रम से लोगों को मुक्ति मिलनी चाहिए। पैदल चलनेवाला कहाँ-कहाँ जायगा ? चार महीने इधर है, तो मालूम नहीं यहाँ से दूसरी जगह कब जा सकेगा ? इसलिए आप देखते हैं कि इन दो-चार-पाँच सालों में छोटे-छोटे लोग खड़े हुए हैं और वे अपनी बुद्धि के अनुसार काम करते हैं। कुछ गलत काम भी करते हैं। लेकिन कुछ-न-कुछ करते हैं।

अनुयायीहीन नेता

मैं तो सोचता हूँ कि अगर अखिल भारतीय नेतृत्व गलत है, तो उत्तर भारत के लिए गंगा-यमुना-संगमवाला नेतृत्व भी गलत है। आपको मालूम है न, प्रयाग में जहाँ गंगा-यमुना का संगम है, वहाँ नेता पैदा होते हैं। यह संगम की महिमा ही

है। वहाँ नेताओं के अनुयायी हैं नहीं। कई नेता ऐसे हैं, जो अपने को नेता मानते हैं और पीछे देखते हैं, तो अनुयायी नहीं हैं। तो अनुयायी की तलाश में अनुयायी के अनुयायी बनते हैं। मैं तो व्याख्या करता हूँ कि नेता वह है, जो अनुयायी को ढूंढ़ता हो और अनुयायी के पीछे-पीछे जाता हो और अनुयायी का अनुयायी बनता हो। मालिक वह है, जो गुलाम का गुलाम है। प्यास लगती है, तो पानी भी नहीं पी सकता है! शायद पानी कहाँ रखा है, वह जगह उसे मालूम नहीं रहती, इसलिए खुद पानी नहीं पी सकता है। नौकर जब देगा, तब पी सकेगा। तो इसी तरह नेता अनुयायी के पीछे जाते हैं। सोचते हैं, अनुयायी क्या कहेंगे। अगर हम फलानी बात बोलेंगे, तो अनुयायी हमें मान्यता नहीं देंगे, इस वास्ते यह बात नहीं बोलनी चाहिए। याने लोगों के सामने जो सत्य दीखता है, वह सीधा और सरल रखने की हिम्मत नहीं होती। मैं कहना यही चाहता था कि अखिल भारतीय नेतृत्व अगर गलत है, तो बावन जिलोंवाले उत्तरप्रदेश का नेतृत्व भी गलत है।

नेतृत्व मिटना चाहिए

बावन जिलों का कारोबार कौन देखेगा?—करणभाई! संस्कृत में कहावत है कि एक, दो, तीन, चार उँगलियाँ गिनने पर जो उँगली बचती है, उसे 'अनामिका' कहते हैं। निर्देश करने लायक चार थे, तो चार नेता हैं। लेकिन उत्तरप्रदेश में एक ही नाम चलता है? करणभाई! कभी कुछ पत्र आता है, तो हम करणभाई के पास भेज देते हैं। अब मालूम नहीं करणभाई कब, कहाँ घूमते हैं और करणभाई वह पत्र कहाँ भेजते होंगे! नजदीक ही बिहार प्रदेश है। वहाँ जितना काम हुआ था, उसका स्पर्श होना चाहिए था, वह उत्तरप्रदेश को नहीं हुआ, जिसका कारण यही है कि करणभाई एक ही हैं। एक कहानी है। नारद मुनि कृष्ण के पास पहुँचे और कहने लगे कि "तुम्हारी सोलह हजार अठारह स्त्रियाँ हैं, तो इनमें से एक हमको भी दीजिये।" कृष्ण ने कहा, "ठीक है। वे सारी अलग-अलग कमरों में रहती हैं, जिस कमरे में मैं नहीं होऊँगा, उस कमरे की स्त्री आप ले सकते हैं।" नारद घूमने लगा और हर कमरे में जाकर देखने लगा। हर कमरे में कृष्ण भगवान् उपस्थित थे। अब यह कृष्ण भगवान् की कला किसीके पास है

नहीं। अगर यह कला करणभाई के पास रहेगी, तो यह सवाल ही मिटेगा। पर यह कला किसीको नहीं सधनी चाहिए, इसलिए कि नेतृत्व मिटना चाहिए।

हिदायत न मानने की आजादी

हम संगठन नहीं चाहते। कोई एक स्थान ऐसा निश्चित हो, जहाँ से लोगों को सब तरह की जानकारी निश्चित रूप से मिलती है। ऑफिस ऐसा तैयार होना चाहिए कि कोई भी पत्र लिखकर पूछेगा, तो जानकारी हासिल हो सकती है। इतना ही उसका कार्य है और अगर कोई हिदायतें चाहें, तो पूछ सकते हैं। अगर मानना है, तो मान सकते हैं, नहीं मानना है, तो वैसा भी कर सकते हैं। जिस संगठन में हिदायत न मानने की आजादी नहीं है, वह संगठन निकम्मा है और जहाँ हिदायतें मिलती ही नहीं, वह संगठन ही नहीं है। हिदायतें मिलने की सहूलियत होनी चाहिए और हिदायत न मानने की आजादी होनी चाहिए, यह सिद्धान्त कोई भी राजनैतिक पार्टी कबूल नहीं करेगी। इसलिए राजनैतिक पार्टी का कोई स्थायी महत्त्व नहीं है। इतिहास में राजा आये और गये। लड़कों को स्कूल में उनके नाम रटने के लिए कहते हैं। तारीख ध्यान में रखने के लिए कहते हैं। लोगों को तुलसीदासजी का नाम मालूम है। कबीरदास का नाम मालूम है। लोग जानते हैं कि कौन महापुरुष हैं और हमारे सच्चे सेवक, सच्चे हितचिंतक कौन हैं। लोग कहते हैं कि अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गये। वैसा ही इधर हम सुनते हैं कि पल्लव राजा के जमाने में शंकराचार्य हो गये। अब कौन पल्लव, किस पेड़ का पल्लव? उनके जमाने में शंकराचार्य हो गये, ऐसा कहते हैं। लेकिन जिनके नाम का लोगों को पता ही नहीं, ऐसे राजा का वह जमाना था, तो ऐसी उल्टी बात है! जमाना अकबर का और पल्लव का नहीं था। जमाना तुलसीदास का और शंकराचार्य का था। मैं कहना चाहता हूँ कि हिदायत और हुकुम नहीं चलने चाहिए, फिर भी अगर संगठन होता है, तो हमें ऐसी हिदायतें मिलनी चाहिए, जिन्हें न मानने की आजादी हमें है। लेकिन राजनैतिक पार्टियों में यह कभी नहीं चलेगा। उनके पास डंडा रहता है। अनुशासन की कार्रवाई करते हैं—उसके आधार पर, इसलिए दिमागों की आजादी नहीं रहती है।

दिमाग ढालने का सरकारी ढाँचा

अगर उत्तरप्रदेश की सरकार एक किताब मुकर्रर करती है, तो कुल बावन जिलों में बच्चों को वह किताब पढ़नी पड़ती है। यह जो शक्ति है, वह न शंकर में थी, न रामानुज में थी, न बुद्ध में थी। जो पढ़ना चाहिए, वह भी पढ़ना पड़ता है और जो नहीं पढ़ना चाहिए, वह भी पढ़ने बैठते हैं, यह शक्ति उत्तरप्रदेश की सरकार में है! अब बावन जिलों से उनका पेट नहीं भरता है, तो विन्ध्यप्रदेश के और भी दस-बारह जिले माँगते हैं! तो बावन की जगह साठ-बासठ जिलों में एक किताब चलेगी। हम कहते हैं कि कुल हिन्दी बोलनेवाला अपना प्रान्त समझो। इस तरह दिमागों को एक ढांचे में ढालना एक सिकंजे में डालना है। यह दुनिया में सबसे खतरनाक चीज है। श्रद्धा होनी चाहिए। माँ पर बच्चे की श्रद्धा होती है। माँ के जरिये ही बच्चों को ज्ञान मिलता है। नहीं तो उसे ज्ञान नहीं मिलता। अगर वह कहती है कि देख बच्चे, यह चाँद है, तो बच्चा उसे मानता है। अगर बच्चे के मन में यह शंका आयी कि कौन जाने यह चाँद है या नहीं, किसीको पूछना होगा, किसीकी सलाह लेनी होगी कि यह सचमुच चाँद है या नहीं, इस तरह शंका होगी, तो बेचारे को ज्ञान ही नहीं होगा। तो, समाज को निःसंशय श्रद्धा की आवश्यकता है। पर चीज लादी जाय, यह खतरनाक है।

गुलामी का रूपांतर

सरकार के जरिये और राजनैतिक पक्ष के जरिये यह सब कार्य होता है। जिस दिन ध्यान में आ गया कि हम आजादी का नाम लेते हैं और उसके नाम पर आजादी के पाँव तोड़ते हैं, उसे खंडित करते हैं, उस दिन सच्ची आजादी हासिल होगी। तब तक आजादी नहीं आयगी। एक गुलामी मिटकर दूसरी गुलामी आयगी। दूध का दही बनता है। दही का मक्खन बनता है। मक्खन का घी बनता है, लेकिन घी का पत्थर नहीं बनेगा। पत्थर एक अलग ही चीज है। इस तरह गुलामी का रूपान्तर होता जायगा और एक रूपान्तर पहले से बेहतर है, ऐसा भास होगा; परन्तु वह सच्ची आजादी नहीं होगी। तो, लोगों को पूर्ण आजादी

होनी चाहिए। फिर भी हिदायतें दी जायँगी। हिदायतें मानते हैं, तो भी काम अच्छा चलता है और हिदायतें नहीं मानते हैं, फिर भी काम चल रहा है, यह हमें यहाँ सावित करना चाहिए।

सत्य की सत्ता

ऐसी भी कोई सत्ता होगी, जो सत्ता नहीं चलाती; फिर भी सत्ता चलती है। शासनमुक्त समाज का अर्थ यही है कि सत्य की सत्ता चलेगी, इस वास्ते सत्य की सत्ता सब लोग कबूल करें, यह सिद्ध होना चाहिए, पर हुकूमत न चले। यह हिन्दुस्तान की विशेषता संस्कृत-साहित्य में देखने को मिलती है। उसमें विचार की जितनी आजादी है, उतनी हमने किसी भी दूसरे साहित्य में नहीं देखी। हमारे यहाँ कपिल, कणाद, जैमिनी, आदि बड़े-बड़े महापुरुष हुए, वे महान् विचारक थे। एक-दूसरे पर प्रहार करते थे। पर सारे-के-सारे पूजनीय हैं। सारे हिन्दू-धर्म में हैं और सबने हिन्दू-धर्म को बढ़ावा दिया है। इसमें विचार की आजादी है।

निमित्तमात्रं भव

हम चाहते हैं कि करणभाई का आफिस निमित्तमात्र बने। जिनके पास भूमि है और जिनके पास नहीं है, उन दोनों के पास हमारे कार्यकर्ता पहुँचेंगे और उन दोनों पर हमारे काम की जिम्मेवारी है, याने कुल जनता पर यह जिम्मेवारी है, ऐसा हम कहेंगे, तो काम चलेगा। नहीं तो रुकावट आयेगी और फिर लोगों का जो लेवल (स्तर) है, वही भूदान के कार्यकर्ताओं का होगा। फिर लोगों की शक्ति जितनी सीमित है, उतना काम भी सीमित होगा। आज तो यह तय हुआ है कि भूदान-समितियाँ निमित्त-मात्र रहेंगी और बाकी काम लोग उठा लेंगे।

संस्कृतियों का पंज-आब

उत्तर-प्रदेश और दिल्लीवाले अब बाबा का समय अपेक्षित नहीं करते। पंजाब और हिमाचलवालों को माँग करने का हक है कि बाबा की यात्रा अब हमारे प्रान्त में होनी चाहिए, परन्तु फिलहाल वह नहीं होने वाली है। अब हम दक्षिण में घूम रहे हैं, उस हालत में पंजाब को बहुत बल मिलना चाहिए। उनकी

हिम्मत बढ़नी चाहिए। हिन्दुस्तान अन्दर से इतना एकरस देश है कि इधर की भावना उधर पहुँचती है और उधर की इधर। यह तो विज्ञान का जमाना है, इसलिए अन्तर बहुत छोटा हो गया है।

पंजाब का मामला कुछ सुलझा है, वह भी ईश्वर की भारत पर कृपा है। इस वक्त भाषानुसार प्रान्त-रचना में एक बड़ा झमेला वहाँ पड़ा हुआ था। लेकिन वह कुछ हल हुआ है, पूरा समाधान और सबका समाधान तो नहीं हुआ है, फिर भी काफी समाधान हुआ है, यह खुशी की बात है।

हम चलते हैं, तो पाँव हमारे जमीन पर रहते हैं, लेकिन दिमाग और सिर ऊँचा आसमान में रहता है। जिस दिन पाँव के साथ सिर भी हम जमीन पर रखने लगेंगे, उस दिन मानव का मानवत्व खतम होगा और वह केवल प्राणी बनेगा, उसे जानवर की दशा प्राप्त होगी। जिस दिन वह पाँव के साथ सिर भी जमीन पर रखेगा, उस दिन वह जानवर बनेगा। मानव-मूर्ति इस अर्थ में दूसरे प्राणियों से भिन्न है, मानव अब आसमान में रहता है, उसके पाँव जमीन पर रहते हैं, सिर आसमान में रहता है और अत्यंत व्यापक चिंतन वह करता है। इस तरह भूदान-कार्यकर्ताओं को भी जमीन पर चलना चाहिए और चिंतन व्यापक करना चाहिए।

संस्कृतियों का पंचामृत : पंजाब

पंजाब के लिए पंजाबियों को जो गौरव हासिल हुआ था, वह प्राचीन काल [से] आज तक है। उसका भान हम वहाँ के लोगों को कराना चाहते हैं। वह [अ]नेक संस्कृति के संगम की भूमि है। सिर्फ पाँच नदियों का स्थान है, ऐसा नहीं; [ब]ल्कि अनेकविध संस्कृतियों का स्थान है। ग्रीक, मुसलमान, हिंदू, इस तरह [पं]जाब में मिली-जुली संस्कृति है। वह गौरव ध्यान में आयगा, तो पंजाब में [ए]कता होगी और ताकत बनेगी। नहीं तो वहाँ भेद बढ़ेगा। वहाँ अनेकविधता [हो]ने के कारण भेद बढ़ता चलेगा, तो पंजाब का काम नहीं बनेगा। वहाँ भिन्न-[भि]न्न संस्कृतियों का संगम होने के कारण अभेद-वृत्ति है। इतना सौभाग्य दूसरे [प्र]ांत को हासिल नहीं हुआ है, क्योंकि पुराने जमाने में समुद्र अनुल्लंघनीय माना

जाता था। दूसरे देश में जाना, समुद्र पार करना बहुत कठिन था। अब वैसा नहीं रहा है, पुराने जमाने में व्यापार के लिए समुद्र-पार जाते थे। पंजाब और एशिया का बहुत संबंध आया और इसलिए पंजाब में विविधता बाकी है। परंतु इस विविधता के अंदर जो एकता है, उसे भूलना नहीं है। वहाँ अभेद की भूमिका हम ले सकते हैं। वहाँ की विविधता का रूपान्तर भेद और झगड़े में होता है, इसका कारण वहाँ सिख और मुसलमान, इन दोनों में बनती नहीं है।

कृत्रिम भेद टिकेंगे नहीं

यद्यपि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान बना है। हम इतना कह देते हैं कि उस भेद की कोई हस्ती नहीं है। वह भेद कृत्रिम है और टिकनेवाला नहीं है। राजनैतिक खयाल से यह माना जाता है कि वे दो अलग-अलग देश हैं, परन्तु सांस्कृतिक खयाल से दोनों एक ही हैं। वह एकता भंग नहीं हो सकती। यह भेद जो आज दीखता है, वह टिकनेवाला नहीं है। फिलहाल ये दो देश हैं, लेकिन उनका संबंध नजदीक का है, दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं। नदियाँ भी इधर से उधर बहती हैं और संबंध बनाती हैं। पहले जमाने में नदियाँ शत्रु-मित्र बनाती थीं, नदी के इस किनारे के लोग अनुकूल और उस किनारे के लोग प्रतिकूल, ऐसा मानते थे। परंतु आज इस तरह के भेद नहीं रहे हैं। आज तो समुद्र के कारण जो भेद बनते थे, वे भी कम हुए हैं। फिर भी हम देखते हैं कि इन दिनों भेद बढ़ रहे हैं। इस तरह से चलेगा, तो उसमें भूदान नहीं पनपेगा; क्योंकि भूदान में हम दिलों को जोड़ना चाहते हैं और इस वास्ते हम पंजाब के सेवकों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे वहाँ के भेद के खिलाफ जेहाद छेड़ दें और एकता की बात पेश करें। पंजाब को हम अपना 'गुडविल मिशन' समझते हैं। उसके जरिये दूसरे देशों के साथ हम प्रेम-संबंध प्रस्थापित कर सकते हैं।

हम पक्षों को नहीं मानते

हिन्दुस्तान में अलग-अलग सेक्शन्स हुए हैं, टुकड़े-टुकड़े बने हैं। यह सब भिन्न-भिन्न पक्षों के कारण हुआ है, इसलिए हम पक्षों को नहीं मानते। जब हम ऐसी बात करते हैं, तब कुछ लोगों को लगता है कि यह आदमी 'आउट आफ

डेट' है, इस जमाने का स्पेसिमेन नहीं है, दो-तीन हजार साल पीछे का होगा या दो-तीन हजार साल आगे के जमाने का होगा। फिर भी हम कहना चाहते हैं कि यह पक्षभेदवाली बात पश्चिम से आयी है, वह अत्यंत खतरनाक है। जहाँ से आयी है, वहाँ के लिए भी खतरनाक है और अपने यहाँ धर्म-भेद, भाषा-भेद, जाति-भेद पहले से ही मौजूद है। पार्टीभेद उसमें दाखिल होंगे, तो उससे लाभ नहीं होगा। उन भेदों का रूपान्तर झगड़ों में होगा। यह जाति-भेद टूटनेवाला ही था, उस पर काफी प्रहार हो चुका था, वह पूरा टूटा नहीं था, परंतु इलेक्शन के कारण उसको जीवन-दान मिला है। हम ऐसा कहते हैं, तो कुछ लोग दुःखी होते हैं और कहते हैं कि आप हमारे साथ नहीं हैं। हमारा ऐसा कोई आग्रह नहीं है कि आज भी हमारे जो लोग भिन्न-भिन्न पक्षों में काम कर रहे हैं, वे अपनी-अपनी पार्टियाँ छोड़ें। परंतु हमें किसीकी पार्टी का आकर्षण मालूम नहीं होता है। हम दूर से देखते हैं, तो लगता है कि जैसे आम लोगों को अकबर का पता नहीं है, वैसे इन पार्टियों का भी लोगों को पता नहीं रहेगा।

अयोध्या में अहिंसा का राज्य

लोगों को एक ही राजा मालूम है और वह राजा राम। उसकी राजधानी अयोध्या है। अयोध्या, याने जिसमें युद्ध नहीं होता, अयुद्धा; और राम का वर्णन किया है: "प्रभु तरुतर कपि डार पर, पेखिये आप समान।" याने बंदरों में इतनी सभ्यता नहीं कि प्रभु नीचे बैठे हैं, तो हम कैसे ऊपर बैठें! परंतु प्रभु ने उनको अपने समान बना लिया। तो ऐसे प्रभु, जो सबको अपने समान बनाते हैं और उनकी राजधानी अयोध्या, जहाँ अहिंसा का राज्य है, यह अपने देश का वैभव है। इसलिए जिन्होंने राजनीति को महत्त्व दिया, वे अपने देश की ताकत नहीं समझे हैं।

राजनीति में शक्ति नहीं

अपने देश पर एक बहुत भारी बोझ था। उस बोझ को हटाना था, इसलिए उसमें धार्मिक पुरुषों का, साहित्यों का, सबका काम था—उसमें भाग लेने का; और स्वराज्य प्राप्त हुआ, तो वह बोझ हलका हुआ। वह भी एक शक्तिशाली

काम था, क्योंकि इसमें त्याग करना पड़ता है। उस जमाने में कांग्रेस के 'चार आना मेम्बर' बनना याने अधिकारियों की अवकृपा और उनका रोप सहन करना था। खादी पहनना भी मुश्किल था। परंतु आज चार आने के मेम्बर बनने में कोई तकलीफ नहीं होती है, इसके बदले में 'लाइसन्स' हासिल कर सकते हैं। किसीकी कृपा हासिल हो सकती है। उसमें कुछ खोने का नहीं है। परंतु शक्ति का अधिष्ठान वहाँ होता है, जहाँ त्याग का प्रसंग है। स्वराज्य के पहले जो लोग राजनीति में भाग लेते थे, उनको यह शक्तिशाली काम करना पड़ा। परंतु आज शक्ति वहाँ है, जहाँ सामाजिक और आर्थिक विषमता मिटाने का काम होता है। राजनीति में अच्छे लोग जाना चाहते हैं, परन्तु शक्ति वहाँ नहीं है।

गांधीजी की दूरदृष्टि

गांधीजी ने स्वराज्य के पहले ही स्वराज्य के बाद के काम शुरू किये थे। १९१८ में याने स्वराज्य के तीस साल पहले अपने लड़के को हिन्दी-प्रचार के लिए मद्रास भेजा था और आज भी वह नहीं हो सका है। दक्षिण भारत के लोग हिन्दी इतनी नहीं जानते हैं, परंतु स्वराज्य के लिए यह आवश्यक है, इसे पहचानकर गांधीजी ने उसका आरम्भ पहले ही कर दिया था। नयी तालीम का काम भी उन्होंने पहले ही शुरू कर दिया। इस तरह दूरदृष्टि से दूसरे-तीसरे कई काम उन्होंने शुरू किये। वे सिर्फ राजनीति में नहीं पड़े, समझते थे कि राजनीति में ताकत है, क्योंकि उस जमाने में उसमें त्याग था, परंतु इन कामों के बिना हम स्वराज्य नहीं चला सकेंगे, यह उन्होंने पहचाना था।

राजनीति में भोग स्वाभाविक

अब हमें समझना चाहिए कि जहाँ त्याग का क्षेत्र था, वहाँ भोग का क्षेत्र हो गया है। उसमें रहकर भी भोग से अलिप्त रहने का भाग्य प्राप्त हो सकता है, जो भरत को प्राप्त था। जब भरत और राम की भेंट हुई, तब लोग यह समझ नहीं सके कि अयोध्या में कौन रहा था और जंगल में कौन गया था! कवि लिखता है कि एक छोटा और एक बड़ा दिखता था, उस पर से लोगों ने पहचाना।

इस तरह राज्य चलानेवाले आज राज्य चलायेंगे, तो उत्तम कार्य होगा। वे त्याग कर सकते हैं, तो जरूर करें, परंतु वहाँ त्याग स्वाभाविक नहीं है, वहाँ भोग स्वाभाविक हो सकता है। पहले त्याग स्वाभाविक था, परंतु लोग जेल में तो खुशी से जाते थे, लेकिन जहाँ जुर्माना वसूल करने की बात आती थी, तब कुछ लोग डरने लगे। यहाँ भूदान में तो लोभ मिटाने की बात है। वह त्याग के बिना नहीं हो सकता। इसलिए उस जमाने में जिन लोगों ने त्याग किया था, वे इस काम के लिए प्रतिगामी साबित हो सकते हैं। सब लोग नहीं, कुछ और काफी लोग प्रतिगामी साबित हो सकते हैं। उन्होंने त्याग का परिवर्तन भोग में किया है, काफी जमीन वगैरह हासिल की है। इसलिए अब त्याग करना कठिन मालूम होता है। त्याग का मौका राजनीति में कम है, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में त्याग का मौका है। इसलिए इस क्षेत्र में शक्ति ज्यादा है।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२९-५-'५६

परिशिष्ट : ६

बिहार प्रान्त के कार्यकर्ताओं के साथ

बिहार क्रान्ति का अग्रदूत बन सकता है

[विनोबा]

आज बिहार में जन-सेवकों की संख्या दूसरे प्रान्तों से अधिक है। उसका श्रेय ही उस ऐतिहासिक घटना को है, जिसके कारण बिहार एशिया का सांस्कृतिक केन्द्र बना है। प्रेरणा कहाँ से आती है, यह हरएक को मालूम नहीं होता। पर जो विज्ञानवेत्ता हैं, वे यह जानते हैं।

ढाई हजार साल के बाद बुद्ध भगवान् का कार्यारंभ आज हो रहा है। पर गौतम बुद्ध ने यह आकांक्षा नहीं रखी थी कि कुल दुनिया की सेवा करते जायँ या सारे भारत में उनका संदेश पहुँचे। परन्तु उन्होंने अपने विचार में कोई संकोच नहीं रखा था। इसलिए वह शब्द सारी दुनिया के लिए सहज ही हो गया था। उनके मन में तो आसपास के लोगों की सेवा की ही भावना थी। इसलिए उस जमाने की अन्तर्प्रान्तीय भाषा संस्कृत का उन्होंने इस्तेमाल नहीं किया और पाली भाषा का इस्तेमाल किया, जो कि वहाँ के अविद्वानों की और जन-समाज की भाषा थी। पर आज उनके वचनों की कदर दुनिया को मालूम हो रही है।

बिहार के परम्परागत गुण

विहारी लोगों में कुछ गुण हैं, पर कुछ दोषों के साथ। वे गुण भी आज के बिहारी लोगों के बनाये हुए नहीं हैं, बल्कि एक परम्परा से चले आये हैं, जिसमें जनक महाराज हो गये, याज्ञवल्क्य हुए और बुद्ध एवं महावीर हुए। ये ऐसे नाम हैं, जिनको हिन्दुस्तान का हरएक बच्चा जानता है। मैंने भी जब बिहार में काम शुरू किया, तो उस समय पहचाना नहीं, पर बाद में जो पहचाना, तो मुझे कुछ प्रेरणा मिली। भूमि का कोटा तय किया था—बहुत सलाह-मशविरा करके सिर्फ चार लाख एकड़ का, परन्तु वहाँ कदम रखते ही मैंने चालीस लाख की भाषा शुरू की। मैंने कुछ सोच-विचारकर यह नहीं किया था। अब जितना सोचा था, उतना हुआ नहीं। पर जितना सोचते हैं, उतना अगर हो जाता है, तो हम भी ईश्वर बन जाते हैं। इसलिए कुछ कम होना लाजिमी है। फिर भी काफी काम हुआ। जैसा कि और लोग समझते थे कि बाबा के जाने के बाद यह सब खतम हो जायगा, सो वैसा कतई नहीं हुआ और आज भी वहाँ जनता जाग्रत है, सब लोग काम कर रहे हैं, ऐसा हमको बहुत ही मनोरम दृश्य दीख रहा है।

बिहार की विशेषता

सवा दो साल हमने वहाँ बिताये। उसके बाद अब डेढ़ साल हो रहा है। हम अपने को पूरे अर्थ में बिहारी महसूस करते हैं और बिहार के गुण एवं दोष, दोनों का हमको अभिमान है। इसलिए वैद्यनाथ बाबू को एक बार पत्र में हमने

लिखा था कि "बिहार के जो सज्जन हैं, वे तो सज्जन हैं ही, लेकिन बिहार के जो बदमाश हैं, वे भी इतने बदमाश नहीं हैं कि अपनी बदमाशी छिपा सकें!" वैद्यनाथ बाबू इसका अर्थ समझ नहीं पाये थे। उन्होंने हमसे पूछा। आप लोगों को मालूम है कि बिहार की कांग्रेस में क्या, भूदान में क्या और अन्य कामों में क्या, कुछ-कुछ बोगस भी चलता है। इसका परिणाम यहाँ तक है कि बाहर के लोग यह भी कह देते हैं कि बिहार का आरम्भ ही "बी" से है और बोगस का आरम्भ भी "बी" से है! लेकिन दूसरे प्रान्तों में बोगस नहीं होता, सो बात नहीं। परंतु वह छिप जाता है, बिहार में वह नहीं छिपता है। इस प्रकार वहाँ के दोष को भी गुण का दर्शन है।

क्रांति के लिए बिहार तैयार है

हम समझते हैं कि बिहार की मनोभूमि, जिसे हम शान्तिमय क्रान्ति कहते हैं, उसके वास्ते अत्यन्त परिपक्व है। उसका उपयोग कैसे करना, सिर्फ उसका ज्ञान हमको होना चाहिए। जैसे इलेक्ट्रीसिटी घर में आ पहुँची हो, पर बटन न दबाया गया हो, तो फिर भी रात को अँधेरा ही रह जायगा। सिर्फ वह बटन दबाने की बात है, एकदम प्रकाश हो जायगा। इस प्रकार क्रान्ति की पूर्व तैयारी बिहार में हो चुकी है। अतः वहाँ हजारों की तादाद में छोटे-छोटे लोग देने के लिए प्रस्तुत हैं, यह सुनकर हमको बड़ी खुशी हुई, पर आश्चर्य नहीं हुआ। बिहार में जो पक्ष-भेद हैं, वे भी घनीभूत नहीं हैं, ढीले हैं। दूसरे प्रान्तों के पक्षभेद इतने ढीले नहीं हैं। तो सब तरह से हम वहाँ अनुकूलता देखते हैं।

यह जो "हम" की भाषावाला प्रयोग है, वह भी हमने बिहार में ही सीख लिया है। दूसरे प्रान्तों में "मैं-मैं-मैं" करते हैं। 'खाना मेरा', 'कपड़ा मेरा', हर बात में 'मेरा' ही 'मेरा' करते हैं। तो संस्कृत में कहावत है कि "में में कुर्वारम् कारम् को हन्ति" "ऐसे 'में में' करनेवाले बकरे को कालरूपी भेड़िया निगल जाता है।" तो बिहार में "मैं" तो है ही नहीं। जो है सो 'हम' ही है। भाषा के प्रयोग में भी कुछ मानस-शास्त्र होता है। बिहार में सामूहिक परिवार अधिक हैं, यह आप लोग जानते हैं। दूसरे प्रान्तों की तुलना में यह वहाँ अधिक

है। इसका अर्थ भी यही है। तो वहाँ "मैं" का अभाव यह आपकी बड़ी ताकत है। जो है सो वहाँ 'हम' ही है, इस वास्ते सामूहिक कार्य वहाँ बहुत शीघ्र सफल होते हैं।

'अयोजना' की शक्ति

कुछ लोगों का बिहार पर आक्षेप है, खास करके हमारे महाराष्ट्र के लोगों का, जो वहाँ पहुँचे थे। दूसरों का भी है। वह यह कि "योजना-शक्ति" का अभाव बिहार में है। परन्तु बिहार की शक्ति तो "अयोजना-शक्ति" में है। किसी योजना में जैसे शक्ति होती है, वैसे अयोजना में भी शक्ति होती है। बिहार के लोग विश्वास के साथ कह ही देते हैं कि 'हमारा काम हो ही जायगा।' रामदेव बाबू अपनी पदयात्रा में हमको हमेशा कहते थे, "कौन करेगा, कैसे होगा, इसका कोई हिसाब लगाये, तो होता हुआ नहीं दीख पड़ता, पर यह हो जरूर जायगा।" तो यह जो श्रद्धा है कि 'हो जायगा'; यह एक बड़ी ताकत है। जिन लोगों की श्रद्धा है कि हम योजना करेंगे, तो काम होगा, उनमें भी शक्ति है, लेकिन वह क्षीण शक्ति है। इसलिए बार-बार मैं कहा करता हूँ कि क्रान्ति योजना से नहीं होती है, वह तो हवा में हो जाती है। योजनापूर्वक पेड़-पौधों को पानी दिया जाता है। कौनसा? जो जमीन पर होता है वह। पर आकाश से जो पानी गिरता है, वह योजनापूर्वक नहीं गिरता है। वह चारों ओर गिरता है और एक-सा गिरता है और चंद दिनों में सारा देश पानी से तर हो जाता है। योजना-पूर्वक तो बगीचे बनते हैं, सो इधर बना, तो उधर नहीं बना। योजना की कोई कीमत नहीं, सो बात नहीं, परन्तु निरहंकार वृत्ति के कारण जो सहज कार्य होता है, उसको अयोजना कहते हैं और यह भी वहाँ बुद्ध और महावीर की देन है, उन लोगों ने जो सिखावन दी है, उसका यह परिणाम है। लोग कहते हैं, "संतों ने इतना सिखाया, फिर भी हम जहाँ के तहाँ ही हैं। आप भी उसी ढंग से कहते हैं, पर इससे क्या होनेवाला है?" हम कहते हैं कि आप जहाँ के तहाँ ही हैं, यह आपसे कहा किसने? ये अनेक संत अगर न हुए होते, तो आज हम पशु ही रहते! एक जमाने में हम पशु थे ही। तो संतों का उपकार बड़ा अव्यक्त है। अंगुलि-निर्देश करके तो नहीं बता सकते कि यह फलों का उपकार है। कोई

छोटा उपकार होता है, तो वह अँगुली से बताया जाता है। मिसाल के तौर पर किसी संस्था की रिपोर्ट लीजिये। तीस-चालीस पन्ने तक वह रिपोर्ट लिखी जायगी। परंतु माँ अपने बच्चे की क्या-क्या सेवा करती है, उसकी रिपोर्ट यदि लिखने बैठें और उससे कहें, तो वह क्या लिखेगी? वह अंगुलि-निर्देश नहीं कर सकेगी, बल्कि यही बोलेगी कि मैंने क्या किया, मैंने सेवा के विचार से तो कुछ किया ही नहीं है। वह उसका रिपोर्ट नहीं बनायेगी। तो सत्पुरुषों ने जो शिक्षण दिया है, वह अंगुलि-निर्देश करके नहीं बताया जा सकता कि फलाने ने फलाना किया; जैसे कि हम बता सकते हैं कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण की एक खोज की। पर जो जीवन-स्तर का शिक्षण होता है, वह चारों ओर से मजबूत होता जाता है। वह गिना नहीं जाता।

बिहार के दोष भी गुण की छाया हैं

मैं कहता यह था कि बिहार का यह जो दोष माना जाता है, तो यह दोष बिहार में है जरूर, पर वह भी गुण की छाया है। यह भी समझने की एक बात है। यह केवल बिहार को लागू नहीं है। यह तो मानव-जीवन को ही लागू है। गुण सारे आत्मा में होते हैं। जहाँ शरीर खतम हुआ, वहाँ गुण अद्भुत रूप में आ जाते हैं। परन्तु गुण के साथ दोषों का होना लाजिमी है। उसके बिना गुण रूपवान् नहीं बनते। अगर आपके हाथ में एक सफेद कागज दिया जाय और आपसे कहा जाय कि इसमें काली-नीली लकीर तो नहीं आनी चाहिए, लेकिन चित्र खींचना चाहिए; तो आप कहेंगे कि सफेद कागज सफेद ही सफेद रखकर चित्र बन नहीं सकता। उसे कुछ तो नीला-काला किया जाय, तभी तो चित्र बनेगा? इस वास्ते जब गुण के साथ छायारूपी दोष होते हैं, तभी वे गुण शरीर-धारी जीव में प्रकट होते हैं, अन्यथा प्रकट नहीं होते हैं। "निश्चय गुरु बताय" तो 'निश्चय' उसका एक बड़ा गुण है। उसके साथ कुछ हठ आ जाता है, तो यह जो हठवाला दोष है, वह 'निश्चय गुण' की छाया है और उसके अभाव में वह प्रकट नहीं होता। इस वास्ते उसके साथ वह आया। एक आदमी निरहंकार होता है। वह वैसा होता है, इसलिए उसके साथ प्रयत्न की स्फूर्ति की कमी भी कभी-कभी दीख पड़ती है, परन्तु वह दोष उस गुण के साथ छायारूप में

आता है । कुछ स्वतंत्र दोष भी होते हैं, लेकिन कुछ दोष छायारूप में होते हैं। तो हम यह कहना चाहते हैं कि बिहार का यह जो दोष है—योजना-शक्ति के अभाव का, वह उनके एक गुण की छाया है और वह गुण यह है कि "मैं क्या करनेवाला हूँ, सब मिलकर के काम होगा।" यह जो "हम" है, इस हममें ही सब गूढ़ है । जब हम भी बिहार के परिचय से यह "हम" बोलने लगें, तो एक भाई ने हमें पत्र लिखा कि 'आपका' जो भाषण पढ़ते हैं, उसमें 'हम' वाली बात अच्छी नहीं लगती। "मैं" कहना चाहिए। याने नम्रता का अभाव वे हममें महसूस करते हैं !

बिहार में "मैं" है ही नहीं, इस वास्ते अपने लिए भी कहना हो, तो "हम" ही कहना है। उनसे पूछा जाय कि बहुत से लोग हों, तब क्या कहेंगे ? तो वे जवाब देंगे "हम लोग।" इस प्रकार अपने लिए "हम" और ज्यादा हों तो "हम लोग।" हम का बहुवचन करना ही पड़ा, तो 'लोग' शब्द लगा लिया। इस वास्ते हम कहते हैं कि आप योजना में ज्यादा विश्वास न रखिये। योजना में विश्वास रखेंगे, तो काम में कुछ गुण आयँगे, परन्तु काम सीमित हो जायगा। वहाँ एक ही दिन में सौ-डेढ़ सौ गाँवों में प्राप्त जमीन के बँटवारे की योजना की गयी। अब कुछ दोष भी उसमें हुए हैं, ऐसा भी सुना। परन्तु दोष हुआ, तो हमको ऐसा नहीं लगा कि यह प्रयोग करने लायक नहीं है। बल्कि उन दोषों के साथ ही यह करने लायक भी है। वह करते हुए ही उन दोषों की निवृत्ति का सोचा जायगा और वह सूझेगा भी। तो यह प्रयोग, जो बिहार में हुआ, उसका महत्त्व हमें बहुत महसूस होता है।

साथ खाने के लिए तैयार, तो साथ मरने के लिए भी तैयार !

हमने कहा है कि एक दिन में बँटवारा कुल हिन्दुस्तान में हो जायगा और वह हो सकता है । सो यह बात अगर किसी प्रान्त में ज्यादा से ज्यादा शक्य है—अभी तक हमने जितने प्रान्त देखे, उनकी तुलना में तौल रहे हैं—तो वह बिहार में। जहाँ गणित ज्यादा है, वहाँ यह काम नहीं बनता। बिहार में खादी-काम बहुत चलता है, जिसमें हिसाब की जरूरत होती है। तो हमको आश्चर्य लगता

है कि वह इतना कैसे चलता है, याने इतना गणित वे कैसे करते होंगे, इसका आश्चर्य हमको लगता है। पर कुछ लोग ऐसे निकले हैं, गणित जाननेवाले भी। लेकिन साधारण लोग गणित-वणित नहीं जानते। हम जानते हैं कि दूसरी जगह हमारा वह स्वागत नहीं हो सकता था, जो विहार में हुआ। स्वागत का कोई कारण नहीं था। वह स्वाभाविक था। एक-एक दिन हजार-हजार लोग साथ घूमते थे। कोई जरूरत थी, इतने मनुष्यों की—इस काम के लिए, सो बात नहीं! पर शादी में सैकड़ों भोजन करते हैं, तो उसकी वहाँ क्या जरूरत होती है? पर शादी में यदि सैकड़ों की जरूरत है, तो भूदान में हजारों की जरूरत हो, तो वहाँ क्या गल्त हुआ ? विहार के लोग देखते हैं कि शादी में जितना आनन्द है, उससे कई गुना आनन्द भूदान में है। रात को एक-एक वजे तक भोजन चला है और वावा जव सुवह चार वजे उठना है, तो फिर चार वजे उन सवकी भी यात्रा शुरू हो जाती है। इसमें अव्यवस्था भी होती थी। तात्कालिक दृष्टि से देखा जाय, तो कुछ कार्यहानि भी होती थी। परन्तु दूरदृष्टि से देखा जाय, तो उसमें वड़ी ताकत थी। जितने लोगों ने एकत्र भोजन किया, उतने लोग मरने के लिए भी तैयार हो जायँगे, ऐसा हमको समझना चाहिए! इस वास्ते हम विहार की ताकत वहुत महसूस करते हैं। एक सूचना मैंने दी कि वहाँ लोगों को ही काम करने दीजिये। उसमें कुछ गलतियाँ भी होंगी, तो भी वे छिपी हुई नहीं रहेंगी, क्योंकि वह छिपाने की अक्ल विहारी लोगों में नहीं है। तो जव, गलतियाँ प्रकट होंगी, तो वे दुरुस्त भी की जायँगी। इसमें कोई खतरा भी नहीं है। वापू से पूछा गया था कि स्वराज्य की व्याख्या क्या? तो उन्होंने कहा, "स्वराज्य माने गलती करने का हक।" तो गल्ती करने का हक मान्य करके सामूहिक प्रयोग करते चले जाइये, दोप प्रकट होंगे, परन्तु उनको दुरुस्त करने का मौका मिलेगा। इसमें एक वात ध्यान देने की है और वह भी विहार में सध सकती है कि किसीका वुरा करने की मनशा हमारे किसी भी काम में नहीं होनी चाहिए। हम जो कुछ भी करेंगे, कल्याण के लिए करेंगे, जान-वूझ करके किसीका वुरा हमको नहीं करना है, इतना मानसिक निश्चय हो। यह विहार के लिए कठिन नहीं है, आसान ही है।

लोगों पर काम डालना, यही एकमात्र योजना

हमसे बहुत लोग पूछते हैं कि आप ३२ लाख एकड़ जमीन चाहते थे, २४ लाख मिली और १ लाख ही बँटी, सो यह क्या हिसाब है ? हम कहते हैं कि एक लाख तो पहले साल बँटी है और कुंजी हाथ में आ गयी है। अब वह २४ लाख भी बँटनी चाहिए और ४-५ लाख नयी मिलनी भी चाहिए। यह हमको कठिन नहीं मालूम होता। इस साल लोगों ने जो कोशिश की है, बावजूद इसके कि बिहार में जमीन के बँटवारे में कई प्रकार की मुश्किलें हैं, उस कोशिश की कीमत हम बराबर पहचानते हैं। तो इसके आगे के लिए ज्यादा योजना नहीं करनी चाहिए और लोगों पर जितना काम डाला जा सकता है, उतना डालना चाहिए। बिहार में यदि संगठन किया भी जाय, तो वह ढीला ही रहेगा। बाबा तो चाहता ही है इस प्रकार का ढीला काम। ढीले काम में कोई दोष नहीं, बल्कि वही चल सकता है, जिसकी एक शर्त हमने ऊपर बतायी कि "बुरा करने की भावना मन में न हो।" मन में अहिंसा होने के बाद इससे कोई हानि नहीं होनेवाली है। जमीन का बँटवारा हुआ, पर जिसको मिलनी चाहिए थी, उसे नहीं मिली, दूसरे को मिली। पर मिली तो ? एक हाथ से दूसरे के हाथ में गयी न ? दान देनेवाले ने दान दिया, भावना पैदा हुई। अगर गलत मनुष्य के हाथ में वह दानवाली जमीन गयी, तो क्या हुआ ? जो बड़ा जमींदार है, उसके पास तो नहीं पहुँची ? यह भी गरीब के पास ही गयी है। एक ज्यादा गरीब था, उसको नहीं मिली, सो एक गलती हो गयी।

पर इससे क्या हमारा काम पूरा होता है ? काम तो तब पूरा होगा, जब कुल जमीन का बँटवारा हो जायगा और कुल मालकियत मिट जायगी। इसमें बात भी कौन बड़ी है ? इसलिए भाइयो ! गलतियों से मत डरिये। जान-बूझ करके लोग गलतियाँ नहीं करते हैं। अनुभव से सुधार करना है। जितना काम वितरण का लोगों को सौंपा जा सकता है, सौंपिये, तो आपको अनुभव आयेगा कि बँटवारा ठीक होता है।

विहार में राज्य भी नाहक चल रहा है !

कानून के पचड़े में ज्यादा मत पड़िये । वहाँ कानून की ही वकत नहीं है। यह भी विहारी गुण है। कानून-वानून की कोई पकड़ नहीं है लोगों पर, फिर भी वहाँ राज्य चलता है! पर वह राज्य नाहक चल रहा है ! वहाँ से राज्य मिट ही जाना चाहिए ! तव विहार का तेज प्रकट होगा। आज तो हो यह रहा है कि राज्य भी चलता है और वह ठीक ढंग से भी नहीं चलता है। वह नहीं चलता, तो खालिस गुण प्रकट होते। हमने विहार के जेल भी देखे हैं। क्या जेल में, क्या राजमहल में, क्या गरीव की झोपड़ी में। एक ही गुण प्रकट होता है। अतः उस गुण का पूरा लाभ हमको लेना है। उसके दोषों की चिन्ता नहीं करनी है। कानूनी सुविधा नहीं है, तो वँटवारा कैसे करें, इसकी चिन्ता मत करो। वँटवारे में कानून कोई दखल देगा, ऐसा मानो ही मत। वहाँ की समिति भी इस प्रकार के दयालु मनुष्यों की वनी है कि वह आपके मार्ग में रुकावट नहीं डालेगी, ऐसा हमको विश्वास है।

सीलिंग के कानून की मर्यादा

एक वात और। वहाँ अभी सीलिंग का कानून वनाने की वात उठी। हमने इस पर पहले से ही वहुत ज्यादा आशा नहीं रखी थी, इस वास्ते मेरा तो सवाल ही नहीं है। हमारा तो आन्तरिक विश्वास यही है कि कई कारणों से जमीन का जैसा कानून वनना चाहिए—अगर वनना चाहिए तो, वैसा कानून हिन्दुस्तान में नहीं वनेगा। उसके कई कारण हैं। लेकिन उनका निष्कर्ष यही है कि कानून से यह मसला, जैसा हम चाहते हैं, वैसा हल होनेवाला नहीं है, यह निश्चय है। भूदान से ही यह मसला हल होगा। जिन कारणों से नहीं हो सकता, उन्हें हम जानते हैं। चूँकि हमारे लोग हैं, इसलिए हम यह जानते हैं। पर हम उनका ज्यादा निषेध भी न करें। निषेध तो स्वयं ही हो जाता है। जिस चीज का निषेध स्वयं हो जाता है, उसका निषेध करने की जरूरत भी नहीं होती।

सम्पत्तिदान के अनुकूल वातावरण

सम्पत्तिदान के वारे में एक वात हम कहना चाहते हैं। आपको जितने दानपत्र

वहाँ मिले हैं, उसके दसगुन सम्पत्ति-दानपत्र वहाँ आपको मिलने चाहिए और यह आन्दोलन ख़ूब जोरों से चलना चाहिए। अनुभवी लोग बताते हैं कि वादा होता है, पर दान की रकम नहीं मिलती। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि ऐसे जो अनुभव आये, वे योजना से आये। हम जो काम करने जा रहे हैं, वह अयोजना में है। वह न दे तो अपना क्या बिगड़ेगा ? हम गर्जवाले नहीं हैं, ग़र्जवाला वह है, जिसने दान दिया है। हमको इसकी परवाह या चिन्ता ही नहीं है कि वह दान लिख करके देता है, पर वैसा करता नहीं है। लेकिन हमने तो उसको ईश्वर के हवाले कर दिया। हम इतनी ही प्रार्थना करेंगे कि हे ईश्वर, तेरे हवाले इसे कर दिया, सो कृपा करके तेरे पास जो दण्ड-शक्ति है, उसका इस्तेमाल मत कर, हृदय-परिवर्तन की जो शक्ति है, उसका उपयोग कर। तो, यह संशय मत रखो कि इस आंदोलन में जो दान देंगे, वे अपना वादा पूरा नहीं करेंगे। संशय रखनेवालों के सामने वही परिणाम आयेगा, जो कि संशय रखनेवालों की नसीब में होता है ! अगर हम श्रद्धा रखते हैं, तो हमें वह कम ही ठगता है और जो संशय रखते हैं, उन पर ज्यादा-से-ज्यादा ठगे जाने का मौका आता है।

बिहार में हिसाब-किताब और व्यवस्था का गुण नहीं है, इसलिए वहाँ दान की भी बात नहीं चलती, त्याग की ही बात चलती है। और यही बड़ी बात है। वहाँ लोगों के मन में आ गया कि समान वेतन की बात खादी-काम करनेवालों में करनी चाहिए। १००-१५० कार्यकर्ता हैं। तो उनको तनख्वाह की एक मात्रा तय कर दी। थोड़ा असंतोष भी है। पर उसकी कोई चिन्ता नहीं है। उसका रूपान्तर संतोष में सहज किया जा सकता है। परन्तु इतना काम एकदम से कर डालना, यह भी बिहार की शक्ति है। इसलिए हम कहते हैं कि सम्पत्ति-दान का आन्दोलन बिहार में खूब जोर से चलना चाहिए और वह चलेगा, बल्कि आप माँगने नहीं जायेंगे, तो लोगों को दुःख होगा। वे कहेंगे, अरे ये लोग बार-बार आनेवाले थे, आते क्यों नहीं ? ऐसी मिसाल दरभंगा में हुई है। वहाँ दो-दो बार देते हैं, तीन-तीन बार देते हैं और फिर से कोई आ जाय, तो भी देते हैं। मेरा खयाल है कि जब तक मनुष्य उनके पास पहुँचता रहेगा, तब तक वे देते ही रहेंगे

ग्रौर उनको खुशी होगी कि हमसे कुछ माँगा जा रहा है। ऐसा तो कुछ हम उनसे लेना नहीं चाहते, जिससे कि उनका नुकसान होने की सम्भावना हो। हम तो जो कुछ लेंगे, उससे उनका ही लाभ होगा।

एक खास कमी

तीसरी वात हमको यह कहनी थी कि एक कमी विहार में जरूर है, जो अक्षम्य है। हमने कहा कि दोप भी अच्छा होता है, जव वह गुण-छाया के रूप में होता है। पर यह दोपरूपी छाया है और वह यह कि वहाँ चिन्तन-मनन जरा कम करते हैं। वे श्रद्धा रखते हैं, भक्ति रखते हैं, पर चिन्तन-मनन कम करते हैं, इस वास्ते अध्ययन होता नहीं है। फिर अध्ययन करनेवाले जो लोग हैं, उनके सामने ये टिकते नहीं। हम चाहते हैं कि यह कमी दूर हो और विचारों का अध्ययन ठीक ढंग से हो। ये कुल गांधी-पंथी लोग भी ऐसे ही हैं और चूँकि गांधी के भक्त ज्यादा-से-ज्यादा विहार में थे, इसलिए वहाँ अध्ययन करने की जरूरत ही नहीं मानते! हिन्दुस्तान के कुल गांधी-पंथियों में यह दोप है। वे कहते हैं कि अध्ययन क्या करना है? हम तो वापू का काम ही करते हैं। हम पूछते थे कि फलाना अग्रलेख वापू ने लिखा, आपने पढ़ा? वे कहते, "हमने नहीं पढ़ा।" "क्यों नहीं पढ़ा?" "अरे पढ़ने की क्या वात, हम तो उनका काम ही कर रहे हैं।" वापू भी इसका कौतुक करते थे, क्योंकि वापू ने भी उस समय इसको उस रूप में लिया था, क्योंकि पहले के आन्दोलन में जो लोग पढ़ते ही पढ़ते थे, वे कुछ काम ही नहीं करते थे। तो यह नयी जमात तैयार हो गयी, वन्दर सेना, काम करने के लिए। पर स्वराज्य के पहले विना पढ़े चल गया, लेकिन स्वराज्य के वाद वह नहीं चलेगा, क्योंकि हमको जो काम करने हैं, वे कई प्रकार के हैं और उसके लिए कुछ अध्ययन की जरूरत है। इस वास्ते साहित्य का प्रचार खूव होना चाहिए तथा विहार से यह कमी हटनी चाहिए।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)

२८-५-'५६

सर्वोदय के मूल सिद्धांत

आत्मा की एकता और सर्वस्व समर्पण

[विनोबा]

आज हम आपके स्थान में आये हैं, जो हिन्दुस्तानभर का एक तीर्थ-स्थान है। यहाँ पर रामानुज और वेदांतदेसीकन के जन्म हो गये हैं। यहाँ पर अलवर लोगों ने भक्ति की है। यहाँ शैव-यात्राओं का भी स्थान रहा है। यहाँ शंकराचार्य ने भी अपना मठ स्थापित किया है। बौद्ध भिक्षु और जैनों ने यहाँ अपना विचार फैलाया है। ऐसे पवित्र स्थान में सर्वोदय-सम्मेलन कल से होने जा रहा है। किसी स्थानविशेष में कोई खास विचार केन्द्रित होता है, ऐसा हम नहीं समझते हैं। विचार-स्थान कहीं कैद नहीं होता है, बल्कि दुनिया की कुल हवा में रहता है और हवा में ही वह फैलता है। फिर भी कुछ स्थानों में सज्जनों की तपस्या का एक अंश होता है, इसीलिए वह स्थान हवा के विचार को शीघ्र ग्रहण करता है। इसीलिए हमने आशा की है कि तमिलनाड के इस महान् केन्द्र में सर्वोदय-विचार का बीज गहरा जायगा।

भारत का अपना जीवन-विचार

यह विचार ही इतना उन्नत है कि इसके स्मरण-मात्र से हमारे हृदय में उत्साह भर जाता है। हमारा यह दावा है कि भारत की प्राचीन परंपरा का उत्तम परिणाम सर्वोदय में देखने को मिलता है। उस सर्वोदय को साम्ययोग भी कहा करते हैं, साम्यवाद भिन्न है और साम्ययोग भिन्न है। साम्यवाद वैषम्यवाद की प्रतिक्रिया है, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की प्रतिक्रिया है। साम्ययोग एक जीवन-विचार है और वह स्वयंभू है, योरप में जो विचार पूँजीवादी समाज-रचना में फैले थे, उनमें कई बुराइयाँ थीं। इसीलिए उसकी प्रतिक्रिया के रूप में वहाँ साम्यवाद पैदा हुआ था, उस प्रकार का प्रतिकारिकवाद जीवन-

विचार नहीं हो सकता है। वह एक तात्कालिक वस्तु होती है और एक समय के लिए उसका उपयोग होता है। हम समझते हैं कि उसका कार्य करीब-करीब हो चुका है और अब दुनिया को उसका सार मिल गया है। उसका सारांश अब दुनिया खींच रही है, जिसे हम सर्वोदय कहते हैं, जिसको हम साम्ययोग नाम देते हैं। वह एक जीवन-विचार है और कायम के लिए उपयोग में आनेवाला है, क्योंकि उसका आधार आत्मा की एकता का है, यह आत्मैक्यता का सिद्धान्त हिन्दुस्तान के ऋषियों ने अपने अनुभव से मानव को समझाया है। यह इस भूमि का बुनियादी विचार है—इस भूमि का यानें भारत का—जिसको ब्रह्म-विद्या भी कहते हैं, वेदान्त भी कहते हैं। इस बुनियादी विचार पर सर्वोदय की इमारत खड़ी है।

आत्मा की एकरूपता

हम बहुत दफा कहते हैं कि आज की लोकशाही ने जो तरीका अख्तियार किया है, उसके मूल में भी वेदांत का सिद्धान्त है और वह कुछ अंश में प्रकट होता है। आप जानते हैं कि हिन्दुस्तान में और दुनिया के कुछ देशों में मानवों को वोट का हक दिया गया है। हरएक को एक ही वोट देने का अधिकार दिया गया है। फिर चाहे वह पढ़ा-लिखा मनुष्य हो या अपढ़ मनुष्य हो, चाहे वह गरीब मनुष्य हो या कोई अमीर हो, चाहे वह नगरवासी हो या ग्रामीण हो। सबको एक ही मत का अधिकार दिया जाता है। अगर हम सोचें कि उसकी बुनियाद क्या है, तो सिवा वेदांत के उसकी और कोई बुनियाद नहीं है। आप लोग जानते हैं कि मनुष्य की बुद्धि में बहुत फर्क होता है। एक मनुष्य की बुद्धि-शक्ति और चिन्तन-शक्ति जितनी होती है, उससे शतगुणी बुद्धि-शक्ति और चिंतन-शक्ति दूसरे मनुष्य में हो सकती है। तो बुद्धि के आधार पर हरएक को एक वोट का अधिकार नहीं मिलता है। हम जानते हैं कि हरएक की शरीर की शक्ति में भी फर्क है, एक मनुष्य कमजोर है और दूसरा बलवान् है, इसी-लिए शरीर के आधार पर भी हरएक को एक वोट का अधिकार नहीं मिलता। हम जानते हैं कि हरएक के पास अभी तक दुनिया में अलग-अलग संपत्ति है,

इसीलिए संपत्ति के आधार पर भी हरएक को एक वोट का अधिकार नहीं मिलता हैं। तो फिर हरएक मनुष्य को एक वोट का जो अधिकार दिया गया है, उसका आधार क्या है? उसका आधार यही है कि मानवों की आत्मा की एकरूपता मान्य की गयी है—चाहे वह मनुष्य पढ़ा-लिखा हो या अपढ़ हो, उसकी आत्मा में कोई फर्क नहीं है, उसकी बुद्धि, देह और संपत्ति का भेद उस आत्मा की एकता में कोई बाधा नहीं डालता। उसी आत्मा की एकता के आधार पर हर मनुष्य को एक वोट का अधिकार होता है। इस बात का बचाव हो सकता है। आप जानते हैं कि आपके प्रधान मंत्री पर आपका कितना विश्वास है। लेकिन जहाँ वोट का सवाल आता है, वहाँ उनको एक ही वोट का अधिकार रहता है और उनके चपरासी को भी एक ही वोट का अधिकार मिलता है। यह मानव की मूर्खता है या वेदांत है? आप ही तय कीजिये कि यह क्या है? हम समझते हैं कि आत्मा की एकता का जो वेदांत-सिद्धांत है, उसकी उसमें मान्यता है।

लोकशाही की न्यूनता

परन्तु यह जो लोकशाही का विचार है, उसमें एक न्यूनता रह गयी है, उसमें आत्मा की एकता को पहचानकर वोट का अधिकार दे दिया। लेकिन फिर वे वोट की गिनती करने लगे और उन्होंने तय किया है कि ५१ लोगों का एक मत है और ४९ लोगों का दूसरा मत है, तो ५१ लोगों को अधिक मान्यता दी जायगी और राज्य-सत्ता उनको दी जायगी। यहाँ पर वे वेदांत को भूल गये। वह वेदांत उनको अच्छी तरह पचा नहीं है। उसका एक अंश उनके ध्यान में आया; पर दूसरा अंश उनके ध्यान में नहीं आया। जैसे उन्होंने आत्मा की एकता को मान्य किया, वैसे उनके ध्यान में आना चाहिए कि आत्मा के संयोग से कोई वृद्धि नहीं होती है, आत्मा की गिनती नहीं होती है। उनके ध्यान में यह आना चाहिए कि यह गणित का विषय नहीं है, वेदांत है; इसीलिए इसमें संख्या का सवाल गौण हो जाता है। सर्वोदय ने वह कमी पूर्ण की है।

सर्वोदय कहता है कि भाई, जो वेदांत तुम सीखे हो, उसको तुम पूरी तरह से पूर्ण करो। सबका विचार मान्य करके काम करो, पाँच मनुष्यों में से तीन मनुष्यों

की राय एक बाजू और दो मनुष्यों की राय दूसरी बाजू, तो तीन मनुष्यों का विचार सत्य, यह विचार गलत है और चार मनुष्य का अभिप्राय एक बाजू और सिर्फ एक मनुष्य का अभिप्राय दूसरी ओर है, तो चार मनुष्यों के अनुकूल फैसला लिया जाय, यह भी गलत है। पाँचों एकमत से जो राय देंगे, जो फैसला देंगे, वही मान्य होगा, इस विचार को कबूल न करने के कारण दुनिया के कुल देशों में मेजॉरिटी और माइनॉरिटी के झगड़े चले हैं, उनके कारण गाँव-गाँव में पक्षभेद होते हैं और गाँव-गाँव का छेद होता है।

तमिलनाड से ग्रामदान की अपेक्षा

आप लोगों ने सुना होगा कि इस भूदान-आंदोलन में उड़ीसा के एक जिले में नौ सौ गाँव पूरे-के-पूरे दान में मिले हैं। याने उन गाँवों में जितने लोगों के पास जमीन थी, जो मालिक कहलाते थे, उन्होंने अपनी मालकियत छोड़ दी और अपनी कुल की कुल जमीन ग्रामवासियों के सुपुर्द कर दी। यह ग्रामदान भूदान-आंदोलन का परम उत्कर्ष है और हमने आशा रखी है कि इस तमिलनाड में भी ग्रामदान की परंपरा चले। हमारा विश्वास है कि रामानुज-शंकर के इस स्थान में इस विचार का ग्रहण जरूर होगा।

इलेक्शन की गलत राजनीति

इतना उत्तम कार्य कोरापुट में हुआ है, परन्तु अब इसमें सवाल पैदा होता है कि अब आगे इलेक्शन आनेवाला है, इसीलिए भिन्न-भिन्न राजनैतिक पार्टियाँ गाँवों में पहुँच जाती हैं और वहाँ भेद पैदा करने की कोशिश करती हैं। ये गाँव जो अपनी मालकियत छोड़ चुके हैं, जिन्होंने अपना एक परिवार बना लिया है, वहाँ जाकर यह छेद बनाना चाहता है। वे यह नहीं समझते हैं कि इस तरह की राजनीति, जिससे गाँव के दो-दो टुकड़े हो जाते हैं, उससे हिन्दुस्तान का क्या भला हो जायगा? हिन्दुस्तान में जो प्रांतीय-भेद थे, वे क्या काफी नहीं थे? हिन्दुस्तान में जो भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं और भाषाओं के जो झगड़े चले हैं, वे भेद क्या कम थे? जाति-भेद की अग्नि तो समाज को लगी ही है, वह क्या कम है? और धर्म के झगड़े भी यहाँ खड़े हैं, क्या वे काफी नहीं हैं? यहाँ पर

असंख्य मत-संप्रदाय के भेद थे, वे क्या कम हो गये ? यहाँ पर ब्राह्मण,, अब्राह्मण के जो झगड़े चलते हैं, वे क्या कम थे ? अब इसके बीच यह पार्टी का भेद डाल-कर भारत की क्या उन्नति होनेवाली है ? उसका परिणाम यह होता है कि कोई एक अच्छा काम करने के लिए भी कोई पक्ष इकट्ठे नहीं होते हैं। वे कहते हैं कि उसमें इस मनुष्य के साथ हम काम करेंगे, उसका भी महत्त्व बढ़ेगा। इसीलिए अच्छा काम भी करेंगे, तो हमारी संस्था को इसकी क्रेडिट मिलनी चाहिए। सामनेवाला कोई अच्छा काम करता है, तो उसके हेतु पर आरोप करते हैं और उसका वह कार्य यशस्वी न हो, इसकी भी कोशिश की जाती है। इतने सारे भेद डेमोक्रेसी ने यह जो संख्या का आधार मान्य किया है, उसके कारण हैं। उन्होंने आत्मा की एकता कबूल की, लेकिन फिर आत्मा की गिनती करने लगे। लेकिन गिनती उनकी करनी होती है, जो एक नहीं होता है, अलग-अलग होता है। इस हालत में संख्या पर जोर देते हैं, तो बुद्धि पर क्यों नहीं देते हैं ? क्या इक्यावन मनुष्य की बुद्धि मिलकर उनचास मनुष्यों की बुद्धि से हमेशा ज्यादा होती है, यह बात सही है ? आजकल डेमोक्रेसी में मेजॉरिटी का राज्य चलता है, तो हमने एक दफा विनोद में सवाल पूछा था कि इस दुनिया में आज की हालत में अपने देश में कम-से-कम मूर्ख लोग ज्यादा हैं कि अक्लवाले ज्यादा हैं ? तब वे बोले कि मूर्खों की संख्या अधिक है। अधिक संख्या का सिद्धान्त आपने उठाया, तो क्या आप मूर्खों का राज्य करना चाहते हैं ? इसीलिए वेदान्त-सिद्धान्त को ठीक तरह से समझ लीजिये और कबूल कर लीजिये कि सिद्धान्त यही है कि आत्मा में भेद नहीं है। इसीलिए सबका समाधान जिसमें होता है, वही करना चाहिए।

व्यावहारिक जीवन-सूत्र

रामानुज और शंकर, दोनों का वाद चलता था कि अद्वैत पूरा का पूरा है या थोड़ा भेद है ? याने ईश्वर कें साथ हम पूरे एकरूप हैं या उससे अलग हैं ? हम समझते हैं कि ईश्वर के साथ हम एकरूप हैं कि नहीं, इस विचार के काबिल हम आज हैं क्या ? हम तो अपने बाप के साथ झगड़ते और भाई के साथ भी झगड़ते

हैं। जिस ईश्वर को हमने देखा नहीं, उस ईश्वर के साथ हम एकरूप हैं या नहीं, इसकी चर्चा चलती है। रामानुज और शंकराचार्य ने सिखाया कि आत्मा एक ही है। उसमें इतना ही फर्क रहा है कि अपनी-अपनी कुछ विशेषता रहती है, ऐसा एक शख्स बोल रहा है और दूसरा कहता है कि यह जो विशेषता है, वह गौण है और जो एकता है, वह मुख्य है। यह जो विचार देखने में अलग-अलग दीखता है, वह मिथ्या है। एकरसता और एकता को दोनों आचार्यों ने माना। हरएक की अपनी-अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, वह भी माना। उसका महत्त्व कम है, वह भी माना; परन्तु वह चीज है, इसीलिए हरएक की राय लेना उचित है, क्योंकि आत्मा की एकता होते हुए भी हरएक में विशेषता होती है। यह है "विशिष्टाद्वैत।" अगर इतनी विशेषताएँ न होतीं, फर्क न होता, तो राय लेने का सवाल ही न रहता। लेकिन क्योंकि हरएक की अपनी-अपनी कुछ विशेषता होती है, इसीलिए हरएक की राय लेना उचित है। परन्तु अद्वैत और आत्मा की एकता है, इसीलिए सबका समाधान कर काम करना चाहिए, ऐसा व्यावहारिक जीवन-सूत्र उसमें से निकलता है। हम समझते हैं कि कांचीवरम् के संस्कारसंपन्न नागरिकों को यह विचार ग्रहण करने की कोई कठिनता नहीं है। इसीलिए हमने आशा की है कि तमिलनाड में सर्वोदय-विचार का उत्तम ग्रहण होगा।

मानवता को तो सब मानते हैं

यहाँ बहुत लोग हमसे कहते हैं कि यहाँ एक ऐसी जमात है कि जो ईश्वर को मानती नहीं है। लेकिन यह इस प्रांत की विशेषता नहीं है। यह तो सारे भारत में भी है और कुल दुनिया में भी है। यह इस काल की भी विशेषता नहीं, हर काल में यह था। परन्तु जब हमसे कहा गया कि यहाँ कुछ लोग ईश्वर को नहीं मानते हैं, तो हमने कहा कि हमको उसकी कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, परन्तु ईश्वर तो उनको मानता है! चिन्ता का विषय तो तब होगा, जब ईश्वर हम लोगों को भूल जायगा। बच्चा माँ को भूल गया, तो कोई बड़ी बात नहीं है। माँ बच्चे को भूल जायेगी, तो बड़ी बात है। एक तो

ये लोग जो कहते हैं, हम ईश्वर में नहीं मानते हैं, और वे कहते हैं कि हम सज्जनता में मानते हैं, हम मानवता में मानते हैं। उसका अर्थ यह हुआ कि हम "मदर" को नहीं मानते हैं, लेकिन "ताई" को मानते हैं। हम कहते हैं कि जो मानवता में मानते हैं, वे ईश्वर में न मानते हैं, तो हमको कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि मानवता में मानना और ईश्वरता में मानना एक ही चीज है। हाँ, जब कोई यह कहता है कि हम मानवता में और प्रेम में नहीं मानते हैं, तब तो वह चिन्ता का विषय हो जायगा। इसीलिए हमको उसकी चिन्ता नहीं है कि कुछ लोग ईश्वर में नहीं मानते, लेकिन प्रेम में मानते हैं। तीसरी बात यह है कि ईश्वर ऐसा विचित्र है कि वह "अस्ति" के रूप में तो रहता ही है, लेकिन "नास्ति" के रूप में भी रहता है। परमेश्वर का वर्णन हम करने बैठते हैं, तो कहते हैं, 'वह है भी, वह नहीं भी है और वह दोनों से परे भी है।' जैसे ईश्वर का एक भक्त होता है, उसको शैव कहते हैं, क्योंकि वह शिव का नाम लेता है। ईश्वर का दूसरा एक भक्त होता है, जिसको वैष्णव कहते हैं, क्योंकि वह विष्णु का नाम लेता है। वैसे ही ईश्वर का एक भक्त है, जो नास्तिक कहलाता है, क्योंकि वह ईश्वर को शून्य नाम देता है। ईश्वर के अनन्त नाम हैं, इसीलिए यह भी भक्ति का एक प्रकार है, ऐसा हम मानते हैं। सर्वोदय का सिद्धान्त यही है कि जो भी काम हम करेंगे, वह नास्तिक का समाधान होगा, ऐसा ही करेंगे। दूसरी बात यह है कि जो अपने को नास्तिक कहलाता है, वह हमेशा नास्तिक है, सो नहीं है। जो नाम ईश्वर का लेते हैं, लेकिन काम ईश्वर के विरोध में ही करते हैं—हम कहते हैं कि वे अगर ईश्वर को नहीं मानते हैं और इसके बदले में वे मानवता में मानते हैं, तो वे सच्चे भक्त हैं। अगर हम ईश्वर में मानते हैं, तो हमारा कर्तव्य है कि ईश्वर की जो चीजें हैं, देन हैं, वे सब मिलकर के उपभोग करें, उनकी मालकियत छोड़ें।

व्यक्तिगत मालकियत छोड़नी पड़ेगी

हमसे सवाल पूछा जाता है कि हम आपके सर्वोदय-समाज में आना चाहते हैं, तो ईश्वर को मानना पड़ेगा ? हम कहते हैं कि आपको मानवता में मानना

पड़ेगा और सामूहिक मालकियत में मानना पड़ेगा, व्यक्तिगत मालकियत छोड़नी पड़ेगी। जो अपनी व्यक्तिगत मालकियत मानता है, वह ईश्वर की जगह स्वयं लेता है। इसीलिए हम इसको ईश्वर का शत्रु समझते हैं, जो अपने को मालिक मानता है, वह ईश्वर को मालिक नहीं मानता है। ईश्वर का अर्थ ही मालिक है। मैं इस भूमि का मालिक हूँ, यह कहने का अधिकारी ईश्वर ही हो सकता है। वह भूमि को छोड़कर चला जाता है, भूमि यहाँ रहती है, फिर भी कहता है कि 'मैं भूमि का मालिक हूँ।' इसीलिए सर्वोदय का सिद्धान्त है कि मानवता सबके लिए आदरणीय है और हमको मालकियत का हक नहीं है।

मेरे भाइयो, ये दो सिद्धान्त हमने आप लोगों के सामने रखे। एक तो आत्मा की एकता, जो सर्वोदय की बुनियाद है। दूसरा, उसीका ही एक अंश है; वह यह है कि आत्मा में भी वह है याने आत्मा में भेद नहीं है। हमको जो भी काम करना होगा, वह सबके समाधान के साथ करना होगा, यह एक सिद्धान्त होगा। दूसरा एक सिद्धान्त यह होगा कि हम अपनी व्यक्तिगत मालकियत नहीं रख सकते। *अपनी सब चीजें समाज को समर्पित करनी चाहिए।* *सर्वोदय के ये दो बड़े सिद्धान्त हैं।* दोनों मिलकर अहिंसा बनती है, इसीलिए कहा जाता है कि सर्वोदय की बुनियाद अहिंसा पर है।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२६-५-'५६

परिशिष्ट : ८

निःशस्त्रीकरण की ओर

भारत शस्त्र घटाने की बात सोचे

[विनोबा]

हम सबने परमेश्वर का अत्यन्त तन्मयता से ध्यान किया, इससे बहुत आनंद हुआ। जैसे निद्रा में हम अपनी भिन्न-भिन्न विविधताएँ भूल जाते हैं और एकरूप

होते हैं, वैसा ही ध्यान में अनुभव आता है। निद्रा में किसी प्रकार की न्यूनताएँ या उच्चताएँ नहीं रहती हैं। ध्यान में वैसी ही अनुभूति होती है। परंतु ध्यान की अनुभूति निद्रा की अनुभूति से बहुत ही ऊँची है, क्योंकि निद्रा की अनुभूति में मनुष्य करीब-करीब शून्यता में चला जाता है, परंतु जाग्रति के ध्यान में अपना चित्त हम अनुभूत करते हैं, इसीलिए यह ध्यानजन्य अनुभूति व्यवहार में अपने बहुत काम आती है। हम सब जितने भी भाई हैं, वे चाहते हैं कि हमारे चित्त को शान्ति मिले, हमें सुख-लाभ हो, तो निद्रा का अनुभव जो बताता है, वह ध्यान का अनुभव भी बताता है। ध्यान का अनुभव यह बताता है कि भेदभाव को हम जितना भूल सकते हैं, उतनी मात्रा में हमको शान्ति हासिल होगी और सुख प्राप्त होगा। भेदों को बढ़ाना शान्ति को प्राप्त करने का और सुख को प्राप्त करने का उपाय नहीं हो सकता। लेकिन हमने कृत्रिम जीवन से अनेक प्रकार के भेद बढ़ाये हैं और बढ़ाते चले जा रहे हैं। भेदों को जब शीघ्र स्वरूप प्राप्त होता है, तो उसीका रूपांतर विरोध में होता है। विरोध जब तीव्र बनता है, तो उसमें से युद्ध आदि बनता है। इस तरह भेद, विरोध और युद्ध की परंपरा सतत जारी है। इन सब परंपराओं को तोड़ने का एक ही उपाय है कि जितना हो सके, उतना हम समता लाने का, अभेदमय जीवन बनाने का प्रयास करें। इसीलिए सत्पुरुषों ने और महापुरुषों ने और धर्मप्रचार प्रवक्ताओं ने जितनी भी कोशिशें की हैं, वे भेद में से अभेद में ले जाने की हैं। भेद से अभेद में किस तरह जाना, उसकी जो प्रक्रिया होती है, उसीको साधन-मार्ग कहते हैं। व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक सुख का जो उपाय होता है, वही समाज के लिए शान्ति का उपाय है। इसीलिए ध्यान आदि जो उपाय व्यक्ति की समृद्धि और आध्यात्मिक उन्नति के लिए किये जाते हैं, वे ही सामूहिक तौर पर समाज की उन्नति के लिए काम में आते हैं।

ध्यान में हम क्या करते हैं? हमारी विविध वृत्तियाँ, शक्तियाँ हम एक केन्द्र में लाते हैं; इस तरह हमें सामाजिक संतुलन और सामाजिक सौख्य के लिए करना होता है। एक निश्चित जीवन-निष्ठा बना करके जीवन की सब शाखाओं को उस निष्ठा की तरफ ले जाना होता है, अब वह जीवन-निष्ठा क्या हो,

उस विषय में कुछ-न-कुछ विचार-भेद रह सकता है। इसलिए दुनिया में भिन्न-भिन्न पंथ होते हैं।

वैर-विरोध मिटाने की प्यास

आज दुनिया को, अपने देश को इस बात की प्यास है कि दुनिया में जो अशान्ति और वैर-विरोध हुआ है, वह किस तरह मिटे। और इसलिए इन दिनों भगवान् बुद्ध का स्मरण बहुतों को बार-बार होता है। हमने अभी देखा कि बुद्ध भगवान् की पुण्य-तिथि के निमित्त से सब राष्ट्रों में और अपने इस देश में भी जगह-जगह उत्सव किये गये। हर जगह उच्चारण हुआ कि करुणा बढ़नी चाहिए, भेद मिटने चाहिए। दुनिया में आज यही भूख है और यही प्यास है। परन्तु एक दुष्ट-चक्र चलता है, उसमें से मुक्ति किस तरह हासिल करना, यह बहुतों की समझ में नहीं आता है। भिन्न-भिन्न देश दूसरे का डर रखते हैं और दूसरे के निमित्त से हम लाचारी से शस्त्रास्त्र बढ़ाते हैं, ऐसा जाहिर करते हैं। पाकिस्तान समझता है कि हिन्दुस्तान की ताकत पहले से बढ़ी हुई है, इसीलिए हमको शस्त्रास्त्र बढ़ाने चाहिए। इस तरह भारत भी सोच सकता है। वैसा ही अमेरिका और रशिया के बीच में एक-दूसरे के डर के कारण हो रहा है। अब इस दुष्ट-चक्र को हिम्मत के साथ तोड़ना होगा। हमारे भय से दूसरे लोग शस्त्रास्त्र बढ़ाते जा रहे हैं और उनके डर से हम भी इस तरह कर रहे हैं। कोशिश यह हो रही है कि दोनों पक्ष मिलकर के कुछ घटाव करने का दोनों की सम्मति से तय कर रहे हैं। वह प्रयत्न भी प्रामाणिक हो, तो उससे कुछ बन सकता है, लेकिन उस प्रयत्न में परस्पर अविश्वास रहा, तो वह सफल नहीं हो सकता। परन्तु वास्तविक छुटकारा परस्पर सम्मति से काम करने से नहीं होता है, बल्कि अपनी अकेली हिम्मत से काम करने में है। मैं यह नहीं कहता कि परस्पर-सम्मति से इस प्रकार काम करने की वृत्ति गलत है। वह भी एक वृत्ति है और उसका भी एक उपयोग है, परन्तु उसकी राह देखते हुए अगर हम बैठे रहेंगे, तो निस्तार नहीं होगा। इसीलिए आसपास की परिस्थिति शान्ति के लिए अनुकूल है, ऐसा विश्वास हो और ऐसा समझ करके किसीको आगे बढ़ना होगा। हम समझते हैं कि सर्वोदय-समाज के सामने अगर सबसे बड़ी समस्या है, तो यही है।

सर्वोदय-समाज का कर्तव्य

सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि अपने देश में ऐसी हवा तैयार करे और जनमानस ऐसा बनाये कि हम ऐसी हिम्मत कर सकें कि हमारा देश और हमारी सरकार जिस राह पर दूसरे देश नहीं चलते हैं, उस रास्ते पर कदम रखे। इस विषय का जिक्र मैंने दो-तीन दफा सार्वजनिक तौर पर किया है। मैंने कहने की हिम्मत की है कि अगर सामनेवाला बल बढ़ाने के लिए लश्कर बढ़ा रहा है, तो हमको अपना बल बढ़ाने के लिए शस्त्र घटाने का सोचना चाहिए। सामने अगर घना अंधकार हो रहा है और उसका दर्शन हो रहा है, तो उसका अर्थ यही है कि हमारे पास जो प्रकाश है, ऐसा माना है, वह कम है, ऐसा मानकर उसको बढ़ाना चाहिए। मुझे कहने में खुशी होती है कि आज इसी विचार को राजाजी ने अपना बल दे दिया है। इसमें हम अपनी सरकार को भी उपदेश देने नहीं जा रहे हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि आज सरकार में जो हमारे नेता हैं, जो विचार हम आपके सामने पेश कर रहे हैं, उस विचार के लिए अगर देश राजी हो जायगा, तो वे भी बिलकुल राजी हो जायँगे। इसमें दोनों बातें होती हैं, कुछ सरकार की हिम्मत होती है, तो लोगों की हिम्मत बढ़ती है और कुछ लोगों की हिम्मत होती है, तो सरकार की भी हिम्मत होती है। दोनों की हिम्मत बढ़ सकती है—अगर सर्वोदय-समाज जैसी विचारक संस्था उनको उस दिशा में ले जाने की सोचे। आज देश के सामने अनेक-विध समस्याएँ हैं, लेकिन उस बड़ी समस्या के सामने वे सब समस्याएँ फीकी पड़ जाती हैं। इसलिए सर्वोदय-समाज को अपनी जिम्मेवारी ठीक महसूस करनी चाहिए। सर्वसामान्य चिंतन का जो स्तर है, आज के राजनैतिक पक्षों का जो स्तर है, वह इस मामले में काम देनेवाला नहीं है। इसलिए राजाजी ने एक कड़े शब्द का इस्तेमाल किया। उन्होंने कहा कि जिस मनुष्य के मन में पाकिस्तान का डर होगा, उसको सर्वोदय-समाज छोड़ देना चाहिए। यह उन्होंने जो कहा, वह किसी एक व्यक्ति के ५ के लिए नहीं कहा। उनका कहने का तात्पर्य यही था कि सर्वोदय-समाज अगर यह मानता है कि आज की स्थिति में हमारे देश को शस्त्र बढ़ाना उचित है, तो सर्वोदय-समाज अपने दावे के लिए लायक नहीं है।

सेना घटाने से शान्ति

इस विपय के दो पहलू हैं। एक पहलू यह है कि वाहर के किसी आक्रमण का भय न रखें और इस वास्ते हमारी तैयारी शान्ति की हो, हमारे पड़ोसी और आस-पास के देशों के वास्ते हमारी निर्भय और शान्त मनःस्थिति होनी चाहिए। दूसरा पहलू यह है कि अपने देश के अन्तर्गत हम जितने काम करेंगे, वे शान्ति के लिए पोपक होने चाहिए, शान्ति-शक्ति के लिए पोपक होने चाहिए। आपने देखा कि मैंने शान्ति के साथ शक्ति शब्द को जोड़ दिया; नहीं तो देश में शान्ति रखने का अर्थ करीव-करीव स्थितिस्थापक हो जाता है, जिसमें आगे वढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। परन्तु देश में जो समस्याएँ हैं, उनको हल करने की आवश्यकता है और वह शान्ति के जरिये होनी चाहिए, इसलिए मैंने शान्ति के साथ शक्ति शब्द जोड़ दिया। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि वह शान्ति निगेटिव नहीं होगी, पॉजिटिव होगी, यानी वह आक्रमण करने की हैसियत रखती होगी। मसले का सामना करने की और उसमें से हल निकालने की शक्ति वह रखती होगी, इस तरह इसके अन्तर्गत सर्वोदय-समाज में शान्ति-शक्ति का प्रकाशन हमारा एक कार्य होना चाहिए। हम समझते हैं कि सर्वोदय-समाज के सामने यह एक वड़ा ही कर्तव्य उपस्थित है। हमको उम्मीद है कि जो राजनैतिक पक्ष भिन्न-भिन्न तरीके से सोचते हैं, उनको भी इस वात का महत्त्व महसूस होगा। हम जानते हैं कि वे भी शान्ति चाहते हैं। चाहे शान्ति की स्वतंत्र कीमत वे न समझते हों, फिर भी शान्ति की जरूरत वे महसूस करते हैं। अगर वे इतना ही समझते है कि शान्ति की आवश्यकता है, तो इस मामले में सर्वोदय-समाज के साथ वात हो सकेगी। हम समझते हैं कि निर्भयता के साथ यह कह सकते हैं कि हमारे देश के पास आज जितनी शस्त्र-शक्ति है, उससे हरगिज अधिक नही वढ़ायेंगे। फिर चाहे उधर पाकिस्तान अपनी ताकत वढ़ाता जाय, तो भी हम शस्त्रास्त्र नहीं वढ़ायेंगे और उसका हमें कोई भय नहीं होगा। तो पाकिस्तान को भी भान हो जायगा कि जो अपना शस्त्र-वल वढ़ाता चला जायगा, वह स्वयं ही खोयेगा। इस वात का हमको दुःख जरूर होगा कि अपना पड़ोसी देश विनाश की राह ले रहा है। उसको विनाश से वचाने का उपाय यही है कि हम शस्त्रास्त्र नहीं वढ़ायेंगे। हिम्मत के साथ घटा सकें, तो घटायेंगे। हम जानते

हैं कि इस बात के लिए देश को तैयार करना होगा। चाहे आज देश इसके लिए तैयार नहीं होगा। हम यह भी जानते हैं कि जो सरकार में है, उनके सामने कई प्रकार के विचार उपस्थित होंगे, कई प्रकार की जानकारी हासिल होगी, जो हमको नहीं होगी। इसलिए हमने कहा कि इसमें हम किसी पर टीका करने की कोई वृत्ति नहीं रखते हैं। लेकिन सिर्फ अन्तर्निरीक्षण की दृष्टि रखते हैं और सोचते हैं। लेकिन दुनिया की परिस्थिति का जो अवलोकन हम कर सके हैं, उसी पर से हमारा विश्वास हुआ है कि हिन्दुस्तान अगर अपनी सेना आधी और कम कर देगा, तो दुनिया के लिए एक राह खुल जायगी और हिन्दुस्तान के लिए भी अत्यन्त शान्ति होगी। आज दुनिया का जो हमारा दर्शन है, वह यह कह रहा है कि जैसा कदम हम कह रहे हैं, वह कदम उठाने के लिए यह समय बहुत ही अनुकूल है। तो, हम चाहते हैं कि हमारे देशवासी और सर्वोदय-समाज के सेवक इस बात पर गम्भीरता से सोचेंगे। ऊपर-ऊपर से सोचने का यह विषय नहीं है। बहुत गहराई में जाना होगा। आज की चुनाव की पद्धति भी इसके साथ संबंध रखती है। देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था भी उसके साथ संबंध रखती है और सबका सब विचार करना होगा, तभी इसमें से निस्तार होगा।

सर्वोदयपुरम्, (कांचीपुरम्)
२७-५-'५६

परिशिष्ट : ९

सीमा में से असीम की ओर

[विनोबा]

इस आन्दोलन की प्रक्रिया में तन्त्र-मुक्ति का एक आवश्यक स्थान है। इस संबंध में हमारे अंदर विचार की कोई न्यूनता न रहे। यह तो ठीक है कि एक कोई ऐसा स्थान रहे, जहाँ से जानकारी हासिल हो सकती है और दानपत्र इत्यादि

जब तक रखना है, रखे जाते हैं। बाकी का कुल काम जनता को सौंप दिया गया है, कोई कार्यकर्ता खास रखे हुए नहीं हैं—काम चलाने के लिए, ऐसी स्थिति हो जानी चाहिए।

सम्पत्ति-दान हमने शुरू कर दिया है, पर सम्पत्ति-दान के केन्द्रीकरण होने की कोई जरूरत नहीं है। अपने-अपने स्थान पर लोग सम्पत्ति-दान इकट्ठा करते हैं और काम बढ़ता है। वैसा ही भूदान में हो, तो शायद आज जिस तरह भूदान-आन्दोलन चल रहा है, उसके बदले वह असीम में चला जायगा। अर्थात् जनता उसको उठा लेगी। इसलिए वह विचार हमको छोड़ना नहीं है। उसके लिए बहुत अनुकूलता हमने नहीं देखी है, इसलिए हमारा कोई आग्रह नहीं है। परन्तु इस बात पर हमें सोचना जरूर चाहिए, क्योंकि एक निश्चित मुद्दत के अंदर काम हो, यह हमने इच्छा रखी है। वह तो एक तीव्र प्रेरणा की बात है, भावना का विषय है। उस मुद्दत में नहीं होता, है तो संशोधन के लिए मौका मिलता है, यदि पूरा प्रयत्न कर लिया गया हो। पूरा प्रयत्न नहीं किया गया हो, तो अक्ल कुछ बोलेगी नहीं, नयी बात सूझेगी भी नहीं। इसलिए पूरा प्रयत्न होना चाहिए। पूरा प्रयत्न करने पर भी मानने लायक यश न मिला हो, तो सोचने का मौका मिलता है कि क्या वह तरीका गलत था? अगर नहीं था, तो फिर उसीको आगे चला सकते हैं, उसीको 'रेज' (बढ़ावा) दे सकते हैं। अगर वह गलत था, तो उसको दुरुस्त कर सकते हैं। यदि वह गलत नहीं था, अपूर्ण था, तो उस अपूर्णता को पूर्ण कर सकते हैं। इस प्रकार सोचने का मौका मिलता है। यह बात तो नहीं कि इतनी मुद्दत में काम नहीं हुआ है, तो बस, काम ही छोड़ दें। काम जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक उसको चलाते ही रहना है। यही तो जीवन-दान का अर्थ है।

तंत्र-मुक्ति की ओर

परन्तु जब हमने यह विचार रखा कि एक निश्चित मुद्दत में हमारी सब ताकत लगे, तो हमको लगा कि हमने जो संगठन किया, उसके कारण आरंभ में तो शायद रक्षण हुआ, परन्तु इसके आगे वह रक्षण फैलने नहीं लगा। इसलिए हमारा मन पूछने लगा कि क्या वह विचार को रोकेगा? प्रचार में बाधा डालेगा? क्या यह

सम्भव है ? हमारे मन में संगठन के बारे में कुछ बुनियादी विचार भी हैं। वे विचार भी इसमें काम करते होंगे, लेकिन उन विचारों को हमने इसमें ज्यादा आने नहीं दिया है। हम संगठन को तो नहीं मानते। न मान करके भी हम सोचते हैं कि जो अनेक राजनैतिक पक्ष हैं, उनके कार्यकर्ता भी कुछ मदद देते हैं और जो कोई पक्षातीत व्यक्ति हैं, वे भी मौके पर कुछ मदद देते हैं। परन्तु जहाँ भी तनिक 'इनीशियेटिव' (अभिक्रम)लेने की बात हो, तो लोग सोचते हैं कि भूदान-समिति की ओर से काम शुरू होगा, तब हम मदद करेंगे; तो जैसे आन्दोलन कुछ जकड़ में आ गया है, ऐसा हो जाता है। "भूदान-समिति की ओर से जितना आवाहन होगा, उसको हम उतनी मदद दे देंगे, परन्तु स्वतंत्र रूप से सोचने की हम पर कोई जिम्मेवारी नहीं है", ऐसा वे सोचते हैं। पर इस काम को बढ़ावा देने की हर मनुष्य पर जिम्मेवारी है ऐसा अगर हर मनुष्य माने, तो फिर उसके लिए जो कुछ करना पड़े, सो करना ही है, यही विचार चलता है। इसलिए मन में आया कि बनाया हुआ यंत्र अगर हम तोड़ देते हैं, तो जनता पर जिम्मेवारी डाल देते हैं। घूमनेवाले घूमते रहेंगे, काम करनेवाले काम करते रहेंगे। यह बात कोई एक साल से मेरे मन में चल रही है।

ढेबर भाई का सुझाव

ढेबर भाई ने सुझाया कि हम प्रचार करते हैं, तो कुछ काम होता है, कुछ हवा भी तैयार होती है। परन्तु यह है साक्षात् युद्ध की बात। समर-स्थल पर जाकर काम किये बिना युद्ध नहीं होता। इसलिए हममें से हरएक के जिम्मे एक जिला होना चाहिए। यह नहीं कि हर जिले के लिए किसी मनुष्य को खड़ा किया जाय। परन्तु हममें से कई लोग कई प्रकार के काम करते हैं। लेकिन जो लोग कुछ ताकत रखते हैं, वे कहें कि हम इस जिले में अपनी जिम्मेवारी महसूस करते हैं, फिर आपकी भूदान-समिति वहाँ हो या न हो; हम ताकत वहाँ लगायेंगे। इस तरह जितने लोग यहाँ हैं, वे अपना-अपना संबंध एक-एक जिले से जोड़ेंगे। मान लीजिये कि यहाँ ५० आदमी हैं और हिन्दुस्तान में ३०० जिले हैं। अब एक-एक जिले के लिए एक-एक मनुष्य तो नहीं है। परन्तु ५० तो आदमी ऐसे निकले, जिन्होंने कहा कि हम अपना काम सँभाल लेंगे, अपने जिले का प्राप्ति-वितरण कर कोटा हमको कह

दीजिये ! इस तरह कहनेवाले लोग अगर मिल जायँ, तो वे मेरिट हासिल करके ही काम करेंगे, तब शायद काम अधिक हो । यह कहकर उन्होंने सुझाव पेश किया, उसके साथ अपना नाम जोड़ दिया और कहा कि मेरे जिम्मे आप एक जिला लगा दीजिये । कांग्रेस-अध्यक्ष के नाते जो भी काम है, करूँगा, देखूँगा, पर यह काम भी करूँगा और जरूरत पड़े, तो सब काम छोड़ करके भी वह काम पूरा करूँगा । इस तरह से ५-५० लोग तैयार हो जायँ और बाकी जिलों में जैसा चलता है, वैसा चले । आन्दोलन के लिए यह अच्छी चीज रहेगी, ऐसा उनका विचार था । उनके विचार में सार है । अगर ढेबर भाई एक जिला उठा लें, तो उस जिले में आज जितना काम होता होगा, उससे बहुत ज्यादा काम वहाँ होगा, इसमें कोई शक नहीं ।

क्रांति का 'नाटक' तो करके देखें

पर मेरे सुझाव में यह बात है कि यह एक क्रान्ति का आन्दोलन है । तो, क्रान्ति का आन्दोलन होने के नाते हम क्रान्ति का नाटक भी क्यों न करें ? ध्यान-योग करते हैं, तो क्या उसी समय ध्यान लगता है या समाधि लगती है ? परन्तु महीनों और वर्षों वह 'नाटक' चलता है और होते-होते कभी सध जाता है । हम प्रार्थना करते हैं, तो चित्त हमेशा एकाग्र होता है, ऐसा नहीं । चलता है वह नाटक । परन्तु हमने तय किया है कि हम वह नाटक करते रहेंगे । उसमें हमारी श्रद्धा है, तो उसे हम करेंगे और एक दिन आयेगा, जिस दिन हम एकाग्र हो जायँगे । तो, वैसे ही हम क्रान्ति का नाटक कर दें कि इस आन्दोलन के लिए हमारे पास कोई संस्था नहीं है । वैसे हम कहते भी हैं । कांग्रेसवाला आता है, तो उसको हम धमकाते हैं कि क्यों रे, यह काम क्यों नहीं पूरा हुआ ? तो वह यों नहीं कहता कि तुमको धमकाने का क्या अधिकार है ? तुम न हमारी संस्था के सदस्य हो, न हमारे ऊपर के अधिकारी हो । कहता है कि हमको और कुछ काम था, इसलिए नहीं किया, अब आगे करेंगे, इत्यादि । वैसे ही दूसरा कोई आता है, तो उसको भी धमकाते हैं । तो, धमकाने की शक्ति क्यों आयी ? क्योंकि हम किसी एक पक्ष में सम्मिलित नहीं हैं । ऐसा काम उठाया है, जिसमें सबका भला है । तो, इस वास्ते हम सबकी मदद हासिल कर सकते हैं ।

इलेक्शन और भूदान

इस तरह से जनता पर भार छोड़कर भूदान-समिति साहित्य, जानकारी देना आदि का ही सिर्फ भार ले। पर इससे आन्दोलन का नैतिक वजन बढ़ेगा या नहीं, यह सवाल मन में उठा है, क्योंकि आखिर हमारे जो मनुष्य होते हैं, उनकी कुछ सीमाएँ भी हैं और वे उस काम को भी लग जाती हैं। याने एक मनुष्य के व्यक्तिगत गुण और व्यक्तिगत दोष, सबके साथ भूदान-आन्दोलन मिल जाता है। उस बारे में लोग कभी शिकायत भी करते हैं कि आपका फलाँ व्यक्ति ऐसा था, इसलिए हमारा सहयोग नहीं मिला। पर हमारे तो सभी हैं। और यह तो समुद्र है। यह अगर हो जाय, तो सम्भव है कि इसका कुछ नैतिक वजन बढ़े।

हमसे कोई कहता है कि आपका क्या भरोसा? आपका फलाना मनुष्य इलेक्शन में खड़ा होगा या नहीं होगा, इसकी परीक्षा १९५७ में होगी। हम समझाते हैं कि हमारी भी परीक्षा १९५७ में करियेगा या नहीं? परीक्षा तो हरएक की होने-वाली है। मरने के दिन तक होनेवाली है। और हमारे लोग अगर इलेक्शन में खड़े हो,जायँ, तो कोई बुरा काम करते हैं, ऐसा तो हम नहीं कहेंगे। अगर इलेक्शन बुरी चीज है, तो इलेक्शन में किसीको खड़ा ही नहीं होना चाहिए। अगर वह अच्छी चीज है और सारे देश के लिए आयोजन किया जाता है, तो हमारा मनुष्य भी खड़ा हो जाय। हाँ, वह यदि कहे कि भूदान-समिति के कार्यकर्ता के नाते खड़ा हूँ, तो मैं कहूँगा कि यह गलत बात है। हमारी समिति किसी को खड़ा नहीं करेगी। परन्तु कोई स्वतंत्र रूप से खड़ा होता है और उसने बड़ा अच्छा काम किया है, ऐसा असर अगर लोगों पर है और इस वास्ते लोग उसे चुन भी देते हैं, तो क्या वह कोई बुरा काम करता है? यह एक उदाहरण दिया, परन्तु अब साथ-साथ यह भी हमें सोचना चाहिए कि हमारे लोगों के बारे में इस प्रकार की कल्पना लोग क्यों करते हैं? ऐसी स्थिति क्यों आती है? इसलिए कि हमारे चन्द ही लोग हैं। लेकिन जब कुल ही लोग हमारे हो जाते हैं, तो यह सवाल फिर नहीं उठेगा और फिर आन्दोलन शुद्ध मनुष्यों के जरिये स्वाभाविक ही आगे बढ़ेगा। इसीलिए हमने अभी कहा कि यह क्रान्ति का नाटक है और अगर इससे काम बना, तो जोरदार दर्शन होगा।

संभव है, यह टूट भी पड़े, कुछ काम ही न हो। लेकिन उससे क्या होगा ? क्या काम रुकेगा ? बाबा पहले अकेला घूमता ही था। आज तो वह अकेला भी नहीं है और पचासों लोग इस काम में लगे हुए हैं। आरंभ में बाबा का स्वागत, व्यवस्था, भूदान-प्राप्ति आदि कौन करता था ? कोई भूदान-समिति तो नहीं थी और न सर्व-सेवा-संघ ने ही शुरू में एक संस्था के नाते पूरा भार उठाया था। यह काम कहीं पर खादीवालों ने किया, तो कहीं कांग्रेसवालों ने। जहाँ सोशलिस्टों का वजन था, वहाँ उन्होंने मदद की। इस तरह से काम जैसे उस वक्त चला, वैसे ही फिर चलेगा। उस समय तो एक ही मनुष्य काम कर रहा था, इसलिए वह उस तरह से सीमित था। अब इसमें बहुत-से लोग और सर्व-सेवा-संघ काम करता है। आम जनता से उनका सीधा संबंध भी आया है, तो अब आगे आम जनता में से कोई भी यह काम करेगा। तब कोई यह नहीं कहेगा कि "हमें आदेश नहीं मिला, हमें इजाजत नहीं मिली।" यदि मिली, तो गति ही मिलेगी, ऐसा मेरा मानना है। पर इसके बारे में हमारा आग्रह नहीं है। जँचे तो वह करें, न जँचे तो न करें। लेकिन फिर उसके बदले में ऐसी कोई युक्ति सुझाइये, जिससे आन्दोलन के सीमित होने का प्रश्न न आये, वह व्यापक बनने की ही राह खुल जाय।

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ की प्रबंध-समिति में

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२६-५-'५६

परिशिष्ट : १०

बेकारी-निवारण कैसे हो ?

[विनोबा]

बेकारी-निवारण का जब हम विचार करते हैं, तो बहुत कृत्रिम विचार करते हैं। सरकार चाहती है बेकारी-निवारण, हम भी चाहते हैं, हरएक चाहता है;

परन्तु बेकारी-निवारण के कुछ बुनियादी सवाल हैं। यदि तात्कालिक बेकारी-निवारण करना हो, तो एक बात है। जब हम देखते हैं कि दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ती है, उस हिसाब से जमीन का रकबा हरएक मनुष्य के लिए कम होगा। तो, ऐसी कोई बेकारी-निवारण-योजना हमें करनी है, जो हिन्दुस्तान के सामाजिक जीवन का अंशयोग हो। ऐसा नहीं होगा कि पाँच साल के लिए कर दिया, फिर आगे कोई दूसरा तरीका निकलेगा, तो इसको छोड़ सकते हैं। इस तरह बेकारी-निवारण का हिन्दुस्तान में सोचना ही बेकार है। दिन-ब-दिन उसका प्रेशर बढ़ने ही वाला है।

यह शाश्वत समस्या है

कुछ यंत्रों के आधार से हम कुछ करें, आदि बातें हम करते हैं; लेकिन कल यदि कोई युद्ध शुरू हो जाय या पाकिस्तान की सेना और मजबूत बन जाय, तो क्या करेंगे ? यह सवाल आता है। आपने इस साल सेना का खर्च न बढ़ाने का तय किया, क्योंकि अभी बैलेन्स आपके पक्ष में है। लेकिन मान लीजिये, पाकिस्तान की ताकत और बढ़ जाय, तो माँग होगी कि हमें फौजी ताकत बढ़ानी चाहिए। हम ऐसी हिम्मत नहीं कर रहे हैं कि हम तो हर हालत में सेना को घटाना चाहते हैं। चूँकि वह बढ़ाना चाहता है, इसलिए हम और घटाना चाहते हैं, ताकि दुनिया में निर्भयता बढ़े—ऐसा हम सोच नहीं सकते, क्योंकि हमें भय है, वह एक बड़ी समस्या सामने खड़ी है। वैसा सवाल आ जाय, तो बहुत साल का प्लानिंग तितर-बितर हो जायगा और बेकारी का सवाल ज्यों-का-त्यों रह जायगा। इस वास्ते सैनिक स्वावलम्बन आदि विचार न करें, बेकारी का ही विचार करें। लेकिन इतना ही समझें कि बेकारी का निवारण एक तात्कालिक समस्या नहीं है; बल्कि एक शाश्वत समस्या है। यह समझ करके उसे जीवन का अंग मानना चाहिए।

इसका अन्तर्भाव कम्यूनिटी प्रोजेक्ट में

मुझे दिखता है कि इस प्रकार की चर्चा आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने की है। तो, मैं कहना यह चाहता था कि ऐसा विचार समझ करके यह न सोचें कि एक पक्ष बोल रहा है, स्वावलंबन के हित में और दूसरा बेकारी-निवारण

के हित में। फिलहाल हम यह सोचें कि बेकारी-निवारण ही करना है। जब भी बड़े लोगों से मिलने का मौका आता है, मैं सतत यह बात समझाने की कोशिश करता हूँ कि इसका अन्तर्भाव कम्यूनिटी प्रोजेक्ट में होना है। क्योंकि आज नहीं, तो कल कम्यूनिटी प्रोजेक्ट उनकी योजना के हिसाब से हिन्दुस्तान के सब देहातों में लागू होगा। उस हालत में कम्यूनिटी प्रोजेक्ट को छोड़कर कुछ क्षेत्र बचता नहीं है और बचना भी नहीं चाहिए, ऐसी सरकार की योजना है। ८ घंटे किसीको काम दिया, तो बेकारी-निवारण हुआ और ४ घंटे कोई दूसरा काम करते हुए उसे काम मिला, तो बेकारी-निवारण नहीं हुआ, ऐसा नहीं। सोचने की बात यह है कि हमने कई साल पहले एक प्रस्ताव किया था, जिसके निर्णय में बहुत चर्चाएँ हुई थीं। उन दिनों बापू थे। हिन्दुस्तान में जितना कच्चा माल देहातों में पैदा किया जाता है, उसका पक्का माल वहीं देहातों में बनाना चाहिए, जहाँ पक्के माल की खपत है। कपड़ा ऐसा माल है, जिसकी हर घर में जरूरत है। कच्चा माल पैदा होगा देहातों में ही, इसलिए पक्का माल भी वहीं बनना चाहिए। तो, प्रस्ताव यह था कि हिन्दुस्तान के देहातों के लिए खादी का ही क्षेत्र रहे। मिलें वगैरह चलती हैं शहरवालों के लिए, परन्तु जहाँ तक देहातों का ताल्लुक है, खादी ही चले। तो, जहाँ कच्चा माल पैदा होता है वहीं पक्का माल बने और वहीं उसकी खपत हो—यह बेकारी-निवारण का एक शाश्वत सूत्र है।

यह जो दूसरा तरीका बेकारी-निवारण का है कि हम सूत पैदा करें और दूसरी जगह बेचें और दूसरा सामान लें, वह बेकारी-निवारण का शाश्वत तरीका नहीं है, वह तात्कालिक तरीका है। इस दृष्टि से हमें सोचना चाहिए। तो, अभी तक जो आप लोगों ने तय किया है, उसमें कोई गलती है, ऐसा नहीं। बेकारी-निवारण का जो सोचा है, वह ठीक ही है। पर सरकार के हाथ यह सब होना चाहिए। सरकार अपनी ताकत लगा करके काम करती है और हम लोग जितनी अधिक-से-अधिक मदद हो सकती है, करते हैं; लेकिन काम सरकार का है, ऐसा मानना चाहिए। तो, कुल मिलाकर वहाँ कम्यूनिटी प्रोजेक्ट पर यह जिम्मेदारी डाली जाय कि हर देहात के घरवालों को खादी उपयोग में लानी चाहिए और ग्राम का संकल्प होना चाहिए कि यह काम उनको करना है।

सरकार सूत कातना सिखाये

दूसरी बात यह है कि सबको सूत कातना सिखाने का जिम्मा सरकार को लेना चाहिए। यह बात मैंने पं० नेहरू के सामने दो बार रखी कि जैसे आप सबको पढ़ना सिखाते हैं—यह सरकार का कर्तव्य है—वैसे ही सरकार यह माने कि हिन्दुस्तान के सब देहातों को सूत कातना सिखा देना उसकी योजना का एक अंग और कर्तव्य है। तो वह यह काम करे। और बुनकरों को पूरा संरक्षण भी उनकी ओर से मिलना चाहिए। मैं समझता हूँ कि वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए ही नहीं, बेकारी-निवारण के लिए भी इससे उत्तम ही मदद मिलेगी। बेकारी-निवारण इसलिए कहते हैं कि अम्बर चरखे जितने भी चलेंगे, घंटे भर के लिए नहीं, कम-से-कम ६ घंटे तो चलेंगे, तो कितना स्पष्ट है कि बेकारी का निवारण होगा। जब अम्बर चरखा आता और लोग निश्चय करते हैं कि हमारे गाँव में कपड़ा नहीं है और सरकार की यह पॉलिसी है कि आपके गाँव में खादी तैयार करनी है, तो कुछ लोग चरखा कातेंगे और कुछ लोग तकली कातेंगे, तो दूसरा सूत भी तैयार हो जायगा। जैसे मँगरौठ में २०-२५ अम्बर चरखे आये, तो उसके साथ ८०-८५ बाँस-चरखे भी लोगों ने ले लिये। याने लोगों में एक भावना पैदा हो गयी।

ग्राम में जो कुछ पैदा होता है, उसकी पहली खपत ग्राम में होनी चाहिए। इस योजना पर अमल करेंगे, तो बेकारी का शाश्वत निवारण होगा। नहीं तो वह तात्कालिक और खतरे में है। खतरे में इसलिए है कि सरकार की जो शक्ति उसमें मदद देने की है, वह हमेशा कम-बेशी रहेगी। कहेंगे कि इससे ज्यादा हम नहीं कर सकेंगे। ३६ करोड़ में ६ करोड़ छोड़ दें, तो भी ३० करोड़ लोग देहातों के कुल का कुल कपड़ा खुद बना लें। इस दृष्टि से अगर हमारे देहात बच जायँ, तो हमने एक भारी कदम उठाया और बेकारी का हमने बड़ा भारी हल किया। तो, यह विचार भी आपके सामने रख दिया।

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ की कार्यकारिणी सभा में

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२९-५-'५६

परिशिष्ट : ११

नयी तालीम का आदर्श

[विनोबा]

बापू कहते थे कि नयी तालीम ही मेरी इस देश के लिए सर्वोत्तम और अंतिम देन है। बापू की यह आदत नहीं थी कि किसी बात को वह बढ़ा-चढ़ाकर कहें। हमको उनके सिवा दूसरा मनुष्य याद नहीं है, जो अपने शब्दों को पूरा तौल करके बोलता हो। इसलिए उन्होंने जो कहा, वह संपूर्ण अर्थ में उनकी दृष्टि से यथार्थ था। बापू का सबसे श्रेष्ठ गुण यह था कि उनमें प्रतिभा थी; याने तर्क-शक्ति से नहीं, किंतु स्वयं-प्रज्ञा से वे आवश्यकता को महसूस करते थे। स्वराज्य के बाद जिस चीज की अत्यंत जरूरत रहेगी, ऐसी हरएक चीज का आविष्कार उन्होंने कर दिया था। उनका खयाल था कि जैसे राज्य बदलने के साथ झंडा बदल जायगा, वैसे ही राज्य बदलने के साथ तालीम भी नयी शुरू करनी होगी।

सब लोग जानते है कि राज्य-प्राप्ति के बाद कितनी ही समस्याएँ पेश हुई, कितनी ही मुश्किलें आयीं, इसलिए कुछ समय ऐसा ही चला गया। इसके लिए कोई कुछ नहीं कर सकता था। उसके बाद कुछ समय इसलिए गया कि विचारों में पूर्ण सफाई नहीं हुई थी। हम नम्रतापूर्वक यह भी कबूल करेंगे कि हमने जो प्रयोग नयी तालीम का, पूरी श्रद्धा और लगन से किया, उसमें हम यह नहीं कह सकते कि वह हमको पूरा समाधानकारक मालूम हुआ है। परंतु हम इतना नम्र दावा करने की हैसियत रखते है कि इस प्रकार का प्रयोग उत्साहकारी प्रयोग है और उस पर विश्वास रखकर आगे बढ़ने लायक है।

'नयी तालीम' नाम क्यों ?

बापू ने इसको 'नयी तालीम' नाम क्यों दिया ? तालीम के पहले "नयी" विशेषण जोड़ने का मतलब क्या है ? शिक्षण का और ज्ञान का जो मूलभूत विचार होता है, वह अनादि ही होता है, नया नहीं होता है। परंतु बीच-बीच में विचार मंद पड़ जाता है और नये जमाने के साथ उसको नये रूप में प्रकाशित करना होता है, तो वह नयी चीज बन जाती है।

हमको मालूम है कि भगवान् कृष्ण जब सांदीपनि ऋषि के आश्रम में विद्या-संपादन करने के लिए गये, तब उनको जंगल से लकड़ी लाने का काम सौंपा गया था और उसके साथ विद्या सिखायी गयी है। हमको यह भी मालूम है कि जब सत्यकाम जाबाल गुरु के पास पहुँचा था, तब उसके गुरु ने यही मंत्र दिया था कि वह गायों की सेवा करे और उसे गायों की कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ था। फिर उसको बैल से, पक्षी से ज्ञान मिला इत्यादि-इत्यादि कहानी उपनिषद् में आती है। तब, जब गुरु ने उससे पूछा कि तेरे चेहरे पर विद्या की चमक दीख रही है, तो तुझे कहाँ से यह विद्या मिली ? तो उसने कहा, 'अन्ये मनुष्येभ्यः'—मनुष्य से कोई भिन्न गुरु मिले थे। यह अहंकार भी व्यर्थ है कि हमको मनुष्य के जरिये ही ज्ञान मिलता है, बल्कि मनुष्य से हमको जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह एक अंश-मात्र है।

शिक्षण की ईश्वरीय व्यवस्था

मैं बहुत दफा विनोद में कहता हूँ कि लोगों को चिंता होती है कि अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षण कैसे दिया जाय ? मैं कहता हूँ कि यह योजना करने की बाकी नहीं है। भगवान् वह योजना कर चुका है। इतनी महत्त्व की योजना कि जिसके आधार पर मानव खड़ा है, ऐसी शिक्षण-योजना किये बिना ही भगवान् मानव को जन्म देगा, यह संभव नहीं है। कोई एक सरकार बनेगी और उसके बाद योजना करके सबको अनिवार्य और मुफ्त तालीम देगी, उतना आधार परमेश्वर सरकार पर रखता, तो दुनिया मिट ही जाती। लेकिन भगवान् ने मनुष्य के दिमाग में अक्ल रखी है। पेट में भूख रखी है और हृदय में सबके लिए सहानुभूति रखी है। तो यह सहानुभूतिवाला हृदय, अक्लवाली बुद्धि और भूखवाला पेट, ये तीन साधन ज्ञान-प्राप्ति के लिए मिल गये। इस भूख के निवारण के लिए सहानुभूति के साथ बुद्धिपूर्वक उसे काम में लगना होता है। वह काम करने के लिए जाता है, तो तरह-तरह का ज्ञान होता है। अगर पेट की भूख का दिव्य दान भगवान् की तरफ से नहीं मिला होता, तो कोई तालीमी संघ और सरकार ज्ञान नहीं देती। उसे हम 'अनिवार्य शिक्षण' कहते हैं। अगर यह शिक्षण हम नहीं पाते, तो हमारी भूख नहीं मिटती, हृदय की सहानुभूति नहीं रहती, बुद्धि को चैन नहीं पड़ती।

लड़कों के लिए योजना है कि माता के उदर से उन्हें जन्म मिले। माता बच्चे

को मातृभाषा सिखाती है, इसके लिए एक कौड़ी का भी खर्च सरकार को नहीं करना पड़ता है। उसको हम मुफ्त तालीम की योजना कहते हैं। इतनी दुहरी योजना भगवान् कर चुका है। करने का जो बाकी है, वह गणित में जिसको शून्य कहते हैं, ऐसा शून्यवत् है, इतना ही समझना चाहिए। इसलिए मैं बहुत दफा कहता हूँ कि हम शिक्षणदाता हैं, ऐसा कोई समझता होगा, तो उसको शिक्षण पाने का बाकी है. इतना ही समझना होता है।

'सीखना' शब्द

एक शब्द की खोज हुई है, उस पर से हिन्दुस्तान की मनोवृत्ति का भान होता है। हिन्दुस्तान के संविधान में कुल चौदह भाषाओं में 'सिखाने' के लिए कोई शब्द नहीं है, 'सीखने' के लिए शब्द है। सिखाना याने सीखने में मदद देना, यह कृत्रिम शब्द बनाया है। जैसे अंग्रेजी में 'टीच' शब्द है, ऐसा शब्द हमारी भाषा में नहीं है। हम सीख सकते हैं, सिखाने में मदद दे सकते हैं, लेकिन 'टीच' नहीं सकते। अंग्रेजी में एक शब्द 'लर्न' है और दूसरा शब्द 'टीच' है। याने "लर्न" एक स्वतंत्र क्रिया है और "टीच" एक स्वतंत्र क्रिया है। यह अध्यापक का अहंकार है। यह अहंकार हम जब तक रखेंगे, तब तक तालीम का तत्त्व हम नहीं समझेंगे। इसलिए हमको पहले ही समझ लेना चाहिए कि दुनिया में कोई अशिक्षित मनुष्य है ही नहीं।

अशिक्षित कौन है ?

आजकल यह होता है कि मामूली मैट्रिक पास हुआ लड़का उत्तम बढ़ई को भी बेवकूफ समझता है। वह उसके घर जाता है और कहता है कि "मेरे घर में काम है, तेरी मजदूरी क्या होगी ?" तो वह उसको, 'तेरी' मजदूरी पूछता है ? "आपकी मजदूरी क्या है जी ?" ऐसा नहीं पूछता है। इतना ज्ञानी कारीगर, जो देश की सेवा करता है, जो प्राज्ञ और अनुभवी पुरुष है, उसे 'तू' कहा जाता है, सिर्फ इसी आधार पर कि वह पढ़ना-लिखना नहीं जानता है।

भगवान् के दर्शन

मुहम्मद पैगम्बर की एक सुन्दर कहानी है। एक दफा वे ध्यान-समाधि में मग्न थे। वे ईश्वर का दर्शन चाहते थे, तो ईश्वर ने उन्हें एक पत्र लिखकर दिया।

मुहम्मद पैगंबर पढ़ना नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने परमेश्वर से प्रार्थना की कि मैं अपढ़ मनुष्य हूँ, इसलिए मुझे आपके दर्शन चाहिए। फिर ईश्वर ने स्वयं आकर उन्हें दर्शन दिये। उसके वाद मुहम्मद पैगंवर लोगों को यह कहानी सुनाकर कहते थे कि अगर मैं पढ़ा-लिखा होता, तो मुझे ईश्वर का दर्शन नहीं मिलता, सिर्फ ईश्वर का पत्र ही देखने को मिलता! मैं पढ़ा-लिखा नहीं था, इसीलिए मुझे ईश्वर के दर्शन हुए। किसानों की एक सभा में हमने एक सवाल पूछा था कि आप लोग खेतों में खुद मेहनत करते हैं, अच्छी तरह हल चलाकर खेतों को तैयार करते हैं, उस पर सूर्यनारायण की धूप पड़ती है और फिर आप परमेश्वर के दर्शन की राह देखते हैं। आप लोगों में से जिन लोगों ने ईश्वर के दर्शन किये हों, वे हाथ उठायें, तो कुल किसानों ने अपने हाथ उठाये। एक भी किसान ऐसा नहीं निकला, जिसे शंका आयी कि मुझे ईश्वर के दर्शन हुए हैं या नहीं। उनको दर्शन हो ही चुके हैं। वारिश जव गिरती है, तब साक्षात् भगवान् दर्शन के लिए ही नहीं, वल्कि स्पर्श के लिए आये हैं, ऐसा उनको भास होता है। परन्तु यह दर्शन जिन्हें नहीं होता है, वे शिक्षित कहलाते हैं। ऐसे शिक्षितों से भगवान् हमको बचाये!

निरहंकार वृत्ति आवश्यक

शिक्षा-दान का कार्य अहंकार का कार्य नहीं है, उसमें निरहंकार-वृत्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्यार्थी की सेवा करने के लिए शिक्षक हमेशा प्रस्तुत रहेगा, वह नम्र होकर उसकी सेवा करेगा और विद्यार्थी नम्र होकर शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करेगा। वे एक-दूसरे को साथी समझेंगे, इसलिए प्राचीन काल में दोनों मिलकर भगवान् की प्रार्थना करते थे और दोनों एक साथ बोलते हैं कि "तेज-स्विनावधीतमस्तु"—हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी बने। इसमें "नौ" शव्द है, वह द्विवचन है। याने शिक्षक यह नहीं मान रहा है कि मैं अध्यापन कर रहा हूँ। वल्कि यह मानता है कि मैं अध्ययन कर रहा हूँ और विद्यार्थी अध्ययन कर रहा है, यह तो जाहिर ही है। तो, हम दोनों एक साथ जीवन जी रहे हैं, एक साथ अध्ययन कर रहे हैं। विद्यार्थी समझता है कि शिक्षक का उपकार है कि वह हमको मदद देता है। शिक्षक समझता है कि विद्यार्थी का उपकार है कि वह उसको सहायता देता है।

विश्वामित्र दशरथ के पास आये और उन्होंने राम-लक्ष्मण की माँग की, क्योंकि अपने यज्ञ की रक्षा के लिए वे उनको चाहते थे। विश्वामित्र ने राम को बाद में बहुत ही ज्ञान दिया। उसकी कहानी रामायण में आती है। जिस शिक्षक को लगता है कि मेरे विद्यार्थी के कारण मेरे यज्ञ की रक्षा होती है, वह शिक्षक है। अगर यह विद्यार्थी नहीं होता, तो मेरे जीवन-यज्ञ की रक्षा नहीं होती, ऐसा विद्यार्थी का उपकार जो महसूस करता है, वह शिक्षक है।

परस्पर उपकार और उपकृत की भावना रखनेवाले दो साथियों में शिक्षण का व्यवहार होगा, इसलिए नयी तालीम में पुस्तकों को गौण स्थान है। लोग घबड़ाते हैं। जहाँ पुस्तक का आधार कम हो गया, वहाँ लोगों को लगता है कि ज्ञान-साधन ही कम हो गया। इसमें कोई शक नहीं है कि पुस्तकों की जरूरत ज्ञान-प्राप्ति के लिए कुछ-न-कुछ होती है, परन्तु वह मदद अत्यन्त गौण है। एक साथ विद्यार्थी और शिक्षक रहकर जीवन विताते हैं, वह चीज ही प्रधान है। अर्थात् शिक्षक शिक्षण दे रहा है और विद्यार्थी ले रहा है, इस प्रकार का भेद मिट जाना चाहिए, यह इसका पहला आरंभ है।

नयी तालीम का दूसरा विचार यह है कि इसमें ज्ञान और कर्म का 'भेद', 'विरोध' और 'वाद' मिटता है। मैंने इन तीन शब्दों का इस्तेमाल इसलिए किया कि आज दुनिया में जितने तत्त्वज्ञान हैं, वे इन तीन विषयों के लिए होते हैं। कोई ज्ञान और कर्म का भेद मानते हैं, कोई उनमें विरोध मानते हैं। इस तरह के पक्ष तत्त्वज्ञान में बनते हैं।

शिक्षण-प्रयोग

नयी तालीम का विश्वास है कि ज्ञान और कर्म, दोनों एक ही वस्तु के दो स्वरूप हैं। इसलिए मालूम ही नहीं होता है कि यह ज्ञान-कार्य चल रहा है या कर्मयोग चल रहा है। एक दृष्टि से देखो तो ज्ञान-कार्य चल रहा है, ऐसा दीखता है, दूसरी दृष्टि से देखो तो कर्मयोग चल रहा है, ऐसा दीखता है। इस तरह का आभास जिन प्रयोगों में आयेगा, उसका नाम शिक्षण-प्रयोग। जब यह आभास होगा कि यहाँ केवल ज्ञान-कार्य चल रहा है, वह शिक्षण-प्रयोग ही नहीं है। जहाँ यह दीख रहा है कि यह कर्मयोग चल रहा है, वह शिक्षण का कार्यक्रम नहीं है।

दोनों में से कौन चीज चल रही है, उसका पता ही न चले, उसका नाम है शिक्षण-प्रयोग। आजकल बुनियादी तालीम में एक बड़ा तमाशा चलता है! कहते हैं कि ज्ञान और कर्म का योग होना चाहिए, इसलिए तकली चलाते हैं और इसके साथ तकली के गाने गाते हैं। तकली के साथ तकली के गाने गाने से एकता नहीं होती है। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है। ज्ञान और कर्म में कहाँ तक विरोध, भेद और ऐक्य है? और इसी विश्वास पर नयी तालीम खड़ी है कि ज्ञान और कर्म में अभेद है, कर्म से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान से कर्म की प्रेरणा मिलती है और दोनों से जीवन सार्थक होता है। इस प्रकार की योजना इसमें है।

कुछ लोगों का यह भी आक्षेप है कि इसमें लड़कों से कुछ काम कराया जाता है। यह जरा समझने की जरूरत है कि हम लोगों ने तय किया है कि हम लाख प्रकार के व्यायाम करेंगे, लेकिन उत्पादक परिश्रम नहीं करेंगे। स्कूलों में लड़के दिनभर लिखते-पढ़ते रहेंगे, उन्हें बैठे-बैठे भूख नहीं लगेगी, इसलिए व्यायाम की योजना की जाती है। वे सारे लड़के इकट्ठे होते हैं और उठते-बैठते हैं। कोई किसान आकर देखे, तो कहेगा कि इन लोगों को क्या कुछ काम नहीं है? बेकार हैं क्या? तो कहा जाता है कि यह भूख लगने की योजना है। किसान कहता है कि भूख लगने की योजना तो खेत में हो सकती है। हाथ में कुदाल लेकर अगर आ जायँ, तो तुरन्त भूख लगेगी। लेकिन अगर हाथ में कुदाल लेकर परिश्रम करेंगे, तो वह 'मजदूरी' कहलायेगी और कुदाल लिये बिना परिश्रम करेंगे, तो वह 'व्यायाम' कहलायेगा। इस तरह का भेद बढ़ जाता है।

आनंद की योजना

फिर स्कूलों में आनन्द की एक योजना की जाती है। स्कूलों में विद्यार्थी और शिक्षकों को बड़ी तकलीफ होती है। इसलिए घंटा-आधा-घंटा कुछ-न-कुछ आनन्द की योजना भी होनी चाहिए। नयी तालीम कहती है कि घंटाभर की आनन्द की योजना मान्य करके बाकी के घंटे दुःख में बिताने को हम राजी नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि हम चौबीस घंटा ज्ञान प्राप्त करेंगे, चौबीस घंटा काम करेंगे और चौबीस घंटा आनन्द भोगेंगे। हमारा बहत्तर घंटे का कार्यक्रम नहीं होगा, चौबीस घंटे का ही कार्यक्रम होगा। इसलिए आनन्द भी श्रम से और ज्ञान से

भिन्न नहीं रहेगा। अगर एक शब्द में कहना है, तो मैं यह कह सकता हूँ कि हमारे शिक्षण का मंत्र है "सच्चिदानंद।" 'सत्' है कर्मयोग। उसके बिना जीवन टिकता ही नहीं। 'चित्' है ज्ञानयोग, उसके बिना जीवन जड़ बनता है और 'आनन्द' के बिना जीवन में कोई रस ही नहीं होगा। तो, जिस शिक्षण में सत्, चित् और आनन्द, तीनों का योग होता है, वह सच्ची तालीम होगी। फिर चाहे उसको नयी तालीम नाम दिया जाय या पुरानी तालीम नाम दिया जाय।

छात्र और अनुशासनहीनता

और एक बात हम यह कहना चाहते हैं कि ज्ञान के विषय में आज्ञा और हुक्म नहीं चल सकता और किसी काम के लिए हुक्म हो सकता है और हुक्म का पालन भी हो सकता है। लेकिन कोई एक गोल वस्तु है, तो हम आपको यह आज्ञा नहीं कर सकते कि आप उसको त्रिकोणात्मक समझें। उसमें हमारी आज्ञा काम नहीं करेगी। तो वह जो गोल चीज है, उसका गोल ही ज्ञान होगा। ज्ञान के विषय में आज्ञा कुंठित होती है, यह समझना चाहिए। मैं यह खास कारणों से कह रहा हूँ। इन दिनों विद्यार्थियों में काफी अनुशासनहीनता का दर्शन कुछ लोगों को होता है। मैंने विशेष ध्यानपूर्वक यह शब्द इस्तेमाल किया है, क्योंकि मुझे विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता का अनुभव नहीं आया है। बल्कि मुझे आश्चर्य हुआ है कि बावजूद ऐसी रद्दी तालीम के, ऐसी अनुशासनप्रियता विद्यार्थियों में कैसे है! फिर भी कहीं-कहीं अनुशासनहीनता का दर्शन हुआ है, इसमें कोई शक नहीं है। इसलिए हमारे नेताओं ने विश्वासपूर्वक नयी तालीम का आदर किया है। उन लोगों का विश्वास भंग न हो, इसलिए मैं आगाह करता हूँ कि नयी तालीम अनुशासन न चलाती। वह विद्यार्थी को परिपूर्ण मुक्तता देती है। शासनमुक्त समाज की रचना जब कभी दुनिया में होनेवाली हो, तब हो, लेकिन विद्यार्थियों के लिए उसकी रचना जरूर होनी चाहिए। विद्यार्थी का सबसे अधिक कोई हक है, तो वह आजादी प्राप्त करना है। इसलिए हमारे जो उत्तम गुरु थे, वे विद्यार्थी को उपदेश देते थे :

"यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि।"

जो हमारे अच्छे काम हों, उन पर आप पूरा अमल करियेगा, जो हमारे अच्छे काम नहीं होंगे, उनका अनुकरण नहीं करियेगा।

ऐसी हालत में एक स्वयं-अनुशासन की भावना विद्यार्थी में आयेगी, ऐसी अपेक्षा हम जरूर कर सकते हैं। परन्तु किसी कृत्रिम अनुशासन में नयी तालीम के विद्यार्थी रहेंगे, यह हम नहीं मानेंगे। आज की समाज-रचना कृत्रिम है, उसका आधार विषमता पर है। इसीलिए नयी तालीम का जो लड़का पैदा होगा, वह समाज के खिलाफ वागी होगा। जैसे गांधीजी ने कहा था कि वह प्रतिकार करेगा, लेकिन वह सविनय होगा। इसमें कोई शक नहीं है। परन्तु वह प्रतिकार जरूर करेगा। जहाँ मैंने 'सविनय' शब्द का इस्तेमाल किया, वहाँ मुझे एक और वात का स्मरण हो आता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में "विद्या" को भी "विनय" नाम दिया था। संस्कृत में शिक्षण को विनय कहते हैं। फलाना विद्यार्थी शिक्षण पा चुका है, तो उसको 'विनीत' कहते थे। इसलिए आदर्श शिक्षण का परिणाम विनय में जरूर होना चाहिए, परन्तु वह विनय गुलामी नहीं होगा, वल्कि वह विनय समाज की गलत कल्पनाओं का सामना करने के लिए खड़ा होगा।

यहाँ पर कुछ नयी तालीम का स्वतंत्र प्रयोग करनेवाले और कुछ रुकावट की तरफ से काम करनेवाले, दोनों आये हैं। खुशी की वात है कि सरकार भी इस काम में रस ले रही है। इन दोनों को हम परस्पर-पूरक के रूप में देखते हैं। एक गहरा काम करनेवाला है, यह होना चाहिए और दूसरा है, व्यापक काम करनेवाला। ऐसा गहरा और व्यापक दुहरा काम होना चाहिए। हम आशा करते हैं कि यहाँ जो विचार-मंथन होगा, उसमें से इस देश के जीवन को पुष्टि देनेवाला नवनीत निकलेगा।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
३०-५-'५६

—नयी तालीम-सम्मेलन का उद्घाटन भाषण

नयी तालीम विद्रोह की दीक्षा देने आयी है!

[विनोबा]

हम "नयी तालीम" से एक खास तालीम का उल्लेख करते हैं, तो इसका मतलब क्या होता है ? याने, पुरानी कोई गलत चीज जरूर है, इस वास्ते हम एक अच्छी चीज दाखिल करना चाहते हैं; जिसको अच्छी तालीम नाम के बजाय नयी तालीम कहते हैं। पुरानी तालीम याने अति पुरानी तालीम नहीं, जो बीच के जमाने में अंग्रेजों का राज्य यहाँ आने के बाद शुरू हुई। वह जो तालीम चली, उसका मुख्य दोष क्या था ? उसमें अनेक दोष थे, लेकिन जिसकी जिस ओर ज्यादा वृत्ति जाती है, वह उस दोष का उच्चारण करता है। तो ऐसे कुछ छोटे-छोटे दोष और कुछ बड़े दोष भी थे। उनका मैं बयान नहीं करूँगा। लेकिन मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि वास्तव में वह तालीम नहीं थी, क्योंकि किसी समाज को सामने रखकर वह नहीं बनायी गयी थी। जो तालीम समाज को ध्यान में न रखकर बनायी जाती है, वह किसी खास चीज के लिए उपयोगी हो सकती है, पर वह 'तालीम' नाम के लिए पात्र नहीं हो सकती। अंग्रेज जिस हालत में हिन्दुस्तान में आये और आगे उन्होंने उस हालत में फर्क करके जो नयी रचना बनायी, उस हालत में 'समाज' ही विद्यमान नहीं था। एक-एक गाँव में समाज टूट रहा था, उसके टुकड़े हो रहे थे, कुछ हो भी चुके थे; जहाँ छूत-अछूत आदि भेद भी मौजूद थे, वहाँ ग्राम-समाज बन ही नहीं सकता था। जहाँ अलग-अलग जातियाँ बनी हों, वहाँ एक समाज नहीं बन सकता। जहाँ ऊँच-नीच भाव मनुष्यों में माने गये हों, वहाँ भी एक समाज नहीं बन सकता। इसका भान हमको, जब हम ग्रामदान-आन्दोलन के लिए जाते हैं, तो होता है। अक्सर ग्रामदान उन गाँवों में अच्छा मिलता है, जिनमें या तो एक ही जाति के लोग रहते हैं या तो दो-तीन जाति के लोग हैं, जो निकट के हैं।

जाति-भेद बनाम ग्राम-परिवार

हमको जो एक हजार से ज्यादा गाँव मिले हैं, उनमें ऐसे भी गाँव हैं, जिनमें सब तरह की जातियाँ हैं। पर संख्या में ऐसे ग्राम थोड़े हैं। ज्यादा ग्रामदान ऐसे ही हैं, जहाँ या तो एक ही जाति के लोग या सदृश जातियों के लोग रहते हैं।

अनेक जातियों के ग्राम में जाकर ग्रामदान का विचार समझाने पर भी ग्रामदान प्राप्त करना आसान नहीं होता, क्योंकि ग्रामदान का बुनियादी विचार यह होता है कि सारे गाँव को एक परिवार समझो। इतनी ज़ातियों का एक परिवार मानना ही जो लोग़ अधर्म समझते हों, वे हमारी बात कैसे मानेंगे ? हाँ, जो यह मानते हों कि सारा ग्राम एक परिवार माना जा सकता है, पर हम अपने स्वार्थाधिकारों से अलग-अलग बँटे हुए हैं, तो उनको समझाया जा सकता है कि भाई, तुम स्वार्थ के कारण बँटे हुए थे, पर सच्चा स्वार्थ तुम्हारा एक परिवार बनने में ही है। तो जो लोग यह मानते होंगे कि ग्राम का एक परिवार बनाना अधर्म है, तो उनको आर्थिक विचार समझाने के पहले यही समझाना होगा कि आपका यह जाति-भेद ही गलत है। ग्रामदान वहाँ मिलता है, जहाँ समाज होता है और भिन्न-भिन्न जातियों में बँटा हुआ समूह हो सकता है, समाज नहीं हो सकता। समूह और समाज में फर्क है। जहाँ समाज ही नहीं है, वहाँ तालीम हो ही नहीं सकती—याने जिसे हम 'लोकशिक्षा' कहते हैं, वह। फिर किसी व्याकरण के स्कूल में व्याकरण सिखाया जाय, वह अलग बात है। पर जिसे हम 'लोकशिक्षा' कहते हैं और जिसमें हम अपने जीवन के अनेक विषयों का समावेश करते हैं, जीवन-शिक्षा भी जिसको नाम दे सकते हैं, वह वहीं हो सकती है, जहाँ एक-रस समाज होता है।

नयी तालीम का संहार-कार्य !

इस तरह का समाज इन दो सौ, तीन सौ सालों में हिन्दुस्तान में था ही नहीं। इस वास्ते जो भी सच्ची तालीम हम शुरू करते हैं, वह 'नयी' ही गिनी जायगी। याने तालीम का आरम्भ ही नया हो जाता है। तो यह मैंने इसलिए कहा कि नयी तालीम के उद्देश्यों में एक उद्देश्य यह भी है कि जिस गाँव में नयी तालीम शुरू होगी, उस गाँव को एकरस बनाना। तो इस प्रकार का समाज बनाना, यह नयी तालीम का उद्देश्य समझना चाहिए। ग्रामों में आज जो भेद हैं, वे कितने प्रकार के हैं ? जितने प्रकार के हो सकते हैं, उतने प्रकार के, याने सब हैं। अर्थात् गरीबी-अमीरी है, मालिक-मजदूर हैं, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर हैं, हरिजन-हरिजनेतर हैं। याने जितने सेक्शन्स-क्रास-सेक्शन्स (आड़े और खड़े खाने) नाना प्रकार के आप खड़े कर सकते हैं। **उतने भेद और छेद विद्यमान हैं और इन सबको मिटाना नयी तालीम का मकसद होगा। याने अधिक-से-अधिक जितने लोगों को दुश्मन बना सकती है, नयी तालीम, उतने दुश्मन वह बना ले !** फिर भी हमको आश्चर्य हो रहा है

कि जो बोलने के लिए उठा, वह सब इसके अनुकूल ही बोल रहा है। अब हमको शंका हो रही है कि लोग कुछ गलतफहमी में तो नहीं हैं।

बागी बनानेवाली तालीम

जहाँ हम लड़कों को समझायेंगे कि हरएक का वेतन उसकी योग्यता के साथ कोई संबंध नहीं रखता; आपके वेतन का, आपकी मजदूरी का, आपको भूख कितनी लगती है, आपकी आवश्यकता कितनी है, इसके साथ संबंध है और चूंकि आवश्यकताओं में बहुत ज्यादा फर्क नहीं होता है, इसलिए मनुष्यों की तनख्वाह में, मजदूरी में बहुत ज्यादा फर्क नहीं होना चाहिए, तो फिर लड़का हमसे पूछेगा कि हेडमास्टर की तनख्वाह कितनी है और दूसरे मास्टर की कितनी है? तब हमारा मुंह बन्द हो जायगा। इसलिए हमारे स्कूल में सबकी तनख्वाह करीब-करीब समान ही होनी चाहिए। फिर लड़के हमसे पूछेंगे कि जो सरकार की नौकरी होती है, उसमें जो 'ग्रेड' लगे रहते हैं, वे क्या ठीक हैं? तो उनको कहा जायगा कि 'भाई, यह ठीक तो नहीं है।' 'तो यह क्यों चलता है?' 'कुछ लाचारी है, इस वास्ते चलता है।' यह सब हम समझा दें, लेकिन फिर भी वे लड़के यह तो समझेंगे कि हम लोगों पर उनमें से किसीकी हुकूमत नहीं चल सकती, जो कि खुद विषमता मानते हैं। विषमता को हम सहन कर लें, यह अलग बात है, लेकिन विषमता का राज्य नहीं हो सकता, यह लड़के निश्चय कर लेंगे। तब बागी नहीं बनेंगे, तो क्या और कुछ बनेंगे? विषमता के ऊपर खड़ी हुई सरकार के लिए यह खतरा है। फिर भी वह सरकार उस तालीम को चाहती है। यह तभी शोभा देता है कि जब यह मान्यता सरकार में हो कि आज का दोष मिटना चाहिए और वह मिटाने के लिए हम यह तालीम शुरू करेंगे और उसके हाथों आपका यह दोष मिटेगा। ऐसी साम्ययोगी रचना को जो नहीं मानते होंगे, उनको इस तालीम का तो डट करके विरोध करना होगा!

हर जगह बगावत

अब इन लड़कों को और क्या सिखाया जायगा? यही कि कुछ-न-कुछ शरीर-परिश्रम किये बिना या खेतों में काम किये बिना खाना बिलकुल गलत है। अब अगर ऐसा हो कि कई जातियाँ हाथों से काम करना ही अधर्म मानती हों, तो उनका इस तालीम के साथ कैसे बनेगा? उनका इसके साथ विरोध होना चाहिए या नहीं? सबको जमीन मिलनी चाहिए और सबको जमीन पर काश्त करने का हक

है, यह लड़कों को समझाया जायगा। पर गाँव में कुछ मालिक हैं, कुछ बेजमीन हैं। तो यह भी गलत है। इसका मतलब यह है कि आज के समाज की जो-जो व्यवस्था है, वह सब गलत है, यह कहने का प्रसंग नयी तालीम में आता है। इसलिए आज का समाज अगर नयी तालीम को सम्मति देता है, तो वह जान-बूझकरके अपनी आत्म-हत्या के लिए सम्मति देता है, ऐसा समझना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए गुरु-देवता के समान कोई ताकत नहीं है दुनिया में और गुरु-देवता तो कहते हैं कि गाँव में विषमता का रहना बिलकुल गलत है। तो फिर वे विद्यार्थी गुरु-देवता से पूछेंगे कि फिर आप और हम उसको मिटाने के लिए कोशिश क्यों न करें ? आप हमको गणित-वणित नाहक सिखाते हैं। पहले यह गणित मिटाना चाहिए, जो विषमता का चल रहा है। फिर दूसरा गणित सीखें। इसका मतलब यह होता है कि नयी तालीम के शिक्षकों को गाँव की विषमता मिटाने के कार्यक्रम को अपनी तालीम का एक हिस्सा मानना पड़ेगा। दुनिया के देशों का इतिहास यह है कि उन देशों में राज्य-क्रान्तियाँ जो भी हुईं, वे शिक्षकों के जरिये हुई हैं। इसलिए ग्राम में आर्थिक-सामाजिक समता स्थापित करना, अर्थात् जो आज की हालत है, उसमें बदल करना, जिसे हम क्रान्ति कहते हैं, वह करना, यह नयी तालीम का प्रयोजन हो जाता है, उसका अंग बन जाता है। इसलिए हमने कहा था कि ग्रामोद्योग, जमीन का समान बँटवारा, जाति-भेद, पंथ इत्यादि मिटाना और जीवन के जरिये लड़कों को शिक्षा देना, जिसे नयी तालीम कहते हैं, वह सब चतुर्विध कार्यक्रम, मिला-जुला हुआ कार्यक्रम है। ये चार विभाग कल्पना के लिए, समझने-समझाने के लिए हों, तो अलग किये जा सकते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष कार्य में अलग नहीं किये जा सकते। इस वास्ते हमने सोचा कि जहाँ तमिलनाड में हम प्रवेश करते हैं, वहाँ आप सब लोगों के सहयोग से यह चतुर्विध कार्यक्रम हम उठा लें। इस कार्य में आप लोगों का सहयोग हम चाहते हैं।

तमिलनाड से अपेक्षा

आज तो मैं बहुत ज्यादा नहीं कहना चाहता था, सिर्फ यही माँग आप लोगों के सामने रखना चाहता था। इसलिए नयी तालीम के सम्मेलन में केवल एकांगी चर्चा से काम नहीं होनेवाला है, बल्कि ये जो आर्थिक-सामाजिक पहलू हैं, प्रश्न हैं, उन प्रश्नों की चर्चा करना भी नयी तालीम का अंग होगा। गाँव के हरएक लड़के के लिए शिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। पर आज शिक्षण अनिवार्य हो ही

नहीं सकता। कुछ लोग इतने दरिद्री हैं कि वे आपके स्कूलों में बच्चों को भेज नहीं सकते। बच्चे घर के काम में ही लगे रहते हैं। कुछ ही लड़के स्कूल में आ सकते हैं। इसको नयी तालीम नहीं कहते। हरएक लड़के को जिसमें समाविष्ट कर सकते हैं, वही नयी तालीम है। इसलिए जो भूमिहीन लोग हैं, जो गरीब लोग हैं, उनको सामाजिक स्थान दिलाना, यह भी नयी तालीम का एक अंग होगा।

राज्य-शासन का छेद करनेवाली तालीम

तो भाइयो, इस वास्ते नयी तालीम के अन्दर उद्योग का समावेश किया गया, नयी तालीम के अन्दर सामाजिक विचार-क्रान्ति का समावेश किया गया और विषमता मिटाने का समावेश किया गया। कल काका साहब ने कहा था कि विनोबा का काम तो राज्य-शासन तोड़ने का होगा और उसके लिए नयी तालीम का साधन काम में आयेगा। एक अजीब भाषा में वह चीज आप लोगों के सामने उन्होंने रखी, लेकिन उसमें नयी तालीम का यथार्थ वर्णन है। "तदुत्थाय तमेव खादति"—बुद्ध भगवान् ने कहा है कि लकड़ी से एक पैदा होता है कीड़ा। वह उस लकड़ी को खाता है। जिससे जो उत्पन्न होता है, उसीको वह खाता है। वैसे जो राज्य-शासन आज चल रहा है, वह नयी तालीम को अगर जन्म देगा, तो नयी तालीम राज्य-शासन का छेद करेगी। यह आपके सामने बड़ा भारी प्रोग्राम है कि आपके जो जन्मदाता हैं, उनको खतम करना है, और इसीमें समाज का भला है। ऐसा अगर शासनकर्ता समझे हों और यह समझकर उन्होंने इसको सम्मति दी हो, तो बहुत ही आनन्द की बात है। हम आशा करते हैं कि ऐसा ही समझ करके सम्मति दी गयी है, क्योंकि यह केवल आज की सरकार करना चाहती है, ऐसा नहीं। इसके लिए कांग्रेस का भी प्रस्ताव है। कांग्रेस का प्रस्ताव एक विशेष कीमत रखता है। जो सरकारी प्रस्ताव होता है, उसकी कीमत अलग है। कांग्रेस का जो प्रस्ताव होता है, वह पूरी समाज-रचना बदलने के खयाल से ही होता है। इस वास्ते हम समझते हैं कि समझ-बूझकरके यह योजना की है कि 'आपको हम जन्म देते हैं, ताकि आप हमारा विसर्जन करें।' तो यह प्रोग्राम हम ध्यान में लेंगे, तो हमारी सारी दृष्टि बदल जायगी। याने बच्चे को हम किस ढंग से सिखायें, उस ढंग की ही चर्चा अगर हम करते रहेंगे, तो हमारा काम पूरा नहीं होगा, क्योंकि बच्चों को किस ढंग से सिखाया जा सकता है, इस बारे में तो मतभेद होने का कारण ही नहीं है। दो और तीन मिल करके पाँच होते हैं, यह लड़कों को सिखाना है। अब इसके लिए

कोई दूसरा उपाय ही नहीं है, सिवा इसके कि दो फल लिये जायँ, तीन फल और लिये जायँ और दोनों को इकट्ठा करके पाँच बताये जायँ। अब इसको आप क्रिया के द्वारा ज्ञान कहते हैं, तो बिना क्रिया के ज्ञान दिया ही नहीं जा सकता; यह बात तो सर्वमान्य है। अब वह जो क्रिया आप छात्र से करायेंगे, वह कोई उत्पादक क्रिया होगी या कोई ऐसी ही क्रिया होगी, इस विषय में मतभेद है। इसलिए क्रिया के जरिये हम ज्ञान देना चाहते हैं, इतने से नयी तालीम नहीं बनती है। यह नयी तालीम इसलिए कहलाती है कि वह बिलकुल ही नये समाज की स्थापना करना चाहती है। एक दफा आपका समाज बनने के बाद भी नयी तालीम में कई प्रकार के अनुभव और सुधार होते चले जायँगे। फिर जब आगे सुधार होंगे, तब वह अच्छी तालीम कहलायेगी। इस तरह की तालीम की अच्छाई धीरे-धीरे बढ़ती जायगी और सुधार की प्रक्रिया जारी रहेगी। तो हम कहना यह चाहते थे कि पुरानी कोई तालीम थी और सुधार करके यह तालीम बनी है, ऐसा खयाल मत कीजिये। यह नयी समाज-रचना करनेवाली तालीम है और सुधार के लिए इसमें अनंत काल तक गुंजाइश है। इस वास्ते नयी तालीम का जो स्कूल चलेगा, उसमें भूदान-सम्पत्तिदान आदि विचार, सर्वोदय-विचार, साम्ययोग का विचार और ये सारे विचार—आर्थिक और सामाजिक—चिन्तन, मनन, अध्ययन और अध्यापन के विषय होने चाहिए। वह जो छोटा-सा समाज होगा, बच्चों का, शिक्षकों का, उसे भी हमको उसी प्रकार का बनाना होगा, जैसा कि हमको बनाना है। स्कूल का समाज हमारे भावी ग्राम-समाज का नमूना होगा। इसलिए शिक्षक, शिक्षकों के परिवार और विद्यार्थी, सब मिलकर एक आदर्श समाज-रचना का नमूना पेश करें। उसमें आदर्श परिवार के दूसरे गुण तो होंगे ही, परन्तु एक यह गुण अवश्य होगा कि वह समाज स्वावलम्बी होगा। इसलिए शिक्षक, शिक्षकों के परिवार व विद्यार्थी मिलकरके जो समाज बनेगा, वह अगर स्वावलम्बी न बने, तो वह आदर्श नहीं होगा। दस-पाँच उत्तम शिक्षक हैं। उनके परिवार के और कोई दस-बीस लोग हैं। ५०-६०-८० विद्यार्थी हैं। कुल मिलाकरके एक सौ मनुष्यों का समुदाय है। उनको हमने काम करने के लिए औजार दे दिये हैं। उत्पादन के लिए जमीन दे दी है। जितनी पुस्तकें चाहिए, उतनी दे दी हैं। साधन-सामग्री सब दे दी है और उन पर भार लादा जाता है कि तुम लोग विद्या भी दिया करो और अपने सब लोगों की आजीविका

भी चलाया करो। अगर वे कहें कि हमको जीवन चलाना है, हम शिक्षण नहीं दे सकेंगे, तो फिर वे नयी तालीम का "ओनामासी" भी नहीं जान सकते।

नयी तालीम का शिक्षक कहाँ से ?

तो भाइयो, यह सुनने में जरा कठिन है। यह इसलिए कठिन लगता है कि हम ऐसे वर्ग से आये हैं कि जिस वर्ग के लिए यह सारा विचार नया है। तो आखिर वह वर्ग है कितना छोटा! जो आम समाज है, वह तो काम करने ही वाला समाज है। इसलिए आखिर हमको यह करना होगा कि उन काम करनेवाले लोगों में से ही शिक्षक पैदा करने हैं। उनमें विद्या और संस्कार की ओज बढ़ानी होगी। इसलिए जब उनमें से भी हम शिक्षक तैयार करेंगे, तभी वह आदर्श शिक्षण-योजना होगी। तब तक हम जो पुरानी तालीम पाये हुए और नयी तालीम चाहने-वाले लोग हैं, वे जो तालीम देते रहेंगे, वह नयी तालीम का एक कच्चा रूप रहेगा। इसलिए जब हमसे पूछा जाता है कि नयी तालीम का आदर्श आपने कहीं प्रस्तुत किया है ? तो हम उनसे कहते हैं कि नयी तालीम का आदर्श दिखाने लायक हम लोग नहीं हैं। हममें ईश्वर की कृपा से इतनी लियाकत आ गयी है कि हम उसकी कल्पना कर सकते हैं। परन्तु उसकी रचना करने लायक योग्यता हममें नहीं आयी है। हमारे जो विद्यार्थी तैयार हो जायेंगे, उनमें हमसे भी ज्यादा योग्यता आयेगी। तो वे पूछते हैं कि आपका कौन-सा विद्यार्थी ऐसा है, जो आपके समान पुस्तक पढ़ सकता है ? तो हम कहते हैं कि अभी तक हमारा कोई विद्यार्थी ऐसा विद्वान् नहीं बना, जितने हम विद्वान् हैं। तो फिर वे पूछते हैं कि आपके विद्यार्थी आपसे बेहतर कैसे बनेंगे ? हम कहते हैं कि वे इसलिए बनेंगे कि हमारे जैसे वे विद्वान् नहीं हैं, क्योंकि हमारे जैसे विद्वान् तो नहीं हैं, लेकिन और बहुत कुछ जरूर हैं।

तालीम तो 'साक्षात्कारी' होती है

हम अभी तेलंगाना में घूमते थे। वहाँ का जिक्र है। एक जगह शेर से मुकाबला करने का मौका आया एक किसान को और उसके हाथ में सिर्फ एक लाठी थी। वह बिलकुल ही मामूली लाठी थी। तो उस लाठी के आधार से उसने शेर को खतम किया, निर्भयतापूर्वक उसके सिर पर प्रहार किया। उसका खून उसकी लाठी को लगा हुआ था। अब उसने हमको लाठी दिखाई और हमने उसका चेहरा भी देखा। तो हमने सोचा कि अगर वहाँ कोई विद्वान् होता, तो उसकी सब विद्या खतम हो जाती। लेकिन इस किसान की विद्या ऐसी थी कि शेर का मुकाबला कर

सकती थी। इस वास्ते हम कहना चाहते हैं कि यद्यपि हम बहुत विद्वान् हैं, तो भी विद्या की बहुत कीमत नहीं है, यह समझने की अक्ल हममें आयी है। और हम कबूल करते हैं कि आज हमको बहुत प्रतिष्ठा नाहक हमारी विद्वत्ता के कारण मिलती है, क्योंकि आज के समाज ने उस विद्वत्ता को प्रतिष्ठा दे रखी है। हम यह नहीं कहते कि विद्वत्ता की कोई कीमत नहीं है। पर बिलकुल 'आउट आफ प्रपोरशन' (बेहिसाब) उसको कीमत दे दें, तो काम नहीं चलेगा। इस वास्ते हमारे विद्यार्थी हमसे आगे बढ़े हुए हैं या नहीं बढ़े हुए हैं, इसकी कसौटी, आचरण में वह हमसे अधिक कारगर साबित होते हैं या नहीं, गुणों में श्रेष्ठ हैं या नहीं, इस पर निर्भर है। हमारी विद्या का एक परिणाम यह है कि हम अपनी आँखों से देखते नहीं, दूसरे की आँखों से देखते हैं। हम दूसरे देशों में जाने की हिम्मत नहीं करेंगे, अपनी आँखों से वहाँ का ज्ञान हासिल करने की हिम्मत नहीं करेंगे और दूसरे देशों का वर्णन करनेवाली एक अंग्रेजी किताब पढ़ लेंगे और घर बैठे हमको ज्ञान हुआ, ऐसा मान लेंगे। इसका मतलब दूसरे की आँखों से हम देखते हैं और जो कुछ ज्ञान हम हासिल करेंगे, उसके बल पर से हम कहे जायेंगे विद्वान्! तो इस तरह की जो विद्या है, उसमें प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं, परोक्ष ज्ञान है। ज्ञान तो उसको कहेंगे जहाँ साक्षात्कार है, जहाँ साक्षात् अनुभव है। तो इस प्रकार की विद्वत्ता हममें नहीं है। यानी जिसको अनुभव कहा जाता है, ऐसी विद्या हमारे पास नहीं है। इस हालत में हमारी विद्या तेजस्वी नहीं बनाती है, वीर्यवान् नहीं बनाती है। उस दृष्टि से हमको नयी तालीम की ओर देखना चाहिए और नयी तालीम का सारा इन्तजाम समग्र दृष्टि से करना चाहिए, इसका इशारा आज हमने आप लोगों के सामने किया। हमारी प्रार्थना है तालीमी संघ से, हमारी प्रार्थना है, आप लोगों से, समाज से और हमारी प्रार्थना है, सरकार से भी कि हम जो कुछ थोड़ा काम इस प्रदेश में करने जा रहे हैं, तो इन सब लोगों की मदद हमको मिले। हमको कहने में खुशी होती है कि कल आपके शिक्षामंत्री ने हमको ऐसा आश्वासन दिया। लेकिन केवल उनका आश्वासन बस नहीं होगा, सारा काम आप लोगों के जरिये होगा, ऐसा आश्वासन जब हमको मिलेगा, तभी काम होगा। हम आशा करते हैं कि आपकी तरफ से आश्वासन मिलेगा। आप सबको प्रणाम।

कांचीपुरम्
३१-५-'५६

तमिलनाड के नयी तालीम के कार्यकर्ताओं से

नहीं देता है, तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होता। दुःख और क्रोध का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

आपस में ही समान वितरण कर लें

आज समाज में जो गरीब लोग हैं और जो अमीर का धन चाहते हैं और अमीरों से कहते हैं कि तुम्हारा धन समाज का है, कारखाना तुम्हारा नहीं है, जमीन तुम्हारी नहीं है, वे ही गरीब लोग कहते हैं कि यह आधा बीघा जमीन हमारी है, हम इसके मालिक हैं। वह मालकियत का डंका वजा रहे हैं और लाठी लेकर खड़े हैं कि कोई अगर ज़मीन पर चढ़ा, तो लाठी से हम सर फोड़ देंगे। यह हमारी चीज है। चारों तरफ से 'हमारा, हमारा, हमारा' यह आवाज निकल रही है और हर कोई यह कह रहा है कि हम इसके मालिक हैं। महीनेभर में जो २५ रुपया कमाया है वह हमारा है, उसमें किसीका हिस्सा नहीं है। परन्तु धनिक ने जो पचीस करोड़ पैदा किया है, वह समाज का है। इस प्रकार हमारे जो तुच्छ स्वार्थ हैं, उनके संघर्ष से सर्वोदय नहीं निकलेगा, क्रान्ति की शक्ति का सृजन नहीं होगा; क्योंकि आज हमारे देश के जो अमीर लोग हैं, वे क्रान्ति के मंत्रों का उच्चारण नहीं करते हैं। वह नहीं कहते हैं कि धन, धरती का बँटवारा हो, पूँजीवाद का नाश हो, सत्ता का अंत हो, समाज से विषमता का अन्त हो, समता की स्थापना हो। यह देश में जो हजारों एकड़ के मालिक हैं, लखपति और करोड़पति हैं, उनकी यह आवाज नहीं है। क्रान्ति की यह आवाज तो साधारण जनता की है। गरीब की यह आवाज है। तो आज हमें गरीब को यह समझाना है कि आपके अन्दर क्रान्ति की शक्ति तभी पैदा होगी और तभी सफल भी होगी, जब कि आप जो पहले अमीर को करने के लिए कहते हैं, वह पहले अपने जीवन में करेंगे। अर्थात् आपके पास जो कुछ है, उसके स्वामित्व का विसर्जन करेंगे। आधा बीघा जमीन है, एक बीघा जमीन है, तो समझना होगा कि वह आपकी नहीं है। यह बात आप महसूस करो और आपके पास एक बीघा, उसके पास दो बीघा, तीसरे के पास पाँच बीघा, दस बीघा सब इकट्ठा कर लो और आपस में बाँट लो। सब मजदूर भी अपनी मजदूरी एक जगह एकत्र कर आपस में एक जगह समान रूप से बाँट लें। इस रीति से देश में करोड़ों लोगों का विचार पलट जाय और समान विभाजन कर लें।

और फिर सबके मुँह से यह आवाज निकले कि यह हमारा नहीं, यह तुम्हारा नहीं, यह सबका है। यदि गरीब इस नैतिक भूमिका पर खड़ा होता है, तो उसकी आवाज में वह नैतिक शक्ति होगी कि उसके आगे करोड़पति को भी झुकना होगा और उसे भी कहना पड़ेगा कि यह धन उसका नहीं है, समाज का है। उस समय हमारी अपेक्षा होगी कि करोड़पति भी अपने स्वामित्व का स्वतः ही विसर्जन करे। परन्तु आज हमारी अपेक्षा नहीं है।

दुनिया की सभी क्रांतियाँ असफल

आज तक दुनिया में अनेक क्रान्तियाँ हुई हैं। रोम, फ्रांस, रूस, भारत, चीन इत्यादि देशों में अभूतपूर्व क्रान्तियाँ हुई, किन्तु मैं मानता हूँ कि एक भी क्रान्ति सफल नहीं हुई। हमारे नवयुवक जिस क्रान्ति का सपना देखते हैं, वैसी क्रान्ति रूस में हुई। उससे बड़ी क्रान्ति इतिहास में नहीं हुई, न होनेवाली है। कितना उलट-फेर इन क्रान्तिकारियों ने किया। उन्होंने अपने बादशाह की हत्या की। कितने ही जागीरदार-जमींदारों को कत्ल किया। कितने ही पूँजीपतियों को मौत के घाट उतार दिया। कारखाने छीन लिये, जमीन छीन ली और जमीन का बँट-वारा भी कर दिया। वहाँ जमीन का कोई मालिक नहीं है, समाज मालिक है। खेती का कलेक्टवाइजेशन, सामूहीकरण, कारखानों का समाजीकरण, राष्ट्रीयकरण इत्यादि हुआ। इतनी बड़ी हिंसाएँ और परिवर्तन सब समाज के लिए हुआ। परन्तु कुछ दिन पहले रूस से वहाँ के प्रथम प्राइम मिनिस्टर निकोयान यहाँ आये थे। उन्होंने प्लानिंग कमीशन के समक्ष अपने भाषण में यह जाहिर किया कि अगर वहाँ ४०० रूबल एक मामूली मजदूर को मिलता है, तो २५ हजार रूबल सर्वोच्च अधिकारी को मिलता है। समता के नाम पर की गयी क्रान्ति का यह प्रतिफल आया कि वहाँ ४ सौ से २५ हजार तक की विषमता पैदा हो गयी और वह भी स्टालिन जैसे डिक्टेटर के जमाने में हो गयी। उसने कितनी निर्ममता से लोगों को मौत के घाट उतार दिया, परन्तु वह मानव-मन में स्थित स्वार्थ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। लोगों के दिलों में जो लोभ और मोह था, उसके सामने उसको घुटना टेकना पड़ा।